# पुराणम् PURĀNA

[ Half-yearly Bulletin of the Purana-Department ]

With the financial assistance from the Ministry of Education,

Government of India

VASANTA-PAÑCAMĪ NUMBER

आत्मा पुराणं वेदानाम्



ALL-INDIA KASHIRAJ TRUST FORT RAMNAGAR, VARANASI

# सम्पादक-मण्डल

- पद्मभूषण पण्डितराज श्री राजेश्वरशास्त्री द्रविड ; अध्यक्ष, साङ्गवेद विद्यालय, रामघाट, वाराणसी ।
- पद्मभूषण डा. वे॰ राघवन् , एम॰ ए॰, पी॰ एच॰ डी॰ ; ऋध्यत्त, संस्कृत विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास ।
- डा. वासुदैवशरण अग्रवाल, एम॰ ए॰, पी॰ एच॰ डी॰, डी॰ लिट्॰; प्रोफेसर, भारती महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ।
- श्री त्रानन्दस्वरूप गुप्त, एम० ए०, शास्त्री; पुराण-विभाग, सर्वभारतीय काशिराजन्यास, फोर्ट रामनगर, वाराणसी।

#### EDITORIAL BOARD

- Padma-Bhushan Paṇḍita-rāja Śrī Rājeśvara Śāstri Draviḍa; Principal, Sāṅga-Veda-Vidyālaya, Varanasi.
- Padma-Bhushan Dr. V. Raghavan, M. A., Ph. D.; Professor and Head of the Sanskrit Dept., Madras University.
- Dr. Vasudeva S. Agrawala, M. A., Ph.D., D. Litt.; Professor, College of Indology, Banaras Hindu University.
- Shri Anand Swarup Gupta, M. A., Shastri;
  Purāṇa-Dept., All-India Kashiraj Trust. (Editor-in-Charge)

लेखकमहोद्यैः प्रकटीकृता विचारास्तेषामेव स्वायत्ताः, न पुनस्ते सम्पादकान् न्यासं च निबञ्चन्ति

Authors are responsible for their views, which do not bind the Editors and the Trust.

# पुराणम्-PURĀŅA

Vol.	VIII., No. 1]	वसन्तपश्चम्यङ्कः	[ Jan. 26,	1966	
लेखसूची—Contents					
				Pages	
Kes		by the Board of Tashiraj Trust on the sa			
	Sri Lal Badur S	hastri.			
1.		T: [Eulogy of the Godess by	the gods]	1-8	
Compiled with note and comment					
	By Sri An	and Swarup Gupta			
2.	Megasthenese an	d the Indian Chronology			
	As based on the Purāṇas				
[ मेगस्थनीज: पौराणिकवंश-कालक्रमदच ]					
	By Sri K.	D Sethna; Pondichery.			
3.	Three Ancient F	amous Temples of the S	SHOPE PURE		
		ोणि प्राचीनमन्दिराणि ]		38-51	
	Ву Мт. Д	Pr. V. V. Mirashi; Nagp	our.		
4.	Paraśurāma [ प	(शुरामः ]		52-82	
	By Km. S	. S. Janaki, M. A., M.	Litt.;		
	Research for Madras Un	ellow, Sanskrit Deptt.			
5.	नारदपुराणम् [The ]	Nārada Purāṇa]		83-100	
	By Pt. And	ant Shastri Phadake;			
		Professor of Purāṇa, San	skrit		
	University,	Varanasi.			

6. Garuḍa Purāṇa [ गरुडपुराणम् ]	101-114
By Dr. B. H. Kapadia;	
Reader in Sanskrit, Vallabha Vidyapith,	
Vallabhanagar, Gujarat.	
7. Śākhās of the Sāmaveda as mentioned in the	115 124
Purāṇas [ पुराणिनिदिष्टाः सामवेदशाखाः ]	115-134
By Dr. Ganga Sagar Rai, M. A., Ph. D.;	
All-India Kashiraj Trust, Fort Ramnagar.	
Praśasti in honour of Their Majesties of	
Nepal [ नेपालराजदम्पत्योः प्रशस्तिः ]	
9 Ct 1 the Design and Classical Literature	
8. Skanda in the Purāṇas and Classical Literature	135-158
ुपुराणेषु काव्येषु च स्कन्दः ]	
By Sri Prithvi Kumar Agrawala, M. A.;	
College of Indology, B.H.U., Varanasi.	
Welcome Address presented to Their Majesties	
of Nepal [नेपाल-राजदम्पत्योः स्वागताभिनन्दनम्]	
9. The Matsya Purāṇa and the Rāmāyaṇa	
मत्स्यपुराणं रामायणं च	159-167
By Prof. D. R. Mankad;	
Aliabada, Jamnagar, Gujarat.	
	160 160
10. पुराणसूक्तय: [Wise Sayings from the Viṣṇu-Purāṇa]	168-169
Compiled by Sri Madhavacharya Adya;	
Purāṇa Deptt., All-India Kashiraj Trust.	
11. Activities of the All-India Kashiraj Trust	
िकाशिराजन्यासस्य कार्यविवरणम्	170-187
12. Book-Review	
ग्रह्-नक्ष्त्र (Planets and Stars)	
By Dr. Sampurnanand;	
Reviewed by Sri Anand Swarup Gupta	188-191

## 13. स्वल्पमत्स्यपुराणम् [Svalpa Matsya-Purāṇa]

192-226

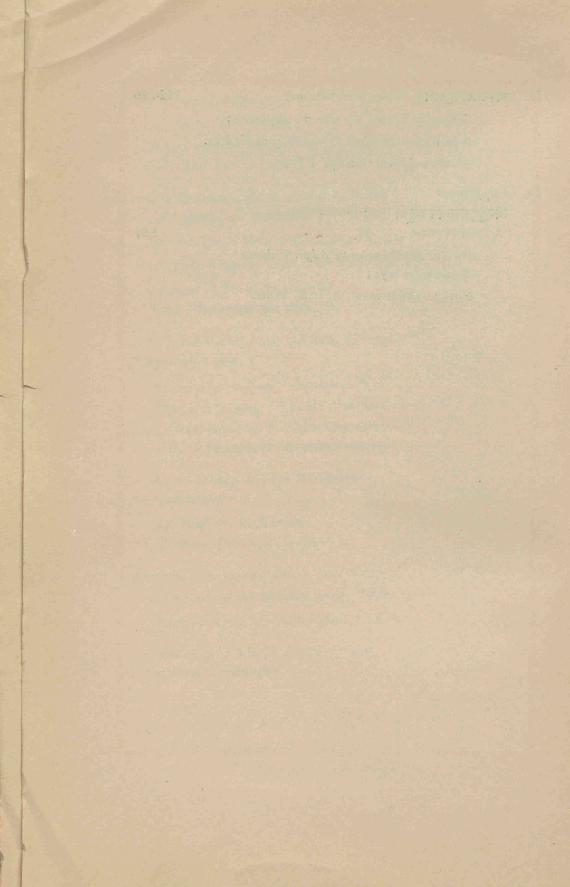
Critically Edited By Dr. V. Raghavan;
Professor of Sanskrit, University of Madras.
(Continued from 'Purāṇa' VI. 1.)

#### 14. Supplement

विष्णुपुराणविषयसूची [Subject-Index of the Viṣṇu-Purāṇa]

1-91

By Sri Madhavacharya Adya, Vedānta Mīmāmsāchārya; Purāṇa-Department, A. I. K. Trust.



RESOLUTION PASSED BY THE BOARD OF TRUSTEES OF THE ALL-INDIA KASHIRAJ TRUST ON THE SAD DEMISE OF

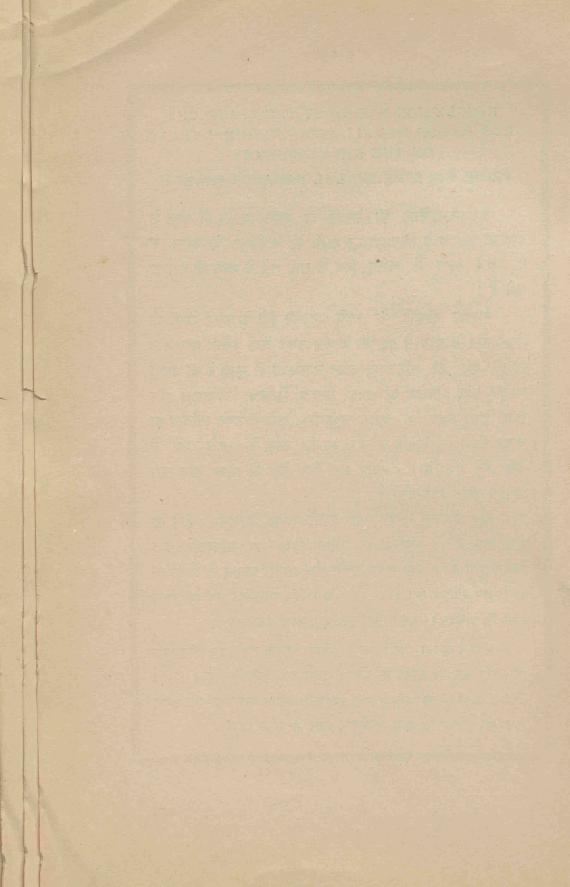
### PRIME MINISTER SRI LAL BAHADUR SHASTRI

ताशकन्द-सम्मेलन की समाप्ति के तुरन्त पश्चात् ही भारत के लोकप्रिय प्रधानमन्त्री श्रीलालबहादुर शास्त्री के आकस्मिक देहावसान से न केवल भारत में अपितु विश्व के सभी राष्ट्रों में शोक की घटा छा गयी है।

भारतीय संस्कृति के सच्चे अनुगामी होने के कारण शास्त्री जी विश्व-शान्ति के हृदय से पक्षपाती थे और उसके लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। देश की कठिन से कठिन समस्याओं को सुलझाने की उनकी विलक्षण सूझ, लोकसेवा की भावना, सरलता, विनम्रता, निष्कपटता और हृदता इस प्रकार के अनेक स्पृहणीय गुणों ने उनके व्यक्तित्व का विकास किया था, जिसके कारण वे भारतीय जनता के सच्चे अर्थ में नेता बन गये थे। अपने इस प्रिय नेता को खोकर आज सारी भारतीय जनता शोक-संतप्त है।

इस रामनगर स्थान को शास्त्री जी का निवास-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। काशी में ही उनकी शिक्षा का अधिकतम काल व्यतीत हुआ था। इसी कारण सर्वभारतीय काशिराजन्यास से शास्त्री जी का विशिष्ट सम्बन्ध रहा है। न्यास के विविध सांस्कृतिक एवं साहित्यिक कार्यों में वे सदा ही अपनी विशेष रुचि प्रदर्शित करते रहे।

काशिराजन्यास का समस्त न्यासी मण्डल उनके इस आकस्मिक एवं असामयिक देहावसान से अत्यन्त दुःखी तथा शोकसंतप्त है। न्यास दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अपित करता है तथा उनके शोकसंतप्त परिवार के साथ समवेदना प्रकट करता है।



# देवैः कृता देवी-स्तुतिः

(देवीभागवत, ५।२२।२५-४२)

- नमो देवि विश्वेश्वरि प्राणनाथे
   सदानन्दरूपे सुरानन्ददे ते॥
   नमो दानवान्तप्रदे मानवाना मनेकार्थदे भक्तिगम्यस्वरूपे॥२५॥
- २. न ते नामसंख्या न ते रूपमीहक् तथा कोऽपि वेदाऽऽदिदेवादिरूपे॥ त्वमेवासि सर्वेषु शक्तिस्वरूपा प्रजासृष्टिसंहारकाले सदैव॥२६॥
- २. स्मृतिस्त्वं घृतिस्त्वं त्वमेवासि बुद्धि-र्जरा पृष्टि-तुष्टी घृतिः कान्ति-शान्ती ॥ सुविद्या सुरुक्ष्मीर्गतिः कीर्ति-मेधे त्वमेवासि विश्वस्य बीजं पुराणम् ॥२७॥
- थदा यैः स्वरूपैः करोषीह कार्यं
   स्वराणां च तेभ्यो नमामोऽद्य शान्त्यै ॥
   क्षमा योगनिद्रा दया त्वं विवक्षा
   स्थिता सर्वभृतेषु शस्तैः स्वरूपैः ॥२८॥
- ५. कृतं कार्यमादौ त्वया यत्सुराणां हतो ऽसौ महारिर्मदान्धो हयारिः॥ दया ते सदा सर्वदेवेषु देवि प्रसिद्धा पुराणेषु वेदेषु गीता॥२९॥
- ६. किमत्रास्ति चित्रं यदम्बा सुतं स्वं सुदा पालयेत् पोषयेत् सम्यगेव॥

यतस्त्वं जिनत्री सुराणां सहाया कुरुष्वैकचित्तेन कार्यं समयम् ॥३०॥

- न वा ते गुणानामियता स्वरूपं 9. वयं देवि जानीमहे विश्ववन्द्ये ॥ कृपापात्रमित्येव मत्वा तथा ऽस्मान् भयेभ्यः सदा पाहि पातं समर्थे ॥३१॥
- विना बाणपातैर्विना मुष्टिघातै-6. र्विना शूळ-खड्गैर्विना शक्तिदण्डैः॥ रिपुन्हन्तुमेवासि शक्ता विनोदात् तथा ऽपीह लोकोपकाराय लीला ॥३२॥
- इदं शाश्वतं नैव जानन्ति मुढा न कार्यं विना कारणं सम्भवेद वा ॥ वयं तर्कयामो ऽनुमानं प्रमाणं त्वमेवासि कर्ताऽस्य विश्वस्य चेति ॥३३॥
- अजः सृष्टिकर्ता मुकुन्दोऽविताऽयं 20. हरो नाशकृद्धे पुराणे प्रसिद्धः ॥ न किं त्वत्प्रसूतास्त्रयस्ते युगादी त्वमेवासि सर्वस्य तेनैव माता ॥३४॥
- ११. त्रिभिस्त्वं पुराऽऽराधिता देवि दत्ता त्वया शक्तिरमा च तेभ्यः समग्रा॥ त्वया संयुतास्ते प्रकुर्वन्ति कामं जगत्पालनोत्पत्तिसंहारमेव ॥३५॥
- १२. ते किं न मन्दमतयो यतयो विमृदा-स्त्वां ये न विश्वजननीं समुपाश्रयन्ति ॥ विद्यां परां सकलकामफलपदां तां मुक्तिप्रदां विबुधवृन्दसुवन्दिताङ्घिम् ॥३६॥

- १३. ये वैष्णवाः पाञ्चपताश्च सौरा दम्भास्त एव प्रतिभान्ति नूनम् ॥ ध्यायन्ति न त्वां कमलां च लज्जां कान्ति स्थिति कीर्तिमथापि पुष्टिम् ॥३७॥
- १४, हरिहरादिभिरप्यथ सेविता त्विमह देववरेरसुरेस्तथा ॥ भुवि भजन्ति न येऽल्पियो नरा जनि ते विधिना खळु विश्वताः ॥३८॥
- १ '१. जलधिजापदपङ्क जरञ्जनं जतुरसेन करोति हरिः स्वयम् ॥ त्रिनयनोऽपि धराधरनाङ्घिप-ङ्कजपरागनिषेवणतत्परः ॥३९॥
- १६. किमपरस्य नरस्य कथानकै-स्तव पदाब्जयुगं न भजनित के ॥ विगतरागगृहाश्च दयां क्षमां कृतिधयो मुनयोऽपि भजन्ति ते ॥४०॥
- 20. देवि त्वदङ्घिभजने न जना रता ये संसारकूपपतिताः पतिताः किलामी ॥ ते कुष्ठ-गुल्म-शिरआधियता भवन्ति दारिद्रचदैन्यसहिता रहिताः सुलीचै: ॥४१॥
- १८. ये काष्ट्रभारवहने यवसावहारे कार्ये भवन्ति निपुणा धनदारहीनाः॥ जानीमहेऽल्पमतिभिभवदिङ्घसेवा पूर्वे भवे जनिन तैर्न कृता कदापि ॥४२॥

#### Note on the Devi-Stuti

Devī eulogised here is the great Goddess Sakti or Mahāmāyā who is the transcendent source of all the śakti (energy) required for the creation, preservation and destruction of the universe. Her glory is sung both in the Vedas and the Puranas. The Devi-Māhātmya of the Mārkandeya Purāna (Jivānanda edn., Chapters 81-93) is the famous and important Puranic episode which represents Devi in all Her glory. This sacred episode, also called the Devi-Carita, finds place in the Devi-Bhagavata (V. 7-35) and the Vamana-Purana (Venkt. edn., Adhs. 18-20; 21. 1-8; 54. 23-28; 55-56) also. During her wars with the demons-Mahisa, Sumbha and Nisumbha - Devī was praised by the gods on four occasions as follows:-

(1) She was first praised by the gods when in order to kill the demon Mahisa she was manifested from the assemblage of the lustres (tejas-s) or energies (śakti-s) of all the gods including even the three great gods Brahma, Visnu and Mahesa. As the lustres of the gods got assembled into one in the hermitage of Sage Kātyāyana, and mixed up with his lustre also, this manifestation of Devī was called as Kātyāyanī (Vām.-P. 18. 7-8).

This Stuti is given in the Vam.-P. (18. 19-20), and in the Devi-Bhag. (V. 9. 23-29); while in the Mark.-P. the Devi-stuti on this occasion is not given, but only alluded to :-

जयेति देवाश्य मुदा तामूचः सिंहवाहिनीम् ॥ तुष्ट्वर्मुनयरचैनां भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः ॥ (82. 34)

(2) When Devi killed Mahisa, She was praised by the gods again.

This Stuti is given in the Devī-Māhātmya (Adh. 4) of the Markandeya-Purana (84. 2-26), and also in the Devī-Bhāgavata (V. 19. 2-33), while in the VāmanaPurāṇa no  $Dev\bar{\imath}$ -stuti is given on this occasion, but it is only alluded to:—

# देन्या जयं देवगणा विलोक्य स्तुवन्ति देवों स्तुतिभिर्महर्षे । (20. 50 ab)

(3) When Sumbha and Niśumbha, the two brother-demons, began to oppress the gods, they (the gods) remembered Devī and praised Her in order to seek Her help for their protection. While they were thus praising, the Goddess appeared from the kośa (sheath) of Pārvatī, and hence was called Kauśikī (Mārk. 85. 40; Devī-Bhāg. V. 23. 2; Vām. 54.25).

This Stuti is given in the Devī-Māhātmya (Adh.5) of the Mārkaņdeya-Purāṇa (85. 7-36) in 30 ślokas, and in the Devī-Bhāgavata (V. 22. 25-42) in 18 ślokas as given above. But in the Vāmana a stuti on this occasion is neither given nor alluded to.

(4) When both Sumbha and Niśumbha were killed by Goddess Kauśikī (known also as Ambikā), she was again praised by the gods as appearing in her various manifestations including the seven Mātr-s or Sakti-s of seven gods—Brahmā, Viṣṇu, Maheśa, Kumāra (Skanda), Nṛṣimha, Varāha and Indra.

This Stuti is given in the Devī-Māhātmya (Adh. 11) of the Mārk-P. (91. 2-33), and in the Vāmana-Purāṇa (56. 56-63); but in the Devī-Bhāgavata it is only alluded to (V. 31. 62 f.).

The present Stuti of the Devī-Bhāgavata (V. 22. 25-42), as given above, was uttered by the gods before the appearance of Devī from the kośa of Pārvatī. Devī has been praised here as 'governing the whole Universe, controlling the life-principle, ever blissful, giver of the happiness to the gods, destroyer of the demons, fulfilling the various objects of men, approachable only through devotion.—(25): She has the innumerable names, Her real nature is unknowable, She is the Energy for the creation

and destruction of the universe; She resides in all in the form of śakti (power or energy), smṛti (memory), dhṛti (steadfastness), buddhi (intelligence), jarā (old age), pusti (nourishment, growth), tusti (contentment), kānti (splendour), śānti (peace), su-vidyā (benevolent knowledge), su-laksmī (benevolent wealth or prosperity), kīrti (fame), medhā (retentive faculty of the mind); She is the first seed of the universe.—(26-27). She assumes various forms for accomplishing the work of the gods, She resides in all the beings in the auspicious forms of ksamā (tolerance), dayā (mercy) and vivaksā (faculty of speech); She is the yoganidrā (the great sleep after the annihilation of the universe).—(28). She is merciful to the gods, as She killed their great enemy Mahisa.—(29). is the Mother of the gods, and therefore She readily protects and nourishes them.—(30). The limit and the real nature of Her qualities is unknowable even by the gods, She is able to protect the gods from all fears—(31). She is able to destroy the enemies without the help of weapons; still, for the sake of sport She takes the help of the weapons for the benefit of the universe.—(32). There is no effect without a cause, and so the Goddess is the producer of the universe.—(33). According to the Puranas Brahmā is the creator, Mukunda (Visnu) the preserver, and Hara (Rudra) the destroyer, but they themselves are created by Devī at the beginning of a yuga (i. e. kalpa), therefore She is the Mother of all.—(34). Devī was worshipped even by these three Gods, and so She gave them power by which they perform their work of creation, preservation and destruction of the universe.—(35). Devī is the real bestower of all the objects, fulfiller of all the desires, and giver of salvation, hence those who do not worship her are dull-minded and illusioned.—(36). Those who are Vaisnava-s (the worshippers of Viṣṇu), Pāśupatas (worshippers of Paśupati-Śiva) and Sauras (worshippers of the Sun) are mere hypocrites, as they do not worship the Goddess Who is manifested as the prosperity, modesty, splendour, sustaining power, fame and growth.—(37). She is worshipped even by the gods, such as Hari and Hara, and also by the Asuras; therefore, those foolish persons on the earth who do not worship Her are really unfortunate.—(38).

Hari himself colours the lotus-like feet of the Daughter of the Ocean (i. e. Lakṣmī, a form of Devī) with lac-juice, and the three-eyed God Śiva is also devoted to the lotus-like feet of the Daughter of the Mountain (i.e. Pārvatī, also a form of Devī)'.—(39). 'Who are there, O Goddess! who do not worship Thy feet, when even those wise persons who are without any attachment and have renounced the world worship Thee'.—(40). 'O Goddess! those depraved persons who are not devoted to the worship of Thy feet fall into the well (or pit)-like world, and suffer from serious diseases like leprosy, glandular enlargement in the abdomen, head-ache etc.; they ever remain oppressed with poverty, and are deprived of pleasures and happiness'.—(41). 'We infer, O Mother! that persons who carry loads of wood and grass (on their heads) and are without wealth and household, have not worshipped Thy feet in their previous birth'.—(42).

The Devī-stuti of the Mārkandeya Purāna (85. 7-36) gives in the first six slokas a number of names of the Goddess, such as Devī, Mahādevī, Śivā, Prakrti, Gaurī, Dhātrī, Naireti, Šarvānī, Durgā, Khyātī, Kṛṣṇā, Dhūmrā, Kṛti, and Viṣṇu-māyā. But in this Devi-stuti of the Devi-Bhag, the Goddess has only been called 'Devī', although it has been mentioned that no one can know the number of Her names (\$1.26). In both the Stuti-s a number of physical, mental and moral qualities (in feminine gender) inhering in the created beings are mentioned as so many manifestations of the Goddess; some of these qualities are common to both these Stutis, but some of the qualities given in the Stuti of the Markandeya Purāna, such as Cetanā (consciousness), Ksudhā (hunger), Chāyā (reflection of the Divine in the mortals), trsnā (eager desire), śraddhā (faith), bhrānti (illusion) etc., are not mentioned in the Stuti of the Devī-Bhāgavata. Similarly some of the quatities mentioned in the Stuti of the Devi-Bhāgavata, such as dhṛti, jarā, pusti, gati, kīrti, medhā, vivakṣā, are not given in the Mārkandeya.

The Devī-Bhāg.-Stuti lacks the catholic spirit which permeats the Stuti of the Mārkaṇḍeya Purāṇa. It is marred with the narrow spirit of sectarianism, on account of which the Vaisṇavas,

Pāśupatas and the Sauras are denounced as hypocrites (śl. 31); and even Hari and Hara are made to serve the feat of their consorts (śl. 39). Still, this *Stuti* of the Devī-Bhāgavata is full of devotional spirit. It also expounds the principle of the primeval Šakti which enables even the three Gods to perform their respective function of creation, preservation and destruction (śls. 34-35).

But in its sectarian zeal the Devī-Bhāgavata in this Devī-stuti goes even so far as to attribute the cause of disease and poverty to the lack of devotion (sectarian) to Devī in one's previous birth.—(śls. 41-42).

—Anand Swarup Gupta

# MEGASTHENES AND THE INDIAN CHRONOLOGY AS BASED ON THE PURAŅAS

By

#### K. D. SETHNA

अस्मिन् निबन्धे यवनराजदूतस्य मेगस्थनीजाख्यस्य वचनान्यव-लम्ब्य आदिराजप्रथोरारम्य चन्द्रगुप्तपर्यन्तानां पुराणोक्तानां मगध-नरेशानां शासनक्रमः कालक्रमश्चावधारितः । मेगस्थनीजनामा यवन-राजद्ती खीष्टाब्दात्पूर्वं ३०२ वर्षे मगधराजस्य चन्द्रगुप्तस्य राजसभायां यवनराजदूतपदवीमधिष्ठितवान् । अयं राजदूतः भारतीयपौराणिक-पण्डितेभ्यः प्राप्तायाः सूचनाया अनुसारेण मगधराजानां संख्याविषये निर्णीतवान् यद् भारते (अर्थात् मगधदेशे) 'डायोनिसस' (Dionysus) नृपादारभ्य 'सैन्ड्रोकोटस' (Sandrocottus) नृपपर्यन्तं १५३ राजानो राज्यं चकः । अस्मिन् निबन्धे लेखकमहोदयेन सप्रमाणं प्रतिपादितं यद् 'डायोनिसस'नामा नृप: आदिराजपृथुरेवासीत् , 'सैण्ड्रोकोटस'नामा च नृपो गुप्तवंशसंस्थापकः प्रथमः चन्द्रगुप्त आसीत् यः खीष्टाब्दात् पूर्वं ३२५-३२४ वर्षे मगधसिंहासनमारुरोह । आधुनिका इतिहासकाराः मन्यन्ते यद मेगस्थनीजोक्तः सैण्डोकोटसनामा तृपः चन्द्रगुप्तमौर्य आसीत्, परन्तु लेखकमहोदयेनात्र पुराणोक्तानां प्रमाणानां यवनैतिहा-सिकानां वचनानां च आधारेण आधुनिकैतिहासकाराणाम् इदं मतं निरस्य पूर्वोक्तं मतं स्थापितम् ।]

I

Megasthenes was the Greek ambassador sent by Seleucus Nicator in c. 302 B. C. to the court of the Indian king whom the Greeks called Sandrocottus and whose capital they designated as Palibothra in the country of the Prasii. Scholars have identified the Prasii as the Prāchya (Easterners) and Palibothra as Pāṭaliputra and seen the eastern kingdom of Magadha, whose capital was Pāṭaliputra, in the Greek references to the Prasii. The name "Sandrocottus" has been equated with "Chandragupta" and the king who received Megasthenes is said to have been Chandragupta Maurya who, like Sandrocottus, was the founder of a dynasty in Magadha.

## The Question of the Two Chandraguptas

The founder of the Mauryas, however, is not the only Chandragupta known to history as a Magadhan emperor and the founder of a dynasty. There is also the first of the Imperial Guptas, Chandragupta I. Modern historians date him to 320 A. D. and set forth many reasons for the identification of Sandrocottus with Chandragupta Maurya. These are claimed to be supported most convincingly by several lines of evidence converging to date Chandragupta Maurya's grandson Aśoka to the middle of the 3rd century B. C. But the ancient chronology of India herself, based on the dynastic sections of the Purāṇas and other indigenous testimonies and traditions, runs counter to this historical vision.

The Puranic account starts with the date 3102 B. C. which it calls the beginning of the Kaliyuga and goes back by 36 years to 3138 B. C. for the Bharata War between the Kuru and the Pāndavas as well as for the birth of Parīkshit, the grand-nephew of Yudhishthira-Yudhishthira who ruled at Hastinapura after the Pāndava victory in that year down to the Kaliyuga year which was marked by the death of Krishna and the installation by Yudhishthira of Parīkshit in his own place so that he and his family might be free to go on a world-pilgrimage. The ancient Indian chronology takes also into account 3177 B. C. This date is connected with what is termed the cycle of Sapta Rishi, the Seven Rishis, the stars of the constellation Great Bear. The Seven Rishis are supposed to make a cycle of 2700 years by a stay of 100 years in each of the 27 Nakshatras or lunar asterisms of the ecliptic. 3177 B. C. marks their entry for a century's stay in the asterism Magha.

The Purāṇas offer two sets of general calculation. One is concerned with the Sapta Rishi cycle. The Vāyu-Purāṇa (99. 423), as well as the Brahmāṇḍa Purāṇa,¹ says that the Seven Rishis who were in Maghā in the time of Parīkshit complete their 24th century in a part of the Āndhra (Sāṭavāhana) dynasty. This means: when 2400 years had passed after 3177 B. C. the Āndhra

<sup>1.</sup> F. E. Pargiter, Purana Texts of the Dynasties of the Kali Age (London, 1913), p. 61, n. 92.

dynasty had already started. The Brahmāṇḍa (III. 74.230) again says that during the same dynasty there is the 27th century and that the asterism Maghā, whose guardians are the Pitṛis (Ancestors), follows once more. A verse of the Matsya Purāṇa¹ speaks also of the cycle repeating itself after the 27th century and connects the repetition with the same dynasty using an expression which can be translated either as "at the end of the Āndhras" or as "in the end..." The second rendering would be consistent with the substance of the Brahmāṇḍa verse. And both the verses, putting the completion of the 27th century in the terminal portion of the Āndhras, balance those which put the completion of the 24th in the initial portion.

The  $\overline{A}$ ndhra line consisted, according to most Purāṇas, of 30 kings. So the closing part should mean at least one-fourth of the number, the last 7 or 8 kings. We may hold that 2700 passed from 3177 B. C. up to some point in the reign of one of the last 7 Andhras. The total of these reigns in the Purāṇas is (28+7+3+29+6+10+7=) 90 years. Hence the end of the dynasty might be anywhere between (3177-2700=) 477 B. C. and (477-90=) 387 B. C.

As a complement to the Sapta Rishi computation we get from the Purāṇas a number of periods termed "intervals", which bring a greater exactness. From the birth of Parīkshit to the coronation of Mahāpadma Nanda, founder of the dynasty just preceding the Mauryas, there was an interval which is variously given as 1015, 1050, and 1500 years. From this coronation to the beginning of the Āndhras there was an interval of 836 years. Since 1500 years—as Anand Swarup Gupta has recently reminded us—tally with the total of the reign-lengths which most Purāṇas ascribe to the dynasties of Magadha from the Bhārata War to Mahāpadma's coronation, we may use it to reach the date of the

<sup>1.</sup> Ibid., p. 59.

<sup>2. &</sup>quot;The Problem of Interpretation of the Purānas", Purāna, Vol. VI, No. 1. January, 1964, pp. 67-68.

Ibid., p. 68: Bārhadrathas, 1000 years; Pradyotas, 138; Siśunāgas,
 362.

rise of the Nandas. We get (3138-1500 =) 1638 B.C. Then we reach the start of the Andhras in (1638-836 =) 802 B.C. The Purāṇas, as D.C. Sircar¹ notes, record for the full run of the Andhras several numbers: 300, 411, 412, 456, 460 years. Out of these, 411 and 412 bring us from 802 B.C. to 391 and 390 B.C. respectively—both the dates falling within the range 477-387 B.C. obtained from the Sapta Rishi computation.

The next great dynasty after the Andhras is the Imperial Guptas. The Purāṇas mention the Guptas in general and connect a group of territories with them, which by being referred to no one particular Gupta would seem to be the persistent core, the stable heartland, of the expanding or contracting Gupta empire. But the Purāṇas supply no chronological matter about the Guptas, except that some lapse of time between them and the Andhras is suggested. Hence the Imperial Guptas, according to the Purāṇas, must come somewhere in the rest of the 4th century B. C. With a Chandragupta of Pāṭaliputra at their head and a Sandrocottus becoming king of Palibothra in c. 325 or 324 B. C. by modern calculations, it is evident that Purāṇically Sandrocottus must be Chandragupta I of the Imperial Guptas and not Chandragupta Maurya.

Whatever we may say, by way of criticism, about the Kaliyuga's commencement in 3102 B. C, or the Bhārata War's occurrence in 3138 B. C. or the coronation of Mahāpadma Nanda in 1638 B. C. or even the start of the Āndhras in 802 B. C., we cannot help being struck with the precision with which this chronology synchronises Chandragupta I with Sandrocottus.

Such a situation raises the question: "Which of the two Chandraguptas was Sandrocottus at whose court Megasthenes lived?" And it is indeed very pertinent to ask: "Does Megasthenes offer any chronological clue to solve it?"

<sup>1. &</sup>quot;The Sātavāhanas and the Chedis", The Age of Imperial Unity, edited by R. C. Majumdar and A. D. Pusalker (Bombay, 1951), p. 196, fn. 1 continued from p. 195.

#### The Chronological Clue from Megasthenes

We have three versions of a statement by Megasthenes, which can bear upon our problem. J. McCrindle has translated all of them.<sup>1</sup>

Pliny (VI. xxl. 4-5) reports about the Indians: "From the days of Father Bacchus to Alexander the Great, their kings are reckoned at 154, whose reigns extend over 6451 years and 3 months."

Solinus (52.5) says: "Father Bacchus was the first who invaded India, and was the first of all who triumphed over the vanquished Indians. From him to Alexander the Great 6451 years are reckoned with 3 months additional, the calculation being made by counting the kings, who reigned in the intermediate period, to the number of 153."

Arrian (Indica, I. ix) observes: "From the time of Dionysus to Sandrocottus the Indians counted 153 kings and a period of 6042 years, but among these a republic was thrice established... and another to 300 years, and another to 120 years. The Indians also tell us that Dionysus was earlier than Heracles by fifteen generations, and that except him no one made a hostile invasion of India...but that Alexander indeed came and overthrew in war all whom he attacked..."

It would be worth while discussing the three versions in every detail and arriving at what must have been the full original pronouncement of Megasthenes which has thus got transmitted with some confusions and inconsistencies and one lacuna. But for our immediate purpose it will suffice to make a few clarifying observations and then inquire: "What historical or legendary figure mentioned by the Indians became identified with Dionysus (Bacchus) in the Greek mind to serve as the starting-poing of Indian chronoiogy and of the line of Indian kings?

First, we may note from the more expansive versions of Solinus and Arrian that Dionysus and Alexander are terms of

<sup>1.</sup> The Classical Accounts of India, edited with an Introduction, Notes and Comments by R. C. Majumdar (Calcutta, 1960), pp. 340, 457, 223.

comparison in respect of the invaders of India-especially the Greek ones. Dionysus is declared to be the first who invaded India, Alexander the only other person to do so. The most appropriate way to connect them is by calculating the time that elapsed between them. Solinus gives us just this time-connection. To connect the two invaders by a number of kings, as does Pliny, is controversial; for, it brings up at once the issue: "Does the number refer to the whole of ancient India?" 153 or 154 kings are far too few for the whole, in which there were a host of practically independent kingdoms, each with its own genealogy of rulers. The number must be in reference to merely one particular kingdom which was associated with Alexander and with which Dionysus may have been associated either directly or through some scion of his. But can we associate any such kingdom with Alexander? He subjugated several states, but he was not specifically a king of this or that state. So his name at one end of a king-series is an anomaly.

Quite the reverse is the case with Sandrocottus whose name in Arrians' king-series replaces Pliny's "Alexander". Sandrocottus, though emperor of many peoples, is specifically known as the King of the Prasii—the Prasii whom Pliny elsewhere (VI.22) describes as the greatest nation in India. We can easily conceive him as the tail-end of a line which goes back through various dynasties of kings of Palibothra to a hoary past along one branch among many leading to a common ancestor.

This conception seems natural when we realise that the small king-number was mentioned to Megasthenes at Palibothra itself, where he was stationed as ambassador. And what endows this conception with inevitability is the importance which Indian chronologists and historians have given to Magadha whose capital was Palibothra: the kings of Magadha after the Bhārata War are the principal theme of the Purāṇic lists of dynasties. Sandrocottus and not Alexander was certainly the terminus intended by Megasthenes to the king-series the Indians mentioned to him.

But this series, although not related to Alexander, can well serve to describe from the Magadhan point of view the time-span

from Dionysus to Alexander. And that is exactly how Solinus uses it, even if without the implication of Magadha such as Arrian has. Arrian too is justified in using it to describe the time-span from Dionysus to Sandrocottus. For, the two time-spans could not be much different. Alexander and Sandrocottus were contemporaries, and the gap of over 409 years which is there between the number in Arrian and that in Pliny or Solinus is a gross mistake. Arrian's time-span should really be not so much less nor even the same but a little more. Plutarch1 as well as Justin2 record that when Alexander, some time after his invasion, met Sandrocottus, the latter was not yet a king. According to Plutarch, the meeting took place round about the time the Macedonians "most resolutely opposed Alexander when he insisted that they should cross the Ganges". Alexander's progress came to a halt at approximately the end of July 326 B. C.3. Thus we are sure that Sandrocottus mounted the throne of Palibothra later than this date. If we accept the more detailed time-span-6451 years and 3 months-conveyed by Pliny and Solinus as our basis and if we try to guess the one in Arrian by introducing the least possible changes in the figures which he supplies, Sandrocottus's coronation must have been not 6042 but 6452 years after what Arrian calls "the time of Dionysus" and Pliny "the days of Father Bacchus".

Here we must consider the import of these two phrases, for they determine how we should count the 153 or 154 kings. Do they direct us to the beginning of Dionysus's kingship in India or to the end of it? In other words, is Dionysus included in the 153 or 154 kings? The phrase "From...to" employed by all the writers is ambiguous, whether we apply it to the "time" and "days" or to the king-number. Luckily we have an unequivocal phrase in Solinus to guide us: "the calculation being made by counting the kings who reigned in the intermediate period..." The reference is to the number of years and months from Dionysus

<sup>1.</sup> Life of Alexander, LXIII. 2. Historiarum Philippicarum, XV. 1 v.

<sup>3. &</sup>quot;Foreign Invasions" by R. K. Mookerji, The Age of Imperial Unity, p. 50.

to Alexander and these years and months are brought into relation with the number of kings. About both the time-period and the king-series we get the clear term : "intermediate". The number of kings applies to those who reigned between the days of Dionysus and the days of Alexander: the total of their reigns— 6451 years and 3 months—applies also to the period between the reigns of Dionysus and Alexander. After Dionysus ceased reigning and before Alexander started doing so we have the intermediate period. Similarly, the kings who are counted are the ones succeeding Dionysus and preceding Alexander. Dionysus, who "was the first of all who triumphed over the vanquished Indians", must be couted as the first king over the Indians. But he is not a part of the 153 or 154 kings. Neither is Sandrocottus. If we count both of them, the king-number will be 155 or 156.

The final point to glance at is: "Which of the two kingnumbers is to be accepted?" Since two authors out of three give 153 and since Arrian who correctly refers the king-series to Sandrocottus is one of them, 153 would appear to have more weight. But, when the difference of 154 from it is exceedingly small, perhaps the two serial numbers are there because of a disagreement among computers whether a certain name was to be included or not in the full tally.

In view of all our observations our job is to link Sandrocottus with an ietervening chain of 153 or 154 kings to the ancient monarch of India whom the Greeks named Dionysus. By doing it we should be able to decide between Chandragupta Maurya and Chandragupta I for Sandrocottus and between the rise of the Mauryas and the rise of the Imperial Guptas for 325 or 324 B.C. The whole of ancient Indian chronology hinges on our decision apropos of the clue from Megasthenes.

### Dionysus in India

Obviously, to come to a decision we must consult the Indian sources on which Megasthenes based himself. Where timeperiods or king-lists are concerned, the informants of Megasthenes are very likely to have been Purāṇic pundits. "In fact," says D. R. Manked¹ rightly, "apart from the Purāṇas, there is no other source for such information." No doubt, the early Purāṇas were not quite in the form which we have today of this kind of literature, but there must have been many things in common and we are justified in tracing the extant Purāṇic documents to versions in fairly ancient times. "The early versions of the Purāṇas", A. D. Pusalker² sums up, "existed at the period of the Bhārata War and that of Megasthenes." And, like the original work of Megasthenes himself, these versions must have had a consistent tale of historico-chronological indications, which at present we can partly rebuild only by critical collation of the various reports.

Along with the Purāṇas there were some other traditional accounts—the Vedas, the Brāhmaṇas and the Epics. These too we must draw upon wherever necessary in our search for Dionysus in India.

Strictly speaking, the religious Indian analogue of Dionysus. god of wine, is Soma. Soma is apostrophised in the Rigveda as lord of the wine of delight (ananda) and immortality (amrita). pouring himself into gods and men, the deity who is also deephidden in the growths of the earth, waiting to be released as a rapture-flow for men and gods. In the times after the Rigveda, Soma emerges more specifically as a lunar god no less than as a king of the vegetable world with his being of nectar passing between heaven and earth through ritual and sacrifice. During those times, Soma is also regarded, in the earliest reference to the origin of kingship (Aitareya Brāhmana, I.14), as the god whom the other gods, seeking to fight the Titans (Asuras) effectively, elected as their king after having lived without a king so far. In the Satapatha Brāhmana (V. 3. 3. 12; 4. 2. 3; XIII. 6. 2. 18; 7. 1. 13) the Brahmins speak of Soma as their king while common folk acknowledge an earthly monarch. The same book (XI. 4.3.9) applies to Soma the epithet (Rāja-pati), "lord of kings." All this

<sup>1.</sup> Puranic Chronology (Anand, 1951), p. 2.

<sup>2.</sup> Studies in the Epics and Purāņas (Bhavan's Book University, Bombay. 1955), p. lxvi.

goes to suggest that Soma in ancient Indian tradition was the primeval as well as the supreme king from the religious stand-point.

But the true religious analogue of Dionysus need not be exclusively what the Greeks had in view, and we are concerned with the Indian figure whom they in the days of Alexander and Megasthenes identified with their Dionysus for various reasons, among which a strong touch of Soma, even if inevitable, might yet be only one stimulus. Besides, although Megasthenes connects wine with some religious ceremonies in India, there seems to have been in the country then no marked cult of the wine-god. The god mentioned as "Soroadeios" and interpreted to Alexander as "maker of wine" is now recognised to have been "Survadeva", the sun-god. "Some illiterate interpreter", E. Bevan' explains, "must have been misled by the resemblance of Sūrya, 'sun', to Surā, 'wine'."

In the absence of a marked cult of Soma, the wide-spread Indian worship, which the Greeks reported, of Dionysus must indicate some other deity tinged with Soma-characteristics. unanimous vote of scholars, bearing on Strabo's statement (XV. I) from Magasthenes that the Indians who lived on the mountains worshipped Dionysus, whereas the philosophers of the plains worshipped Heracles, is for Shiva, who was worshipped with revelry by certain hill-tribes. The pillar symbol, linga, associated popularly with Shiva as a phallus, making him a fertility god, and the bull which goes with him as his vahana, vehicle—these two characteristics must have affined him still further with Dionysus who "is believed to have been originally a Thracian fertility god worshipped in the form of a bull with orginstic rites" and whose exoteric symbol, the phallus, was carried about in the rural festivals as well as in the mysteries.8

But surely when the Greeks spoke of royal history running in India from the time of Dionysus to that of Alexander and Sandrocottus, their Dionysus was a fusion of this Shiva with

<sup>1.</sup> The Cambridge History of India (1923), Vol. I, p. 422.

<sup>2.</sup> Smaller Classical Dictionary (Everyman), p. 110, col. 2.

<sup>3.</sup> The Encyclopaedia Britannica (13th Ed.), Vol. VIII, p. 287, col. 2.

some legendary hero who, unlike Shiva, was celebrated as a primal king and who carried even more than Shiva a Soma-colour in some way affining him to the wine-aspect of the Hellenic god.

The fusion is to be expected, since he was to the Greeks as much an empire-builder as a god. In the imagination of the Macedonian soldiers he was the subject of Euripides's fable—a conqueror of the East whom they endowed with a constructive role in the remote past of India. This role bulked large in the thought of Megasthenes and it is well spotlighted by Arrian, (Indica, I, vii) drawing upon the Greek ambassador's book: "Dionysus,...when he came and conquered the people, founded cities and gave laws to these cities and introduced the use of wine among the Indians, as he had done among the Greeks, and taught them to sow the land, himself supplying seeds for the purpose...It is also said that Dionysus first yoked oxen to the plough and made many of the Indians husbandmen instead of nomads, and furnished them with the implements of agriculture; and that the Indians worship the other gods, and Dionysus himself in particular, with cymbals and drums, because he so taught them; and that he also taught them the Satyric dance, or, as the Greeks call it, the Kordax; and that he instructed the Indians to let their hair grow long in honour of the god, and to wear the turban; and that he taught them to anoint themselves with unguents, so that even up to the time of Alexander the Indians marshalled for battle to the sound of cymbals and drums." Then Arrian refers to Dionysus's departure from India after having established the new order of things and having appointed as king of the country one of his companions who was the most conversant with Bacchic matters and who subsequently reigned for 52 years. Among the cities founded by Dionysus, Arrian (Anabasis, V.1; Indica, I. 1) in company with all his fellow-annalists names only Nysa (in the Hindu Kush), so called after either Dionysus's nurse or his native mountain.

Some further points may be cited from Diodorus. Like others he (II. 38) mentions the Indian mountain "Meros" (Meru), at whose foot lay the city of Nysa, as a place where Dionysus

had been, and he links with its name the Greek legend that Dionysus was bred in his father Zeus's thigh (meros in Greek). In a few things Diodorus differs from what most authors have quoted from Megasthenes. After repeating the story of the invasion of India by Dionysus, he (ibid.) mentions Dionysus as not leaving the country after his achievements but as reigning over the whole of India for 52 years and then dying of old age while his sons succeeded to the government and transmitted the sceptre What is in unbroken succession to their posterity. Diodorus (III. 63) shows us that the Greeks knew of a counterlegend to the one about the entry of Dionysus into India from the west. And from this counter-legend the starter of the king-series to whom the Indians referrred emerges in a clearer shape:

"Now some,...supposing that there were three individuals of this name, who lived in different ages, assign to each appropriate achievements. They say, then, the most ancient of them was Indos, and that as the country, with its genial temperature, produced spontaneously the vine-tree in great abundance, he was the first who crushed grapes and discovered the use of the properties of wine...Dionysus, then, at the head of an army, marched to every part of the world, and taught mankind the planting of the vine, and how to crush grapes in the winepress, whence he was called Lenaios. Having in Like manner imparted to all a knowledge of his other inventions, he obtained after his departure from among men immortal honour from those who had benefited by his labours. It is further said that the place is pointed out in India even to this day where the god had been, and that cities are called by his name in the vernacular dialects, and that many other important evidences still exist of his having been born in India..."

There are some more details to the Dionysus-story, but all about him is not of equal importance; and those points in particular which have too clearly a Greek colour cannot be of much help to us. A few points which strike us as rather fanciful may also be passed over.

What we have mainly to match from Indian sources is an ancient human-divine personage who is a great proggressive and constructive leader, no less than a conqueror—one who is organically knit together with the country's traditional history and geography and stands deified in legend at the head of all royal successions in India.

#### The Three Candidates

Indian tradition shows us three human-divine personages, each of whom in an important sense is a king in the past and acted as a fundamental force of progress.

Legendary India starts with Manu Svāyambhuva.¹ He is reputed to have subdued all enemies, become the first king of the earth and revived the institutions of the four castes and of marriage, which had been established by his predecessor and progenitor, the deity Brahmā.

With a status similar in another epoch is Manu Vaivasvata.<sup>2</sup> He is said to be the originator of the human race and all the dynasties mentioned in the Purāṇas spring from him. He framed rules and laws of government, and collected a sixth of the produce of the land as a tax to meet administrative expenses. He is also famous for having saved humanity from the deluge which occurred at this time.

As a conqueror, Dionysus may be seen as resembling Svā-yambhuva. As a law-giver, he may be traced in Vaivasvata. As a primal king, he is more like Vaivasvata than Svāyambhuva, for, though both are royal genealogy-starters in their own ways, the latter is such simply by being the first Indian—and Dionysus, even as "Indos", was not the Adam of India. But in all his other capacities Dionysus is not at all like either Vaivasvata or Svāyambhuva.

The third human-divine figure who is a primal king in Indian eyes stands in time intermediate between Svāyambhuva and Vaivasvata: he is Prithu Vainya—Prithu, the son of Vena.

<sup>1.</sup> The Vedic Age, edited by R. C. Majumdar and A.D. Pusalker (London, 1952), pp. 270-71.

<sup>2.</sup> Ibid., pp. 271-72.

When we examine him, we discover that in all important respects he is the candidate par excellence for the Indian Dionysus.

### Prithu Vainya as Dionysus

Prithu is not explicitly acknowledged by extant Indian records as a genealogy-starter, but he is called again and again the first king in a very special connotation of the phrase and, if he suited the Greeks who were obsessed with their Dionysus in Indian annals and who connected Dionysus with Sandrocottus, Indian records could easily lend themselves to making him for them a genealogy-starter. For, although Svayambhuva was the first king on earth and Vaivasvata the king at the source of all detailed human families, Prithu initiated the special status and significance enjoyed by kingship in ancient Indian history: he is "celebrated as the first consecrated king, from whom the earth received its name Prithvi". Even the hoary Satapatha Brāhmana (V. 3. 5. 4) styles him the first anointed monarch. As D. R. Patil' relates, the Vāyu Purāņa terms him ādirāja (first king) and the Mahābhārata (IV and XI) says that the divine Vishnu entered the person of the king and hence the whole universe worships the kings as if they were gods. The Vishnu Purāna,3 too, deems him a portion of deity.

Prithu as king precedes Vaivasvata in time, but it is not by mere precedence that, like Svāyambhuva, he is primal in royalty. He is ādiraja by God-invested right and thus combines in himself the typical position of Dionysus the starter of royal dynasties: king as god and god as king. Thus he is suited the most to begin a line of duly coronated rulers.

Nor is he less a conqueror than Svāyambhuva. When he was born, says the Vāyu Purāṇa, he stood equipped with bow, arrows and a shining armour. After his consecration he proceeded to vanquish the earth because he found her devoid of Vedic rites and proper service. Terrified of his uplifted weapons the earth

<sup>1.</sup> Ibid, p. 271.

<sup>2.</sup> Cultural History from the Vayu Purana (Poona, 1946), pp. 28, 163.

<sup>3.</sup> Tr. by M. N. Dutt (Calcutta, 1896), p. 62. 4. Patil, Op. cit., p. 163.

fled in the shape of a cow and, on being pursued, pleaded not to be destroyed and she surrendered herself to his demands. Prithu is also the earliest among the kings to be called chakravartin—that is, in F. E. Pargiter's words, "sovereigns who conquered surrounding kingdoms and brought them under their authority, and established a paramount position over more or less extensive regions around their own kingdom." As the earth-vanquisher and the chakravartin prototype he is exactly like Dionysus who, "at the head of an army, marched to every part of the world".

He also resembles Dionysus uniquely and exclusively by many of his peace-time achievements. The Atharvaveda (VIII. 10. 24) gives him, as V. M. Apte<sup>2</sup> writes, "the credit of introducing the art of ploughing". Pusalker<sup>3</sup> sums up many of his constructive activities: "He levelled the whole earth, clearing it of ups and downs, and encouraged cultivation, cattle-breeding, commerce and building of cities and villages."

Here we may recall Diodorus's phrase on Dionysus: "cities are called by his name in the vernacular dialects." Apropos of Hiuentsang's travels (c. 640 A. D.) in India, A. Cunningham' writes of the town which the Chinese scholar mentioned as Pehoa: "The place derives its name from the famous Prithu-Chakra-vartti, who is said to have been the first person that obtained the title Rāja." Then Cunningham refers to the legendary events after the death of Prithu's father Vena: "On his death Prithu performed the Śrāddha, or funeral ceremonies, and for twelve days after the cremation he sat on the bank of the Sarasvatī offering water to all comers. The place was therefore called Prithūdaka or Prithu's pool, from daka or udaka water; and the city which he afterwards built on the spot was called by the same name. The shrine of Prithūdaka has a place in the Kurukshetra Māhātmya, and is still visited." S. Majumdar<sup>5</sup> adds by way of annotation

<sup>1.</sup> Ancient Indian Historical Tradition (London, 1922), p. 399.

<sup>2.</sup> The Vedic Age, p. 460. 3. Ibid., p. 271.

<sup>4.</sup> The Ancient Geography of India, edited with an Introduction and Notes by S. Majumdar (Calcutta, 1924), p. 385.

<sup>5.</sup> Ibid., p. 702.

on Prthūdaka: "Referred to in the Kāvyamīmāmsā (p. 93) as the boundary between Northern and Central India." Jaya Chandra Narang1 goes as far back as Patañjali in referring to this town: "Uttarapatha is defined.....as the country to the north of Prithudaka, i.e. the modern Pihowa on the Sarasvatī...."

Nor is this the sole Dionysian item of geography to be noted. In the Hathigumpha inscription of Kharavela (second half of the 1st century B. C.) we read of the claim of this king of Kalinga to have devastated Pithuda, the capital of a king of the Masulipatam region in the Madras State. Khāravela's Pithuda seems to be the same as Pitundra, metropolis of the Masoloi according to the geographer Ptolemy (c. 140 A. D.). And both the names appear to resolve only into the Sanskrit Prithuda.

Now we may turn to the religious aspect of Prithu to match that of Dionysus. Although king, he carried on profound religious practices, as the Matsya Purāņas informs us. And his pursuit of the earth, we may remember, was due to his anger at the neglect of Vedic rites and proper service. In the Rigveda he figures in one hymn (X. 148.5) as a rishi. There is, further, the suggestion from the compilers of the Vedic Index (II, p. 16) that. as D. R. Patil's puts it, "Prithu of the Rigveda was probably a vegetation deity." This brings him very close indeed to Dionysus as well as to Soma. And his connection with the vegetable world emerges too from the story of his pursuit of the earth. When the earth surrenders herself to his demands, there takes place "the milching of the earth". This act seems to have many levels of significance. On the most apparent, the idea which is prominent is rightly said by Patil4 to be "that the king must provide for his people means for sustenance especially through the vegetable world". But there is also here a relation to the Somaconcept. For, the "milching" involves the preparation of a wondrous drink from earth-products. And this drink assumes directly the aspect of Soma when we observe the circumstances

<sup>1. &</sup>quot;Structure of India in Relation to Language and History", The Cultural Heritage of India (Calcutta, 1958), p. 47.

<sup>3.</sup> Op. eit., p. 163. 4. Ibid.

under which the Vāyu Purāṇa mentions the deposition of Pṛithu's father Vena: Vena was deposed because he "held ideas against the performances of sacrifices and in his reign the gods did not partake of Soma at all".¹ And Pṛithu is declared, on his consecration as king, to have restored the Vedic sacrifices: he thus released, as it were, the rapture-wine from the earth for the gods. Thus one of the most Dionysian characteristics can be combined with Pṛithu.

When we look at the Rigvedic Vena we see in a still more Dionysian light the pertinence of the Puranic story of his depriving the gods of Soma. Vena in the Rigveda is not only called (X. 93.14) a "generous patron", the original bounty which in the Puranas is pictured as becoming perverted: he is also a form of the Vedic wine-god of delight, Soma, the true religious analogue of Dionysus. In one hymn (I. 83.4,5), where the birth of Light from the lower life and from its crookedness is spoken of, we have the expression: yatah sūryo vratapā vena ājani, "the Sun was born as the protector of the Law and the Blissful One".2 Vena is the word for "the Blissful One" and the Blissful One is that power or personality of the Supreme which is Bhaga and which is the creative enjoyer, the one who takes the delight of all that is created, the one to whom all creation is bhojanam. meaning both enjoyment and food. Bhaga is Soma, and Soma gets directly implied to be Vena when the Rigveda (IV. 58.4) speaks of three kinds of clarity (ghritam): "One Indra produced. one Surya, one the gods fashioned by natural development out of Vena." Sri Aurobindo, after giving this translation, comments: "Indra is the Master of the thought-mind, Surya of the supramental light, Vena is Soma, the master of mental delight of existence, creator of the sense-mind."

Thus Prithu Vainya gets steeped in a Soma-connotation. And Megasthenes was encouraged to catch it in a Dionysian shape from his Indian informants all the more by the very sound of

<sup>1.</sup> Ibid., p. 24.

<sup>2.</sup> Sri Aurobindo, On the Veda (Pondicherry, 1956), p. 276.

<sup>3.</sup> Ibid., p. 120.

<sup>4</sup> 

this hero's patronymic "Vainya". Just as the Indian hill-fortress Varaṇa becomes Aornos to Alexander's army and just as the Indian god-name "Varuṇa" is answered by the Greek "Ouranos", so too "Vainya" must have sounded to the Greek ear like the Greek "Oinos" (wine), "Oinē" (vine), "Oeneos" (vintner). We may recollect that Dionysus, because of his art of crushing grapes in the winepress, came to be termed "Lenaios". The Greeks may have understood Prithu to have been designated as "Vainya" for the same art.

While we are about Prithu and his father we may allude to the myth that Dionysus was bred in the thigh of his father Zeus and delivered from it to the world. The common myth concerning Prithu's birth is that he was born from the churning of Vene's left arm. But Ronald M. Huntington¹ has drawn attention to traditional sources which, instead of "left arm", read "thigh".

And this Purāṇic myth has yet another point worth marking, The expression "churning" is applicable only to a liquid, and the churned Vena assumes the look of an earth-nectar turned unproductive and needing to be revived-once more the idea of perverted Soma.

But, if the Vena of the Purāṇas reveals the sense of the Rigvedic Soma becoming perverted, then Prithu the saviour who is churned out of him grows the same Soma set right again: he is Soma once more delight and immortality, Soma restored to divinity.

Thus Prithu subsumes all that Soma brings of equivalence to Dionysus. Not only does he take into himself the godhead of wine, but also his status as the first consecrated king of earth merges in the kingship which for the first time came into being among the gods.

Even with Dionysus as Shiva, Prithu has a rapport. The Smriti (IX. 44) calls the earth Prithu's wife (bhāryā). So, if in the story of his pursuit of her she is given the form of a cow, he

<sup>1. &</sup>quot;The Legend of Prithu", Purana, vol. II, 1-2, July 1960, p. 190, fn. 8.

as her husband becomes by implication a bull. And the bull, ever since the Rigveda, has been a symbol of generation, inward or outward, spiritual or physical. Hence Prithu joins up on one side to the bull-form that went with the worship of Dionysus and on the other to the bull-vehicle that is Shiva's. And since Shiva with his phallus-emblem was a fertility god like Dionysus, Prithu by his connection with the vegetable world and even more as a vegetable deity gets assimilated with equal ease to both. The Greeks would find little difficulty in making their Dionysus a composite of Shiva and Prithu.

# The Sanskrit for the Name "Dionysus"

Our special formula of Dionysus=Prithu and our broad one of Dionysus=Shiva=Prithu would receive the finishing touch if in regard to Shiva and Prithu we could light upon an Indian equivalent of the name "Dionysus". This name as a whole has had various explanations: the terminal component has been taken as "Nusos" (Thracian for "son") or "Nusa" tree or "Nysa" (proper name of a mountain or a nurse). The only thing certain is the initial component "Dio" from "Dios" (God).

Now, it is well-known that the Indian "Deva" for the Greek "Dios" is particularly linked with Shiva: e.g. "Mahādeva" Great God. It is also evident from the story in Puranas and the Mahābhārata that the concept of King as Divinity derives from the consecration of Prithu is the first king to be considered Deva: the appellation Bhūdeva ("Earth-God") which is common in Indian literature for a king may be traced to the legend of his anointment. So we have for both Shiva and Prithu an Indian equivalent to the initial component of "Dionysus". The terminal component can find too its Indian equivalent with regard to them if we remember how first the companion of Alexander related the cult of Dionysus to India. They did so on reaching the town in the Hindu Kush, which they called Nysa after the name heard by them on its occupants' lips. They enthusiastically conjecured that Dionysus had given this town its name in honour of his nurse or of his mountain.1 Naturally then they would expect the

<sup>1.</sup> Arrian, Anabasis, V. 1; Indica, I. 1.

God worshipped there to be their own Dionysus and their expectations must have been amply fulfilled when they may have found this God, who was Shiva, called Deva: what could the Deva of Nysa be save Dionysus? Megasthenes, on longer stay in India, particularly in Magadha, heard of a king whose various achievements and functions answered to what the Greeks' own tradition had said about Dionysus, and this king was known not only as the first in an important sense but also as Deva: further, he had some associations in common with the Deva of Nysa. Would it be any wonder if he too got called Dionysus?

The appropriateness of the dubbing must have been confirmed for Megasthenes by a phrase he may have come across about this king. Since the God-head is said to have entered Prithu and Prithu to have become the first consecrated monarch by that divine Presence, one can imagine the informants of the Greek ambassador using for Prithu the apt phrase  $R\bar{a}j\bar{a}$  daivyena sahasā, "King with God-force". This phrase could very well be to Greek ears the Indian way of saying "Rājā Dionysus". It is a phrase easily for Prithu against a Purāṇic-cum-Vedic background. In the Purāṇas Prithu, with the Godhead in him, turned Truthwards the Earth-cow whose sacrificial and productive "milk" had been confined by irreligious powers. In the Rigveda (X.108.6) we have actually the expression sahasā daivyena about the heavenly Saramā who comes pressing upon the dark powers named the Paṇis to let the hidden Cows go upward to the Truth.

#### Some Final Considerations

Looked at from every angle, Prithu emerges as the Indian original of the Greeks' Dionysus in a multiple manner impossible to either Svāyambhuva or Vaivasvata. Even the role of Dionysus as law-giver, which affines Dionysus to Vaivasvata, is implict in Prithu's role as champion of Vedic rites and fosterer of trade and sovereign over a vast number of peoples and builder of cities. And though Vaivasvata is the father of the human ages and thereby looks plausible for the part of history-starter which Dionysus plays in the Greek account, the history he starts is joined with Prithu

in an important and organic way. The period at whose head stands Vaivasvata differs from all preceding periods in that, unlike them, it had cities and villages, knew agriculture, trade, pasture and cattle-breeding. And it knew all these things because of Pṛithu: Pṛithu has given a special distinguishing character to the Vaivasvata epoch and made the period, in which the Purāṇic dynasties from that Manu flourished, what it historically is.¹ Vaivasvata is thus significantly assimilated into Pṛithu.

Svāyambhuva himself, the sheer first of all earth-kings in the Purāṇas, is assimilated in a certain sense. The Matsya Purāṇa (X), after describing how Prithu chased and conquered the earth which was fleeing from him like a cow, says: "The land promised to obey the behests of the king. Then the king, after making Svāyambhuva Manu as his calf, milked the earth in the form of the cow with his own hands. The earth then produced different kinds of grain which support mankind." The strange psycho-symbolic phrase about Svāyambhuva renders that prime king a living portion of the Prithu-history, a power serving organically the achievement of the first consecrated monarch.

A last consideration, rounding off the rich many-sided equation of Prithu to Dionysus, is a legend connected with Magadha. We have argued that the 153 or 154 kings of Megasthenes trace the line upward from Sandrocottus, rather than from Alexander, to Dionysus and that they pertain to just the province of Magadha as their tail-end. It would be most appropriate if to balance Sandrocottus at the lower extreme as king of Magadha the list went back, with whatever intermediate breaks, to an original Magadhan monarch. The equation of Prithu to Dionysus makes Dionysus such a monarch, for the Brahma Purāṇa, which in the midst of later accretions is held to have very ancient matter enshrined in it, bears a legend in which "the first great Samrāt or Emperor of Magadha" is Prithu.

<sup>1.</sup> Cf. Vāyu Purāņa, 62. 170-74; also Patil, Op. Cit., p. 71.

<sup>2.</sup> The Sacred Books of the Hindus, p. 31.

<sup>3.</sup> B. C. Law, Tribes in Ancient India (Poona, 1943), p. 95.

<sup>4.</sup> The Cambridge History of India, p. 300.

#### The Kings from Dionysus to Sandrocottus

Now we may legitimately start counting after Prithu the 153 or 154 kings and see whether our Dionysus-theory of him leads us to a Chandragupta and which of the two possible Chandraguptas becomes our terminus.

As the Purāṇas are the main Indian source for the dynastic lists we have to make use of their detailed account. But in their present versions they are not uniform in these lists, though the variations are within certain limits. What we should try to reach is the primal Purāṇic list by means of collation. Pargiter, in his Ancient Indian Historical Tradition has set up a table of collated genealogical lines from the time of Vaivasvata to that of the Bhārata War. His Purāṇic Texts of the Dynasties of the Kali Age collates the members of the eight dynasties which the Purāṇas set ruling in Magadha. As for the line from Prithu to Vaivasvata, the collated picture in outline is in Pusalker's remark in The Vedic Age!: "Fifth in descent from Prithu was Daksha, whose daughter's grandson, Manu Vaivasvata, saved humanity from the deluge....."

If Daksha is the 5th descendant from Prithu, Vaivasvata's number is 8 because he is 3rd in descent from Daksha. The details of the picture may be filled in from the Purāṇas, with Daksha's daughter Aditi substituted by her husband Kaśyapa. Of course, Prithu himself stands unnumbered outside the picture at the upper end just as a Chandragupta will have to stand at the lower: 153 or 154 kings have to be in "the intermediate period" between these two.

#### Prithu Vainya

Antardhāna (or Antardhi)
 Daksha
 Havirdhāna
 Kaśyapa
 Prāchīnabarhisha
 Vivasvata

4. Prachetas 8. Manu Vaivasvata

But how shall we count after Vaivasvata? He had 10 sons founding 10 families ruling over various sections of the

<sup>1.</sup> Vāyu Purāṇa, II. 22, 23, 25, 26, 39, 41; Matsya Purāṇa, XI.

country.¹ Are we to count whatever members of all these families are found, on collation, in the Purāṇas? In reference to the Solar and Lunar lines into which the Purāṇas branch off Vaivasvata's progeny, Mankad² who has mistakenly attempted tracing from Vaivasvata the entire number of kings given by Megasthenes has yet some very perspicacious observations to guide the counting. He says that we have to proceed in two instalments. First we must come down from the time of Vaivasvata to that of the Bhārata War and afterwards go on to the time of Alexander. But, in order to make the two movements a single whole, we must remember that Sandrocottus, the king before whom the Greek number completed itself and whose Indian counterpart we have to reach, was a Magadhan king. Therefore, we must move from Vaivasvata in such a way as to get along the Magadhan branch.

The Magadhan branch, in all the Purāṇas, is always put in direct continuation of the Lunar line. So we have to ignore the Solar line coming down to the Bhārata War and continuing further for about 30 kings. But the Lunar line has several branches and we have to ignore all except the one which carries us to the kings of Magadha before and during and after the Bhārata War. The king of Magadha who died in the Bhārata War was Sahadeva, the son of Jarāsandha. So, prior to taking up the main theme of the Purāṇic lists, the kings of Magadha subsequent to the War, we have to count along a course which leads from Vaivasvata to Sahadeva: we must not bring in any king occuring along another course.

With the correct procedure established, we have next to look at Pargiter's list<sup>3</sup> of the appropriate kings down to Sahadeva. In this list, one name is put by him within brackets: it is Bharadvāja. The bracketing is done because Bharadvāja, as Pargiter relates on page 159 of his book, never sat on the throne; an adopted son of Bharata, he consecrated his own sun Vitatha as Bharata's successor after the latter had died. So we must

<sup>1.</sup> The Vedic Age, p. 271.

<sup>2.</sup> Op. cit., p. 4.

<sup>3.</sup> Ancient Indian Historical Tradition, pp. 144-49.

omit Bharadvaja if we are to take the actual kings. Then, with Manu Vaivasvata as number 8 and his daughter Ila replaced by her husband Budha, we get the following table:

8.	Manu	31.	Bhuvamanya
9.	Budha	32.	Brihatkshatra
10.	Purūravas	33.	Suhotra
11.	Ayu	34.	Hastin
12.	Nahusha	35.	Ajamīdha
13.	Yayāti	36.	Ŗiksha
14.	Pūru	37.	Samvaraņa
15.	Janamejaya I	38.	Kuru
16.	Prachinvant	39.	Sudhanvan
17.	Pravīra	40.	Suhotra
18.	Manasyu	41.	Chyavana
19.	Abhayada	42.	Krita
20.	Sudhanvan-Dhundu	43.	Vasu
21.	Bahugava	44.	Brihadratha
22.	Samyāti	45.	Kuśāgra
23.	Ahamyāti	46.	Rishabha
24.	Raudrāśva	47.	Pushpavant
25.	Richeyu	48.	Satyahita
26.	Matinara	49.	Sudhanvan
27.	Tamsu	50.	Ūrja
28.	Dushyanta	51.	Sambhava
29.	Bharata	52.	Jarāsandha
30.	Vitatha	53.	Sahadeva

Coming to the Magadhan kings after the Bharata War, we have 8 dynasties whose member have been enumerated one after another and who therefore can be counted. We shall follow Pargiter's collection of the relevant Puranic texts. About the Bārhadrathas he1 tells us: "There were 32 kings altogether, 10 before the battle and 22 after." We have already mentioned the earlier 10, from Brihadratha to Sahadeva. About the Pradyotas we learn2 that they were 5. About the Sisunagas we are told:3

<sup>1.</sup> The Puranic Texts of the Dynasties of the Kali Age (London, 1913), p. 13.

<sup>2.</sup> Ibid., p. 19, line 10; p. 68. 3 Ibid., pp. 20, 65.

"All the authorities say that there were 10 kings." The Nandas are given as 9 a father and 8 sons. Of the Mauryas "the best attested number is 10".2 The Sungas have the same number: 10.3 The Kanvas count 4.4 On the Andhras, Pargiter writes: "The Vāyu, Brahmānda, Bhāgavata and Visnu all say there were 30 kings...and 30 is no doubt the correct number." Let us put the "best attested" counts in a table:

Barhadrathas	22
Pradyotas	5
Śiśunāgas	10
Nandas	9
Mauryas	10
Śuṅgas	10
Kāņvas	4
Āndhras	30.

At two places we shall have a king named Chandragupta to answer to Sandrocottus. First, immediately after the Nandas. The number of this Chandragupta, founder of the Mauryas, is after (22+5+10+9=)46. But 46 added to the previous 53 yields only 99 whereas the number preceding him should be 153 or 154. So Chandragupta Maurya is ruled out.

The next Chandragupta will come after the Andhras to found the dynasty of the Imperial Guptas. The sum-total of kings at the end of the Andhras-that is, at the end of all the 8 countable dynasties said to have ruled over Magadha-is (22+5+ 10+9+10+4+30=) 100. If we add these 100 kings to the 53 before them we obtain 153-exactly one of the two kingnumbers from Megasthenes for "the intermediate period" between Dionysus and Sandrocottus.

Even the other number-154-becomes both apt and intelligible on a back-view of Pargiter's table. For 153 is reached on omission of Bharadvaja who never sat on the throne. But if we include him because he was next after Bharata and just before

<sup>1.</sup> Ibid., p. 25, line 7; p. 26, line 7; p. 69.

<sup>2.</sup> Ibid., pp. 27, 70.

<sup>3.</sup> Ibid., pp. 33, 70. 4. Ibid., p. 71. 5. Ibid., pp. 36, 72.

Vitatha we shall get 154 dynastic names. Thus both the numbers from Megasthenes get aligned to the Purāṇas with an astonishing accuracy.

It seems impossible to doubt that Prithu Vainya at the commencement and Chandragupta I of the Imperial Guptas at the termination are what the Indian informants of Megasthenes intended when they spoke of a king-series from Dionysus to Sandrocottus. Through Megasthenes the Purāṇic chronology of the rise of the Imperial Guptas in c. 325 or 324 B.C. appears to be completely vindicated.

### Some Possible Objections Answered

However, a few objections may be raised. One may say: "The Purāṇas designate the Pradyotas as kings of Magadha, but modern research is disposed to put them on the throne of Avantī. Also, modern research has not struck upon any definite evidence to regard the Āndhra Sātavāhanas as Magadhan kings. If we knock the two dynasties out, there will never be 153 or 154 kings before Chandragupta I along the Magadhan line backward to Prithu.

The answer is very simple: "To begin with, modern research is not yet unanimous: scholars like V. Smith, do not agree with the majority opinion. But even if this opinion happens to be correct, our argument stands. For, we are unconcerned at the movement with the issue of the Purāṇas' correctness in this matter: we are concerned with nothing else than what the Purāṇas record and what we are supposing their pundits to have conveyed to the Greek ambassador in the time of Sandrocottus. The issue really is: 'Does the Purāṇic list, right or wrong, correspond numerically to that of Megasthenes? The correspondence is very striking."

One may also object: According to Pargiter's careful analysis,<sup>2</sup> the scheme of genealogy from Vaivasvata to Sahadeva,

<sup>1.</sup> The Early History of India (London, 1934), Chapters II and VIII. Vide also Anand Swarup Gupta, "The problem of Interpretation of the Purāṇas," Purāṇa, Vol. VI, No. 1, January, 1965, p. 68, fn. 37, on the question of the Pradyotas.

<sup>2.</sup> Ancient Indian Historical Tradition, pp. 144-49.

inclusive of both, comprises 94 generations. To take only (53-7=) 46 king-names, as you do, misrepresents the state of affairs. You should really count 94 kings and, adding the 7 more up to Prithu, get 101 names before the Bhārata War. Then the total number will be (101+100=) 201 instead of 153. This will throw the Purāṇas out of tune with Megasthenes and invalidate your whole procedure and proving."

Here also the main point is overlooked. We do not affirm that only 46 kings existed from Vaivasvata to the Bhārata War along the line we have to choose as the sole legitimate one. Nor do the Purāṇas make such an affirmation: Pargiter¹ has shown that they do not really claim to be exhaustive about any line. But our concern is simply with the number of names actually offered and with the problem: "Does it agree or not with the Greek account?" Pargiter's analysis of the generations makes no odds. A most notable agreement is there. Both our procedure and proving remain untouched.

The only objection truly worth weighing arises from Arrian's concluding remark: "The Indians also tell us that Dionysus was earlier than Heracles by fifteen generations." In the context of the king-series, Heracles is evidently meant to have been either fifteenth in the list or contemporaneous with whoever else was fifteenth. But we know who Heracles was, from Arrian's own slightly earlier statement (Indica, I, viii): "Heracles...who is currently reported to have come as a stranger into the country is said to have been in reality a native of India. This Heracles is held in especial honour by the Sourasenoi, an Indian tribe who possess two large cities, Methora and Cleisobora, and through whose country flows a navigable river called the Jobares. But the dress which this Heracles wore, Megasthenes tells us, resembled that of the Theban Heracles, as the Indians themselves admit. It is further said he had a numerous progeny of male children born to him in India (for, like his Theban namesake, he married many wives) but that he had only one daughter. The name of this

<sup>1.</sup> Ibid., p. 89.

child was Pandaia, and the land in which she was born and with the sovereignty of which Heracles entrusted her was called after her name Pandaia." Sufficient clues have been seen by scholars1 in this account to identify Heracles. D. R. Bhandarkar equates him with Krishna Vāsudeva (plus Krishna's brother Balarāma) and the Sourasenoi with the Surasenas or Satvatas. Lassen,, McCrindle and Hopkins state that Methora and Cleisobora are respectively Mathura and Krishnapura on the Jamuna (Jobares). The story about Pandaia is a confused reference to Krishna's close personal association with the Pandavas in the Bharata War and to his family-tie to them by the marriage of his sister to the Pandava Arjuna. But if Heracles is Krishna, how, in any sense, can he be 15th after Dionysus or Prithu? He cannot be even 15th from Vaivasvata, for he was a contemporary of Sahadeva. In fact, Pargiter, when followed not along the Lunar line leading to Sahadeva but along another line of the Lunar family which leads to Krishna, shows him to be the 53rd name, though the 94th generation, if Vaivasvata is the 1st name and generation. This would make him (53 + 7 =) 60 in name-number after Prithu and (94+7=) 101 in generation after him. Hence the account of Megasthenes cannot be equated here to the Purānic results and the rift threatens to invalidate our conclusions, by means of Puranic comparison, in favour of Chandragupta I.

One may put up the defence that the rift may be due to a slip by the copyists of Megasthenes, like the egregious yet obvious error of a much smaller time-gap between Dionysus and Sandracottus than between Dionysus and Alexander. Such a slip need not prejudice the highly impressive correspondence already traced. But, of course, it would be better if the discrepancy could be explained away. And actually there is a way out of the difficulty. It lies in inquiring: "Can Krishna be put, in some sense or other, immediately after the 14th name in our Puranic list so that he may be the 15th after Prithu? If he can, we may legitimately suggest that Megasthenes has made a mix-up without truly falsifying the Puranic information.

<sup>1.</sup> Pusalker, Studies in the Epics and Puranas. p. 64.

When we examine our Puranic list we find that 14th after Prithu is Pūru, the son of Yayāti. But Pūru is not the only son: we have named him alone because through him we arrive ultimately at the Magadhan line. Pusalker,1 drawing upon the Purānas and the Mahābhārata, tells us, as also does Pargiter by his tables: "Yayāti had five sons. Devayānī bore two, Yadu and Turvasu, and Sarmishtha three, Anu, Druhyu, and Puru." All these sons are 14th after Prithu. Pusalker continues: "Yadu. the eldest son of Yayati, founded the Yadavas, the first Lunar dynasty to rise into prominence." The greatest and almost the last Yādava was Krishna.8 Now, the term "Yādava" means in general a member of Yadu's family but its first and immediate meaning is "son of Yadu." If Krishna the Yadava is understood as son of "Yadu", then, since Yadu is 14th after Prithu, Krishna is 15th. And he is 15th not only as a name: those who are next in succession to Yadu-his "sons", as they are called-are 15th in generation no less than in name-number, and therefore Prithu would be exactly 15 generations earlier than Krishna who according to us, substituted one of these sons in Megasthenes's understanding.

The precise generation-number 15 into which Kṛishṇa as' "Yādava" could fit is too suggestive to be without relevance to our problems of Dionysus's having been "fifteen generations earlier than Heracles". Besides, the very name of the son, through whom the line which nearly ended with Kṛishṇa came into being is somewhat allied in sound to Kṛishṇa's own: it is Kroshṭri.

Thus every objection can be met. And we may hold, in conclusion, that Megasthenes, on his own evidence, was not a contemporary of Chandragupta Maurya. He is historically on the side of the Purāṇic chronology in so far as it leads to the accession of Chandragupta I in c. 325 or 324 B. C. His chronological information came from Indians who in c. 302 B. C.—the date of his arrival at the court of Sandrocottus—were setting up their time-scheme with the end of Pṛithu's semi-legendary reign at one extreme and at the other the rise of the Imperial Guptas in their own day.

<sup>1.</sup> The Vedic Age, p. 274.

#### By

#### V. V. MIRASHI

िनिबन्धेऽस्मिन् विदुषा छेखकेन प्रथितानि त्रीणि प्राचीनानि सूर्यमन्दिराणि कुत्र आसन्निति विवेचितम् । सूर्यपूजा भारतदेशे प्राचीनकालतः प्रचलति । लेखकमहोदयस्य मतानुसारेण त्रीणि सूर्य-मन्दिराणि समग्रे भारतवर्षे प्रसिद्धानि आसन्, यानि च मन्दिराणि मुलस्थाने, सुतीरे तथा कालप्रिये ( अधुना 'कालपी' इति नाम्ना प्रथिते स्थाने ) आसन्, इत्यत्र पुराणशिलालेखकाव्यादीनां प्रामाण्येन प्रति-पादितम् । लेखकमहोदयैः 'स्टडीज इन इण्डोलाजी' नामके स्वयन्थे पूर्वमेवेदं प्रतिपादितम्, यत् कालप्रियं तु 'कालपी' एवासीत्। महाकवे भ्वभूतेः त्रीण्यपि नाटकानि कालप्रियनाथस्य उत्सवे एव अभिनीतानि । अतः, भवभृतेर्नाटकानामभिनयः कालपीस्थसूर्य-मन्दिरस्य प्राङ्गणे कृतः। किन्तु डा० काणेमहोदयैः एष विचारः उत्तररामचरितनाटकस्य स्वीयप्रस्तावनायां नानमोदितः । तेषां मता-नसारतः कालप्रियनाथस्योत्सवः उज्जियनीस्थप्रियतमहाकालमन्दिरस्यो-त्सव एव । अतस्तत्रैवाभिनीतानि भवभूतेर्नाटकानि । अथवा कालप्रिय-नाथस्तु भवभृतेर्जन्मस्थानस्य पद्मपुरस्य शिवलिङ्ग एवासीत्, तस्योत्सवे एषामभिनयः क्रतः। अत्र डा॰ मिराशीमहोदयैः डा॰ काणे-महोदयानां मतस्य निरसनपूर्वं स्वीयमतस्य स्थापना कृता। अत्र वाराह-भविष्य-साम्ब-स्कन्दपुराणानां तथा च शिलालेखादिप्रमाणा-नामाधारेण स्थापितः यत् कालप्रियस्त कालपीनगरस्यैव वाचकः यन्नगरं यमनायाः दक्षिणे तटे वर्त्तते यस्य स्थानस्य उल्लेखः काम्बेक्षेट शिलाफलके वर्तते। 'मूलस्थानं' तु पञ्जाबप्रान्तस्य 'मुल्तान'नगरम् , यस्य वर्णनम् ह्वेनसांगनामा विद्रषा कृतम् । सुतीरश्च उडीसाप्रान्तस्य कोणार्कः।

Sun-worship has been prevalent in India from very early times. In course of time sun-temples came to be erected in different parts of India to which we get references in inscriptions. Of these there were three temples which were greatly venerated throughout India. It is proposed to give information about them

culled from the Purāṇas and other works of Sanskrit literature and also inscriptions and other sources.

According to tradition these temples were constructed by Sāmba, the son of Kṛṣṇa. Several Purāṇas such as the Bhavisya, Varāha and Skanda give the story of Sāmba. When Nārada told Krsna that some of his wives were in love with Samba, Krsna investigated the matter and cursed Samba that he would suffer from leprosy. Thereafter, Samba repaired to Mulasthana and there he propitiated the Sun-god, by whose grace he was cured of that fell disease. The god then told him that he would soon obtain his image, which he should instal at that place. Samba. accordingly, noticed an image of the Sun-god floating in the river Candrabhaga, when he had gone there to bathe. He removed the image from the stream and established it in Mitravana. The god next told Samba that the image had been fashioned by Viśvakarman, the architect of the gods, out of the Kalpavrksa and sent down the Candrabhaga for his sake. The god next added-

### सांनिध्यं मम पूर्वाह्णे सुतीरे द्रक्ष्यते जनः। कालपिये च मध्याह्णे ऽपराह्णे चात्र नित्यशः॥

(The people will always notice my presence in the forenoon at Sutīra, at noon at Kālapriya and in the afternoon at this place (i. e. Mūlasthāna). (Some MSS. of the Purāṇa read Muṇḍīre in place of Sutīre).

The Varāhapurāṇa also mentions these places in the following verses which give some more details about them<sup>2</sup>—

साम्बः सूर्यप्रतिष्ठां च कारयामास तत्त्वित्। उदयाचले च संश्रित्य यमुनायाश्च दक्षिणे॥ मध्ये कालप्रियं देवं मध्याहे स्थाप्य चोत्तमम्। मूलस्थानं ततः पश्चादस्तमानाचले रविम्। स्थाप्य त्रिमूर्ति साम्बस्तु प्रातमध्यापराह्विकम्॥

<sup>1.</sup> Bhavisyapurāna, I, 129, 16.

<sup>2.</sup> Varāhapurāņa (Venkate vara Press) 177, 55-57.

These verses tell us that Samba established the images of the Sun-god at three places—viz. (1) on the eastern mountain (ii) at Kālapriya on the southern bank of the Yamunā and (iii) at Mūlasthāna on the western mountain.

Of these three places, Mulasthana is modern Multan in the Panjab. That there was a famous temple of the Sun at this place which attracted pilgrims from all parts of India is well known. Hiouen Tsang gives the following description of this temple in Mulasthanapuras: - "There is a temple dedicated to the Sun very magnificent and profusely decorated. The image of the Sundeva is cast in yellow gold and ornamented with rare gems. Its divine insight is mysteriously manifested and its spiritual power made plain to all. Women play their music, light their torches, offer their flowers and perfumes to honour it. This custom has been continued from the very first. The kings and high families of the five Indies never fail to make their offerings of gems and precious stones (to this Deva). They have founded a house of mercy (happiness) in which they provide food and drink, and medicines for the poor and sick, affording succour and sustenance. Men from all countries come here to offer up their prayers: there are always some thousands doing so. On the four sides of the temple there are tanks with flowering groves where one can wander about without restraint."

When Muhammad Kasim captured Multan, he is said to have obtained thirteen thousand two hundred maunds of gold from this temple. The Arabs were iconoclasts, but they allowed the worship of the Sun image at Multan to continue as it brought them a large revenue from the offerings of the devotees. Pratīhāras of Kanauj and other powerful rulers of North India tried to wrest this town from the possession of the Muslims, but did not succeed; for when the Arabs were opposed by greater numbers 'they threatened to break the idol and the Hindus retired.'4

<sup>3.</sup> Travels of Hiouen Tsang by S. Beal, Vol. IV (pub. by Susil Gupta),

<sup>4.</sup> C. V. Vaidya, History of Mediaeval Hindu India, Vol. II, pp. 197 f.

The second temple of the Sun was situated at Sutīra (or the beautiful shore of the ocean). In the forementioned passage from the Varāhapurāna it is said to be on the eastern mountain. In the Skandapurāna this place is called Mundīra. In the Sāmbapurāna it is called Sūrya-kānana or Raviksetra, while the Brahma-purāna is more explicit in that it calls it Koṇāditya or Koṇārka in Utkala (or Odra-deśa).<sup>5</sup> This is evidently modern Konārak, a famous temple of the Sun, about thirty miles from the town of Purī in Orissa. The existing temple was built by the Ganga king Narasimha I in the thirteenth century A. D. About its architectural importance Sir John Marshall says.6 "If the question were put to me, which are the noblest monuments of ancient India, I should name without hesitation the following: among Muhammadan monuments, the Taj Mahal at Agra; among Hindu, the Black Pagoda at Konārak and the Kailāsa temple at Ellora; and among Buddhist, the frescoed cave-temples of Ajanta and the Stupas of Sañci." The temple at Konārak is built on the sandy shore in a solitary place. The site was evidently held sacred from very early times and the present temple was evidently erected in place of an earlier one which had fallen in ruins.

Dr. P. V. Kane has objected to this identification on the following grounds?—(1) There is another reading Mundīre for Sutīre. This is very important, Mundire would be the Sun-temple of Modhera, which is about 18 miles from Pāṭan in North Gujarat and which was built about A. D. 1026. The passage of the Bhavisyapurāṇa mentioning it would then have to be referred to the 11th century or later and would be of no use in establishing the existence of these Sun-temples before A. D. 700. (2) The Varāhapurāṇa mentions that the temple of the Sun was on the rising mountain. None can say that the temple of the Sun at Koṇārka is situated on the rising mountain.

These objections have no force. As regards the first, Mundira cannot be identified with Modher where a temple of

<sup>5.</sup> R. C. Hazra, Studies in the Upa-puranas, p. 106.

<sup>6.</sup> The Monuments of Sanchi, p. 1.

<sup>7.</sup> P. V. Kane, Uttararāmacharita of Bhavabhūti, Fourth Ed. Introd., p. 13.

the Sun was constructed in the 11th cen. A. D. Even if we accept the reading Mundire in place of Sutire in the puranic passage cited above, the reference in it cannot be to the temple in Gujarat; for the description in the puranic passages shows that the temple at Mundīra was in the east (of India). Modher is not in eastern India. As for the second, the eastern mountain means the eastern direction here.8 Udayācale and astamānācale in the puranic passages cited above mean only in the eastern and western directions' respectively. As regards Dr. Kane's objection that the temple of Konārka is not situated on a mountain one may well ask 'Is Mulasthana (Multana), about the identification of which there is not the slightest doubt, situated on a hill?' Such objections have no force.

In this connection I may quote here the opinion of Dr. R.C. Hazra, who is an acknowledged authority on the Puranas.9

"Sutīra (literally meaning 'beautiful shore') must be another name for Mundīra, which, again, must be very close to, or even identical with, Konārka, situated on the sea-shore, very close to the river Candrabhaga (a branch of the river Prachi) in Orissa." (Studies in the Upa-puranas, p. 105).

The third famous place of Sun-worship was Kalapriya identified with modern Kalpi on the southern bank of the Yamuna Some years ago in an article entitled 'Identification of Kalapriyanātha' published in my Studies in Indology, Vol. I, pp. 33f.10 I identified Kalapriyanatha at whose fairs all the three plays of Bhayabhūti were staged, with the Sun-temple at Kalpī. Tripurarī. a commentator of Bhavabhūti's Mālatīmādhava,, identifies Kālapriyanātha with Mahākāla of Ujjayinī. Dr. Kane accepted this identification in his third edition of the Uttararamacarita. In the aforementioned article I drew attention to the puranic passages cited above which showed that there were three famous temples

<sup>8.</sup> Dr. Hazra takes Udayācala to refer to Udayagiri in Orissa. (Studies in the Upa-puranas, p. 107.)

<sup>9.</sup> Ibid., p. 105.

<sup>10.</sup> The view was first expressed in the Marathi periodical Yugavāni of Nagpur (1947).

of the Sun in India in ancient times—one on the eastern mountain or shore, the second at Kālapriya on the southern bank of the Yamunā and the third at Mūlasthāna on the western mountain and that it was believed that the Sun-god was present there in the morning, at mid-day and in the evening respectively. From these passages it could be easily inferred that Kālapriyanātha at whose fairs all the three plays of Bhavabhūti were first staged was the Sun-god and that his temple was situated at Kālpī on the southern bank of the Yamunā. This view received confirmation from the following verse from the Cambay plates of Govinda III, descriptive of the Rāṣṭrakūṭa king Indra III's march on and devastation of the Gurjara-Pratīhāra capital Kanauj.<sup>11</sup>

# यन्माद्यवृद्धिषदन्तघातिवषमं कालप्रियप्राङ्गणं तीर्णा यत्तुरगैरगाधयमुना सिन्धुप्रतिस्पर्धिनी । येनेदं हि महोदयारिनगरं निर्मूलमुन्मूलितं नाम्नाऽद्यापि जनैः कुशस्थलमिति ख्यातिं परां नीयते ॥

"(The courtyard of (the temple of) Kālapriya was rendered uneven by the strokes of the tusks of his (i. e. Indra III's) rutting elephants. His horses crossed the unfathomable Yamunā which rivals the ocean in expanse. He completely devastated the enemy's city Mahodaya so that even now it has become greatly renowned among the people by the name Kuśasthala (land full of grass)."

This verse shows that the whole army of Indra III could be encamped in the extensive courtyard of the temple of Kālapriyanātha and that thereafter his horses had to cross the Yamunā in the course of the invasion of Kanauj. The editor of the plates identified Kālapriya with the god Mahākāla at Ujjayinī, 12

<sup>11.</sup> Ep. Ind., Vol. VII, pp 36 f.

<sup>12.</sup> In the introduction to his edition of the plates Dr. D. R. Bhandarkar remarked, "It thus appears that in his expedition of conquest in Northern India, Indra III halted at Ujjain to pay homage to the god." Ibid., Vol. VII, p. 30. Dr. Altekar, however, in his Rāshṭra-kūtas and Their Times, p. 102, n. 44, correctly identified Kālapriya with Kālpī. He says that there still exists a temple of Kālapriya at Kālpī. This requires verification.

but the description does not suit a temple at |Ujjayinī which lies far to the south of the Yamuna.

Dr. Kane has subjected this identification of Kalapriyanatha mentioned in the plays of Bhavabhūti with the Sun-god at Kālpī to a lengthy criticism in the Introduction to the fourth edition of the Uttararamacarita recently published by Motilal Banarasidas. He has accepted the reading Kalapriyanatha and taken it as referring to Siva. But this reading involves the fault of viruddhamatikrit as in the case of Bhavani-pati as pointed out by Mammata.13 As regards the other reading Kalapriyanātha Dr. Kane has raised the following objections against my view:-

- (1) Kālapriyanātha cannot be the name of the Sun-god. He is Mahākāla of Ujjayinī. This temple was famous even before the time of Kālidāsa. It would be quite appropriate and beneficial for an aspiring poet to have his drama presented at the festival of such a famous shrine as that of Mahākāla of Ujjayinī, where thousands of people flocked from all parts of India. True that Siva is not called Kālapriyanātha, but he is called Kālapūjita in the Anuśāsanaparvan and Kālanātha in the Sāntiparvan. These names are not very different from Kalapriyanatha. It is noteworthy that the sungod also is not called Kalapriyanath in the Puranas. There he is named Kalapriya. So he cannot be identical with the Kalapriyanatha of Bhavabhuti.
- (2) The Varāhapurāna, which refers to Kālapriya is a later purāņa. It expressly says that Sāmba revised the Bhavişyapurāņa and then established the Sun's images. This shows that the Varāhapurāna mentions new places of sun-worship as established by Samba, not mentioned in Bhavisya before.
- (3) All the three plays of Bhavabhūti were staged at the fairs of Kalapriyanatha. They were certainly composed at different periods probably separated by a good many years. There is not an iota of direct or indirect evidence testifying to Bhavabhūti's long or frequent stay at Kalpi (if we accept the identification of Kālapriyanātha with the Sun-god at Kālpī.) He is said to have

<sup>13.</sup> भवानीपतिश्रव्दो भवान्याः पत्यन्तरे प्रतीति करोति । Kavyaprakasa, Ullasa, VIII.

received the patronage of Yasovarman, king of Kanauj, but for this we have to rely on the  $R\bar{a}jatarangin\bar{i}$  of Kalhana composed about four centuries after Bhavabhūti and it is quite possible that Kalhana relies on mere tradition or at most on a verse in the Gaudavaho itself.

- (4) No Purāṇa or other important text has been produced speaking of Kālapriyanātha as a Sun-temple, nor has it been shown that the word nātha was added to any Sun-temples in ancient or mediaeval times. Why should we not have other names of the Sun like Mūlasthānanātha?
- (5) The passage from Rājaśekhara's Kāvyamīmāmsa<sup>14</sup> 'यो गाघिपुरस्य दक्षिणः स कालप्रियस्योत्तरः'। only shows that Kālapriya (which may mean Kālpī or some other town) was to the south of Gādhipura (Kanauj). There is nothing to show that in this passage directions or distances of temples are intended.
- (6) The worship of the Sun in temples was introduced late in India. Several chapters of *Bhavisya* (*Brāhma*) such as 139-146 are meant for bolstering up the status of Magas and Bhojakas.

For these reasons Dr. Kane concludes that the most probable view is that Kālapriyanātha is the name of a local shrine of Śiva at Padmapura. He says that the next probable view is that it is the Mahākāla temple of Ujjayinī.

#### Examination of the Objections

Dr. Kane has devoted as many as eleven pages of his Introduction to the examination of my view about the identification of Kālapriyanātha. There is much repetition in this rambling discussion, but I have stated above in his own words what appear to me his most important objections to my view. We shall now proceed to examine them critically.

Objection 1—It is admitted that the temple of Mahākāla at Ujjayinī is very ancient and was a famous place of pilgrimage. But this is no reason for its identification with the temple of Kālapriyanātha mentioned in Bhavabhūti's plays. As a matter

<sup>14.</sup> Kāvyamīmāmsā (G. O. S., 1916), p. 94.

of fact Dr. Kane gives up this identification in the end and identifies Kalapriyanatha with the god in a Saiva temple at Padmapura, of which there is absolutely no evidence. Again, Dr. Kane has not been able to find Kalapriyanatha as a name of Siva anywhere. After searching the Mahābhārata and the Purānas he could find only Kālapūjita and Kālanātha as adjectives or names of Siva. He therefore puts the counter question 'Is the name Kalapriyanatha of the Sun found in the Puranas? It is easy to answer this question. Kalapriya was the site of a famous temple of the Sun in ancient times. From the passages cited above from the Bhavisya and Varāha purānas it is evident that there were three famous temples of the Sun-god—(1) one on the eastern shore where the god was believed to be present in the morning; (2) the second at Kālapriya, where the god was present at mid-day and (3) the third at Mulasthana or on the western mountain, where he was present in the evening. The Sun received the name Kalapriyanatha because he was the god (natha) of Kalapriya. That Kalapriya was the ancient name of Kalpi, situated on the southern bank of the Yamuna is clear from the description of Indra III's invasion of Kanauj cited above from the Cambay plates of Govinda IV and from the statement of Rajasekhara यो गाधिपुरस्य दक्षिणः स कालप्रियस्योत्तरः । That there was an extensive temple at Kalapriya is clear from the above cited verse from the Cambay plates and that the god installed there was the Sun-god is evident from the passages cited above from the Bhavisya and Varāha Purānas.

What is the distinctive part of the name Kālapriyanātha— Kālanātha or Kālapriya? The readers should judge this by themselves and decide which of the two views appears probable.

Objection 2—When an advocate finds that the statement of a witness is going against the interest of his client, he tries to prove that the witness was not present at the place when the event in question took place. Since the Varahapurana clearly says that there was a temple of the Sun-god at Kalapriya where he was believed to be specially present at mid-day, Dr. Kane has

tried to prove that the Purāṇa is later than the time of Bhavabhūti. But he has not succeeded in it. He first selected the reading Muṇḍre as being convenient for his view and identified the place with Moḍher, where a temple of the Sun was constructed in the 11th cen. A. D. He thus tried to show that the Varāhapurāṇa, which mentions this temple of the Sun, was composed several centuries after Bhavabhūti and therefore its evidence on the present question is of no avail. But as we have shown above, Muṇḍīra, which was situated in eastern India, cannot be identified with Moḍher in Gujarāt. So this argument has no bearing on the date of the Varāhapurāṇa.

Dr. Kane has next attempted to show that the Varāha-purāṇa, which mentions the Sun-temple at Kālapriya is later than the Bhaviṣyapurāṇa. For this purpose he has cited the following passage from the Varāhapurāṇa. 15

साम्बस्तु सह सूर्येण रथस्थेन दिवानिशम् । रविं पप्रच्छ धर्मात्मा पुराणं सूर्यभाषितम् । भविष्यमिति विख्यातं ख्यातं कृत्वा पुनर्नवम् ॥ साम्बः सूर्यप्रतिष्ठां च कारयामास तत्त्वित् । उदयाचलमाश्रित्य यमुनायाश्च दक्षिणे ॥ मध्ये कालप्रियं देवं मध्याहे स्थाप्य चोत्तमम् । मुलस्थानं ततः पश्चादस्तमानाचले रिवम् ॥

Dr. Kane construes the hemistich भविष्यमिति विख्यातं ख्यातं कृत्वा पुनन्वम् with the following verse, but it would be more natural to connect it with the preceding hemistich रवि पप्रच्छ धर्मात्मा पुराणं सूर्यभाषितम्। Even admitting that the Varāhapurāṇa is later than the Bhavisyapurāṇa, how does it follow that it (or at least the relevant passage in it) is later than the age of Bhavabhūti? Dr. Kane has himself remarked that it is difficult to determine the age of purāṇic passages. The Bhavisya is believed to be an ancient purāṇa, though there might be interpolated passages in it as in other Purāṇas. The Varāhapurāṇa, though later than the Bhavisya,

<sup>15.</sup> Adhyāya 177, verses 54-57.

need not, on that account, be regarded as later than the time of Bhavabhūti.

Again, as already shown, the Bhavisyapurāṇa also mentions the Sun-temple at Kālapriya in the following verse<sup>16</sup>—

### सांनिध्यं मम पूर्वाह्ने सुतीरे द्रक्ष्यते जनः। कालप्रिये च मध्याह्ने ऽपराह्ने चात्र नित्यशः॥

Nay, the passage is still older; for it occurs in the following corrupt form in the  $S\bar{a}mbapur\bar{a}na$  as shown by Dr. Hazra<sup>17</sup>—

## सांनिध्यं मम पूर्वाह्वे उदिते रज्यते जनः। कालात्यये च मध्याह्वे सायाह्वे चात्र नित्यशः॥

From this it is clear that the Sāmbapurāṇa, which is the oldest Purāṇa in which the story of Sāmba and the temple at Mūlasthāna occurs, must have known the other two prominent places of Sun-worship viz. Kālapriya and Sutīra. So the attempt of Dr. Kane to show that the Varāhapurāṇa and with it the Suntemple at Kālapriya are later than the age of Bhavabhūti has failed completely.

Even supposing that all these passages in the Purāṇas are of a later age than Bhavabhūti, there remain the references to Kālapriya in the Cambay plates and the Kāvyamīmāmsā of Rājaśekhara, both of which belong to the beginning of the 10th century A. D. Have we any evidence that Kālapriya came into existence and became famous as a centre of Sun-worship within about 150 years after Bhavabhūti? On the other hand, it will be shown below that the temple of Kālapriya must have been famous before the seventh century A. D.

Objection 3—Dr. Kane says there is not an iota of evidence to suppose that Bhavabhūti stayed long at Kālapriya or visited the place frequently. One may ask in return if there is any evidence that he stayed long at Ujjayinī (for Dr. Kane previously held that Bhavabhūti's plays were staged at the fair of Mahākāla

<sup>16.</sup> Bhavisya. I, 129.

<sup>17.</sup> See Studies in the Upapuranas, p. 101.

at Ujjayini)? It is better not raise such flimsy objections; but it is not difficult to answer mem. Bhavabhūti seems to have stayed long at Padmāvatī—(modern Padam Pawāyā in the former Gwalior State); for he has given a detailed description of the rivers, mountains and temples of the city. Kālapriya (modern Kālpī) is not very distant from Padmāvatī. He may have gone there frequently to attend the annual fairs.

Dr. Kane does not believe in the statement of Kalhana that Bhavabhūti had the patronage of Yaśovarman, the king of Kanauj; but he has stated no reason for disbelieving it. Dr. Kane thinks that Bhavabhūti would have staged his plays at the royal court if he had the support of Yaśovarman. It is, however, possible to argue that Bhavabhūti received the royal patronage late in his career after his plays had been composed and even staged, when his fame reached Yaśovarman's ears. Perhaps, though residing at the royal court, he may have preferred to stage his plays at the large fair of Kālapriyanātha, not very distant from Kanauj, to gain popular applause. As we have no detailed information about the life of Bhavabhūti, it is not possible to say which of these conjectures is correct.

Objection 4—The objection that we have no other names of the Sun-god ending in  $n\bar{a}tha$  (like  $K\bar{a}lapriyan\bar{a}tha$ ) is equally flimsy. One may well ask, "The names of Siva generally end in  $\bar{\imath}svara$ . Why does not this name of Siva installed in Padmapura (as Dr. Kane believes) end in  $\bar{\imath}svara$ ?"

Objection 5—The name of the Sun-god mentioned in Bhava-bhūti's plays was not Kālapriya, but Kālapriyanātha. That the town of Kālapriya was situated to the south of Kanauj is quite clear from the aforecited statement from Rājaśekhara's Kāvya-mīmāmisā. From the Cambay plates it is quite evident that the place was situated on the southern bank of the Yamunā and had a large temple, capable of accommodating a huge army in its extensive courtyard. The Purāṇic statement साम्बः सूर्यप्रतिष्ठां च कारयामास तत्त्वित्।... यमुनायाश्च दक्षिणे ॥ मध्ये काल्प्रियं देवम्। shows that the temple was dedicated to the Sun-god. In that passage Kāla-

priya is described as deva. Similarly in the next verse मुळस्थानं ततः पश्चादस्तमानाचले रविम। Mulasthana also is called Ravi. In both these places the intended sense is 'the god installed at Kalapriya' and 'that installed at Mulasthana' respectively.

The afore-cited passage from the Varāhapurāna tells us that Sāmba first constructed the temple of the Sun at Mūlasthāna (modern Multan). That it was the first shrine of the Sun is also indicated by the name Mulasthana (the original shrine). The Purana further tells us that Samba himself erected the other two famous temples of the Sun at Sutīra and Kālapriya. It was evidently the popular belief that the temples at Multan, on the eastern coast and at Kalpi were equally old. Now, the temple at Multan was famous in the seventh century A. D. as appears clear from the description given by the Chinese pilgrim Hiouen Tsang. The other two temples must have been equally well-known in that age though Hiouen Tsang had no occasion to describe them. We have no reason to suppose that the temple of the Sun at Kalapriya came into existence later.

Objection 6-Dr. Kane thinks that Sun-worship was introduced late in India, but in any case it is earlier than the Gupta age as shown below. Dr. R. G. Bhandarkar held that the cult of the Sun must have penetrated to India about the time of the Kusāna Emperor Kaniska and the Multān temple, which was its original seat, must have been constructed about the same time. 18 From an inscription found at Mandasor we learn that as early as Vikrama Samvat 493 (A. D. 437-38) a Sun-temple was erected at Daśapura (modern Mandasor) by a guild of silk-weavers that had migrated there from Lata.19 That Sun-worship was quite common in North India in the sixth and seventh centuries A. D. is clear from Bana's Harsacarita, and Harsa's inscriptions. Bana has given a graphic description of the daily worship of the Sun by Prabhākaravardhana, the father of Harsa. Prabhākaravardhana's father Adityavardhana and grand-father Rajyavardhana were

<sup>18.</sup> R. G. Bhandarkar, Vaisnavism etc. (1913), p. 154.

<sup>19.</sup> Fleet, Gupta Inscriptions, pp. 89 f.

both param-Āditya-bhakta 'devout worshippers of the Sun.'20 Hiouen Tsang tells that at the quin-quennial assembly at Prayāga the image of the Sun was installed along with those of Śiva and Buddha. There was a temple of the Sun in Kanauj.<sup>21</sup> All these references show that Sun-worship in temples was well established in North India at least three centuries before the time of Bhavabhūti.

The fore-going discussion must have made it plain that there were three famous ancient temples of the Sun at Multān, at Kālpi and on the eastern coast at or near the site of the well-known temple of Konarak in Orissa.

<sup>20.</sup> Ep. Ind , Vol. IV, pp. 28 f.

<sup>21.</sup> Travels of Hiouen Tsang, Vol. II by Beal (pub. by Susil Gupta), p. 245.

#### PARASURAMA\*

By

#### Kumari S. S. Janaki

िभारतीयवाद्मये परग्ररामस्य विशिष्टमहत्त्वमस्ति । स भगवतो विष्णोरवतारश्चिरजीवी चोक्तः। तस्य जीवनस्य विभिन्नाङ्गानां विभिन्न-ग्रंथेष वर्णनं दृश्यते । निबन्धेऽस्मिन् महाभारतपुराणकाव्यादिनाना-ग्रंथेषु प्राप्तस्य परशुरामवृत्तस्य सम्यगालोचनं प्रस्तुतम् । भार्गवाणां वेदेन सम्बन्धः सुपरिचितः, किन्तु परशुरामस्योल्लेखो वैदिक-साहित्ये न प्राप्यते । केवलमैतरेयारण्यके एव राममार्गवेयस्योल्लेखो दृश्यते । भार्गवपरग्ररामस्य प्राचीनतम् उल्लेखो वाल्मीकीये रामायणे प्राप्यते । तत्र तस्य रामेण सह विवादः, तस्मात्पराभवश्च वर्णितः । महाभारते तु परग्ररामस्य वृत्तं व्यापकं विविधरूपि च दृश्यते। महाभारतस्य प्रथितविद्वद्भिस्सुकथणकरमहोदयैरुक्तं यत् महाभारत-ग्रन्थस्य विकासे भार्गवाणां कर्तृत्वमत्यधिकं वर्तते, अतः परग्रुरामस्यो-ल्लेखो वर्णनञ्च अत्र अनेकत्र प्राप्यते । स युद्धविद्यायाम् निष्णातः भीष्मद्रोणकर्णानामाचार्यश्चासीत् । अत्र महाभारते स न केवलं युयुत्सरपित शान्तिसंस्थापकरूपेणापि निर्दिष्टोऽस्ति । पुराणसाहित्ये पद्मब्रह्ममत्स्यमार्कण्डेयहरिवंशस्कन्दपुराणेषु परग्रुरामस्य वर्णनमस्ति । ब्रह्माण्डपुराणे ३७ अध्यायेषु ( उपोद्घातपादे ) वर्णनमस्ति । रामायण-महाभारतपराणानामतिरिक्तं कन्नड्भाषायां विरचितम 'परश्राम-चरितम्' तथा संस्कृतभाषायां विरचितं 'कुमारभार्गवीयं' चम्पकाव्यम परशरामस्य वर्णनं कुर्वतः। कन्नडभाषायां निबद्धे 'परशरामायण'-ग्रंथेऽपि परग्रुरामस्य वृत्तमुपलभ्यते । अस्य ग्रंथस्य संस्कृतानुवादोऽपि वर्तते । 'वाडेश्वरोदयकाब्य' नामके ग्रंथे 'अगस्त्यसंहिता'परनामके 'केरलमाहात्म्य' ग्रंथे चास्यवर्णनं वर्त्तते। बहवो हस्तलेखा अपि प्राप्यन्ते येष परग्ररामस्य वर्णनमस्ति । परग्ररामः विविधम्रन्थानां रचिताऽपि ख्यातः, यथा परग्रुरामकल्पसूत्रस्य जामदग्न्यधनुर्वेदस्य च। 'परग्रुराम-प्रतापः' 'भार्गवार्चनदीपिका' 'भृगुवंशमहाकाव्यम' इत्येते त्रयो अप्रका-शितग्रंथा अपि परग्ररामेण सम्बद्धाः सन्ति । इत्थं परग्ररामस्य जीवन-

<sup>\*</sup> I am indebted to my Professor Dr. V. Raghavan, who has helped me in diverse manner in the preparation of this paper.

विषयका विभिन्ना ग्रंथा उपलम्यन्ते। केषाञ्चित् मते परग्रुरामः आर्यसम्यतायाः नायक आसीत् केषाञ्चित् मते तु 'परग्रुराम' इति कस्याश्चित् जातेर्नाम आसीत्। अत्र ठेखे संहिताब्राह्मणमहाभारत-पुराणानामुद्धरणानि दत्त्वा परग्रुरामस्य जीवनवृत्तं तस्य महत्त्वञ्च सम्यक् पदिशतम्।

Paraśurāma is one of the puzzling figures in Indian mythology and tradition. He is counted among the avatāras of Viṣṇu and a cirajīvin. The stories about him cover a long span of time, from the Tretāyuga down to the present age. The various anecdotes not only reveal the many facets, that are sometimes conflicting, of this domineering personality but also shroud him with considerable mystery. It is no wonder, therefore, that the Paraśurāma-literature has engrossed the attention of scholars in different branches like history, ethnology, and geology and called forth variety of interpretation.

Though the Bhārgavas¹ are known to be sages of hoary antiquity, and are referred to on many occasions in the Vedic literature², the name of Paraśurāma does not occur in it. But a Rāma Mārgaveya is mentioned in the episode³ of the Śyāparṇas in the Aitareya Brāhmaṇa (Pañcikā VII, adhyāyas 27-34). Herein Viśvantara, son of Suṣadman deprives his family-priests, the Śyāparṇas, of their right to officiate in his sacrifices. Rāma Mārgaveya, one of the Śyāparṇas, figures as a hero⁴ who successfully champions their cause. Apart from the closeness⁵ of the names Mārgaveya and Bhārgaveya, the fact of Rāma Mārgaveya interfering in a dispute between the Kṣatriya and Brahmanical families, is noteworthy. As regards the name Mārgaveya, Sāyaṇa explains it as a matronymic of Rāma (मृगवुनीम काचिवाधितस्याः प्रजी

<sup>1.</sup> For the trans-Indian antecedents of the Bhrgus, Parasurama and Kartavirya see 'the glory that was Gurjaradesa', Part-I, pp. 64, 67 & 94.

<sup>2.</sup> See the Vedic Index of Macdonell and Keith, under Bhargavas, Bhrgu, Cyavana, etc.

<sup>3.</sup> J. Eggeling, Sacred Books of the East, Vol. 43, pp. 344-5.

<sup>4.</sup> J. Muir, Original Sanskrit Texts, Vol. II, pp. 436-40.

<sup>ः</sup> कः स्वित्सोऽस्माकमस्ति वीरो य इमं सोमपीथमभिजेष्यतीत्ययमहमस्मि वो वीरो इति होवाच रामो मार्गवेयः ।

रामनामा कश्चिद्वाह्मणः). Weber<sup>6</sup>, however takes 'Mārgaveya' as the patronymic of Rāma, deriving the name from the Mārgavas, an impure caste, according to Manu<sup>7</sup>. This parentage, according to Weber, provides the ground for the reproaches of Viśvantara against the Śyāparṇas. In the Vedic literature, apart from Rāma Mārgaveya the word Parśu occurs once in a dānastuti (RV. VIII. 6.46) and the word 'Parśumānavī' in a Vṛṣākapi hymn (RV. X. 86.23).

The earliest reference to Paraśurāma as such is hence in the Rāmāyaṇa (Bālakāṇḍa, Chap. 74-6) where we learn for the first time from Paraśurāma himself that he killed Kārtavīrya and also exterminated Kṣatriyas on twenty-one occasions, and that he performed penance at Mahendra mountain after donating the entire earth to Kaśyapa. The puissant Jāmadagnya cuts a sorry figure in the episode in the Bālakāṇḍa, being no match to the youthful Dāśarathi. The encounter of Kārtavīrya with Rāvaṇa is given in the same epic on a later occasion.

The Mahābhārata is a veritable thesaurus of legends about the Bhārgavas in general and Paraśurāma in particular. These stories are so varied and large in extent that they have been held as providing a clue for the perplexing question, how the Bhārata text became the Mahābhārata. Dr. Sukthankar<sup>9</sup>, after an analysis of the various Bhārgava legends, has drawn the conclusion that the shaping and enlargement of the epic text have been due to a strong Bhārgava influence. Paraśurāma amongst the Bhārgavas was, no doubt, a favourite of the bards and the refrain about him, 'trisaptakrtvaḥ vasudhām krtvā niḥkṣatriyām prabhuḥ' is heard through the epic at least ten times. Truly the Mahābhārata has provided the nucleus for many later Paraśurāma legends.

Manu Smrti. X. 34.

<sup>6.</sup> Indische Studien, Vol. I, p. 215.

<sup>7.</sup> निषादो मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविनम्।

<sup>8.</sup> Uttarakāņda, 31.

<sup>9. &</sup>quot;The Bhrgus and the Bharata, a text-historical study", pp. 1-76,, A. B. O. R. I., XVIII (1936).

The echo of the exploits of Parasurama that is heard in the Rāmāyana assumes magnitude in the Mahābhārata. The fight between Parasurāma and Kārtavīrya is narrated in all details and as is to be expected, its description in different places in the same text of the Mahābhārata, show slight variations in the trend of the story. Thus, for example, the Āranyaka version dispenses with Kamadhenu in the possession of the Bhargavas. The Bhargavas. are, however, represented as the priests of Krtavīrya, by whose liberality they were greatly enriched. When fortunes changed Kṛtavīrya's descendants were in need of momey, they approached the Bhrgus and found some money buried underground. Kartavīrya himself, the opponent of Paraśurāma, is depicted as a perfect fiend in some versions; in others, the evil doings are ascribed to his vicious sons. The Āranyaka, Drona and Śānti versions describe the Paraśurāma-Kārtavīrya feud in great detail. names of the kings slaughtered by Parasurama are given. It is also known that Śūrpāraka and Aparānta were created by Paraśurāma, when he was forced to leave the earth given to Kāśyapa. As will be seen presently, the creation or reclamation of coastal Western India by Paraśurāma has been another favourite theme of poets and bards.

The Paraśurāma-anecdotes in the Mahābhārata impart a colour to the personality of Paraśurāma. The military achievements of our hero do find expression in glorious terms and he has also the honour of being the tutor in the science of arms of Droṇa, Karṇa and Bhīṣma. At the bidding of Lord Śiva, Paraśurāma even fights successfully against the daityas. The Udyoga Parvan is notworthy in its digression depicting Paraśurāma in the role of a peace-maker and not as an inveterate enemy of the Kṣatriyas. The narration of the story of Dambodbhava by Paraśurāma which shows the futility of fighting Nara-Nārāyaṇa reveals him as an advocate of peace (Udyoga, 94). The Ambopākhyāna, in the same Udyoga Parvan (175, 4-5), refers to the royal sage Hotra-vāhana, Ambā's maternal grand-father as the friend of Paraśurāma. Paraśurāma is represented here not only as championing the cause of a Kṣatriya princess but also as a teacher of the Kṣatriya

Bhīşma and as having engaged with him, for twenty-three days in a battle which ended in a stalemate.

Amongst the Purāṇas, the Bhāgavata (IX. 15, 16) the Pādma, (VI. 268) Brāhma (10), Matsya (43, 44), Mārkaṇḍeya (16), Harivonsa (1. 33), and Skānda (Nāgara, 66-69) recount the stories of Paraśurāma and Kārtavīrya but with no noteworthy addition or digression. The Brahmāṇḍa Purāṇa alone deserves special notice, not only for the detailed treatment of the story in 37 chapters (21-58) of the Upodghāta pāda but also for connecting it with that of Sagara and a reference to Gokarṇa in this connection. The Brahmāṇḍa Purāṇa version, serves as it were, a connecting link between the Paraśurāma story in the Epics and that of the later times, that grew into prominence in west India. A brief summary of the Brahmāṇḍa version, therefore becomes necessary in this context.

The story in chapters 21-44 is the fight between Paraśurāma and Kārtavīrya, the extermination of all Kṣatriyas and the performance of penance at Mahendra mountain, the broad outline of which is similar to that in the Mahābhārata. But the story is carried through 25 chapters in a long drawn-out manner with the introduction of the Trinity, Brahma, Viṣṇu and Śiva, divinities like Gaṇeśa and Skanda, as also sage Agastya, all of whom play major roles in shaping Paraśurāma's destiny. Jamadagni and Paraśurāma are depicted as typical brahmins, averse to military deeds and slaughter, and even when circumstances force Paraśurāma to be a warrior of wartial splendour, he does, not of his own accord but due to divine grace. In fact Viṣṇu endows Paraśurāma with His own puissant lustre and ordains that the tejas will be taken back during His incarnation as Rāma Dāśarathi.

अद्यप्रभृति लोकेऽस्मिनंशावेशेन मे भवान्। चरिष्यित यथाकालं कर्ता हर्ता स्वयं प्रभुः॥ चतुर्वेशे युगे वत्स त्रेतायां रघुवंशकः। रामो नाम भविष्यामि चतुर्व्यृहस्सनातनः॥ × × × तत्रेशचापं निर्भज्य परिणीय विदेहजाम् । तदा यास्यन्नयोध्यां ते हरिष्ये तेज उन्मदम् ॥

Brahmānda, III. 38, śls. 29-30, 32-3.

Kārtavīrya is also represented as the Cakra of Lord Viṣṇu.

मम चकावतारो हि कार्तवीर्यो धरातले।

op. cit. śl. 28.

स राजा दत्तभक्तस्तु विष्णोश्चकं सुदर्शनम् । प्रविष्टो भस्मसाज्ञातं शरीरं बाहुनन्दन ॥

Brahmānda, III. 40, śl. 66.

As the basis of the feud between Parasurāma and Kārtavīrya, who are both represented at a higher level, the Brahmānḍa narrates the instigations of Candragupta, the vicious minister of Kārtavīrya, against Jamadagni and Kāmadhenu. The consequent fight between Paraśurāma and Kārtavīrya is given in all details (Chaps. 38.41). The joint references to the stories of Sagara and Paraśurāma are seen even from the colophon of the 44th chapter, (iti Sagaropākhyāne Bhārgavacarite), which relates the performance of penance by Paraśurāma for twelve years at the Mahendra mountain in the company of Akṛtavraṇa. The same colophon continues till the 58th chapter, wherein the last few verses (34, 35, 37) read:

एवं प्रभावो रामोऽसौ सगरश्च महीपते । यस्य पुत्रैरयं खण्डो भारतोऽब्धौ निपातितः ॥ योजनानां सहस्रं तु वर्द्धितश्च महोद्धिः । रामेणाभृत्पुनः सृष्टं योजनानां तु षट्शतम् ॥ एतत्तेऽभिहितं सम्यब्महतश्चरितं मया । रामस्य कार्तवीर्यस्य सगरस्य महीपतेः ॥

The above correlation of Paraśurāma with Sagara and his descendants Sāgaras, that is, the oceans, gains some importance as the *Brahmānḍa Purāṇa* is the starting point of later legends regarding Paraśurāma and his creation of Sapta-konkaṇas, due

to the recession of the Western ocean at the bidding of Paraśurāma. The narration of the stories of both the Sāgaras and Paraśurāma in the Śrāddha Kalpa of the Brahmānḍa-Purāna is most appropriate as they are examples of the offering of oblation to their respective pitrs in a unique manner.

Sagara of Ayodhyā had connections with another Bhārgava, namely Aurva and the Brahmanda Purana (chapter 48) refers<sup>10</sup> to the following circumstances under which this was brought Kārtavīrya's grandson through Jayadhvaja was Tālajangha. Tālajangha's hundred sons were also called Tālajanghas and the eldest amongst them was Vītihotra. To escape from Parasurama's vandalism, the Talajanghas retired to the After sometime, when Parasurama gave up his destructive activity in favour of penance, the senior Talajangha, Kārtavīrya's grandson, returned to his capital and resumed kingship. The first thing that Talajangha did was to attack Avodhyā, then ruled by Bāhu, the aged father of Sagara. Bāhu was forced to flee his kingdom along with his pregnant wife. He stayed in the vicinity of Aurva's hermitage, and died there due to old age and weakness. Sagara's mother erected a funeral pyre for Bāhu and when she too wanted to follow her dead husband, Aurva took pity on her and brought her to his hermitage. There she gave birth to Sagara. Aurva brought him up, taught the Vedas and bestowed on him Parasurama's terrible fire-weapon. Sagara then collected a huge army and with that weapon, won over the Haihayas and Talajanghas and caused havoc in the military ranks of the Sakas, Yavanas, Kāmbojas, Pāradas and Pahlavas.

Says Sagara to Aurva:-

## त्वं मे गुरुस्सुहहैंवं बन्धुर्मित्रं च केवलम् । न ह्यन्यमभिजानामि त्वामृते पितरं च मे ॥

<sup>10.</sup> With slight variations, the same story is given in Brāhma. 8. 35-51; Harivamsa. 14, 1-20; Vāyu, 88, 127-43; Siva, VII. 61, 29-43. See also J.R.A.S. (1919), 353 ff, 'Sagara and Haihayas' of F. E. Pargiter, and Journal of the Asiatic Society, Vol. IV, No. 2 (1962), Sagara's adversaries', D. C. Sircar.

## त्वयोपदिष्टेनास्त्रेण सकला भूभृता मया। विजिता यदनुस्मृत्या शक्तिस्सा तपसस्तव॥

Brahmanda, III. 51, śls. 3-4.

Naturally when Sagara was smarting under the grief of childlessness, he again thought of Aurva and sought his help. Aurva then ordains that Sagara will beget Asamañjasa through Keśinī and 60,000 sons through his other wife Sumati.

The Brahmānḍa (chapters 51-56) then narrates the well-known incidents of Sagara's performance of Aśvamedha sacrifice and his sons, the Sāgaras, digging the earth in the course of their wanderings in search of the sacrificial horse. The oceans were thenceforth called the Sāgaras.

# सगरस्य सुतैर्यस्माद्धर्धितो मकरालयः । ततः प्रभृति लोकेषु सागराख्यामवासवान् ॥

The waters that rushed forth inundate the whole earth, including the famous Gokarna. The sages appeal to Paraśurāma for help and Paraśurāma requests Varuna to withdraw. Asked by Varuna the limit from where he can retreat, Paraśurāma throws the sacrificial vessel (sruvā) far away. The vessel falls at Śūrpāraka.

Scattered references to Paraśurāma as a brahman-soldier, as a creator of the territory of West Coast (Aparānta), and as one who keeps to his pledge are found in literature and epigraphy. Apart from such references in the work of great poets like Aśvaghoṣa, Kālidāsa, Bāṇa and Bhavabhūti, there are whole works devoted to Paraśurāma and his achievements. There are, among them, Ranna's Paraśurāma carite<sup>11</sup> (in Kannada) known only through references and the Kumāra Bhārgavīya, a Campū in Sanskrit by Bhānudatta, the Ālaṁkārika, son of Gaṇapati.

<sup>11.</sup> R. Narasimhacari, Karnātaka kavicarite, Vol. I, p. 62.

See No. 4040, Catalogue of Sanskrit Mss. at the Library of the India Office, Julous Eggeling (1904). Also "The poet Bhānukara", Dr. Har Dutt Sharma, A. B. O. R. I. Vol. XVII, p. 255.

The published Parasurāmarāmāyana, is a kāvya in Kannada, in the vārdhakaṣatpadī metre. It consists of 17 adhyāyas and is written by Babburu Rangappa whose date is not known definitely.18 In the prefatory verses, however, he offers a challenge to the famous Jaimini Bhārata of Laksmīśa. There is a published prose version of the above Paraśurāmarāmāyana by Narahari Sastri in 42 chapters, from where the following summary of the story is given. There are some notable details in the trend of the Paraśurāma anecdote, the most important of which is the equal prominence given to both Paraśurāma and Kārtavīrya. whole story, is narrated by Nārada to Bharata at Nandigrāma, while he was eagerly expecting the arrival of Rāma. Another noteworthy feature is the conception of Bharata as the same as Kārtavīrya of the previous birth. The first two chapters relate the circumstances under which Nārada appeared before Bharata, and narrated the story to him. On seeing Nārada, Bharata gives expression to his joy, as equal to that of meeting his own brother Rāma. The strife-loving Nārada then instigates Bharata agaist Rāma, adding incidentally that the separation between them was only the continuation of the strained relationship between Paraśurāma and Kārtavīrya; for, Rāma was identical with Paraśurāma and Bharata was the same as Kārtavīrya. This naturally rouses the curiosity of Bharata who asks Nārada to relate his own previous birth. The story, therefore, starts in the second chapter itself, with pratinayaka, Kartavirya, who is described as the incarnation of Visnu's cakra, the Sudarsana. Once, the story says, the cakra became conceited enough to relegate into secondariness Lord's own inherent prowess. To humble its pride, Visnu decides to divest Himself of it, and causes it to be born as Kārtavīrya. Chapters 3 to 13 narrate Kārtavīrya's activities as a child; his tutelage under Dattatreya on the banks of the Ganges; marriage with Kāśmīre, daughter of Bhadrānka, ruler of Kaśī, Sandīpi, daughter of Kārtavīrya's brother-in-law, Dilīpa of Ayodhyā and many other princesses; coronation of Kārtavīrya,

<sup>13.</sup> R. Narasimhacari, op. cit. Vol. III, p. 63 assigns him to 1750 A. D. while the preface to the *Parasurāmarāmāyaṇa* places the author problematically in the 13-14th Century.

and birth of Vrddhapārthiva through Kāśmīre, and Heha, Recaka and Kukşi through Sāndīpi, and Kārtavīrya's encounter with Rāvana. Chapters 14-32, relate the story from the birth of Paraśurāma to his killing Kārtavīrya and other Kṣatriyas. Chapter 33 describes the coronation of Vrddhabhūbhuja, son of Kārtavīrya and chapters 34-35, the slaugher of Jamadagni; chapters 36-38, Paraśurāma's routing of all the Ksatriyas and it is noteworthy that the names of the different countries and their kings are given as also the fight in all its details; chapter 38. Paraśurāma's gift to Kāśyapa and to Bālārka, a brahmin who followed Paraśurāma throughout his compaign, and Paraśurāma's penance at Mahendra mountain. Upto chapter 39, the story is somewhat similar to that in the Epics and the Puranas but in chapter 40, the story digresses a little and describes what happened when Brahmins ruled over the kingdoms. The Brahminkings have a lurking fear in them that the existing Ksatriyas may kill them at any moment. They therefore approach Parasurama for a redress of their mental agony. Paraśurāma appears before them and on knowing the trifling reason that prompted the Brahman-rulers to invite him, becomes angry and curses them instantaneously that they would become gluttons and lose their self-respect. When requested by the supplicants to soften a little, Parasurama replies that he can just modify the curse. Accordingly, Parasurama says that thereafter Ksatriyas will rule the kingdom by their physical strength, while the Brahmins in the capacity of ministers will govern it by their intelligence. Parasurama then decides to perform undisturbed penance on the Himālayas. The story similar to the above, namely, of Paraśurama being called forth for a trifle and the consequent curse, occurs in many other local legends prevalent in the West Coast.

Chapter 41 describes the reaction of Bharata on hearing the story. While Bharata regrets for his having been the enemy of the Lord, Vasistha consoles him that Rāma will come to him very soon. The last chapter, the 42nd, relates the arrival of Rāma, the unbounded joy of Bharata and finally the coronation.

The strip of land between the Arabian Sea and the Western Ghats, extending from Gokarņa in the north to Cape Comorin in the South is known as the Paraśurāmakṣetra. No local legend pertaining to Koṅkaṇa, Tuluva and Kerala fails to mention the reclamation by Paraśurāma of the land submerged in water. The hero Paraśurāma, emerging from these māhātmyas, is of Titanic magnitude; and he is considered not only the creator of the land in question but responsible also for the social customs and the kind of life prevalent there.

The unpublished Vāḍeśvarodaya Kāvya¹6, composed in the 17th century, deals with the origin of the Citpāvana Brahmans and the erection of the sacred temple of Vāḍeśvara, the tutelary deity of Citpāvana brahmans, at Guhāgar in Ratnagiri district. Incidentally the work deals in detail with Paraśurāma and his activities in Koňkaṇa.

The Keralamāhatmya, otherwise called Agastyasamhitā<sup>17</sup> gives the mythological history of Kerala. There are three Mss. of this work available in the Government Oriental Manuscripts Library, Madras. Two of them D. 2392 and 2393 are in Grantha characters and the treatment of the subject is the same in both, except for the four introductory chapters in D. 2393. Here, we have in the first chapter, the observance of Sudarśana vrata by Kṛtavīrya's wife, the birth of Kārtavīrya as a result of the vrata and Kārtavīrya's encounter with Kubera. The second chapter

- 14. Prapañcahrdaya, T.S.S. No. 45, pp. 3-4. सह्यपादे परशुरामभूमिः। सा सप्तकोङ्कणाख्या कूपककेरलमूषिककालुवपशुकोङ्कणपरकोङ्कणभेदेन दक्षिणोत्तर-यामेन चं व्यवस्थिता।
- 15. Prof. A. Gopala Menon Commemoration Vol., pp. 1-27.
  B. A. Saletore, 'Ancient Karnāṭaka', Vol. I, 12ff.
  Journal of the University of Bombay, Vol. I, Part I, pp. 115-39.
- For an analysis of its contents, vide A. D. Pusalker's 'Vādeśavarodaya kāvya of Viśvanātha'; J.B.B.R.A.S. New Series, Vol. 27, (1951-52), 66ff.
- 17. New Catalogous Catalogorum, Vol. I, p. 22.

  I am thankful to Dr. V. Raghavan for drawing my attention to this text, securing the two Mss. (D. 2392 and D. 2393) from the Govt. Oriental Mss. Library, Madras and also for identifying the places referred to in them.

describes Kārtavīrya's penance before Brahmā and the boon conferred on him that he will not be killed by any mortal. The third chapter recounts Viṣṇu's resolve to be born as the son of Jamadagni and Reṇukā, the birth of Paraśurāma, with Śaṅkha, Cakra and Kuṭhāra and the martial traits, associated with Paraśurāma. In the fourth chapter there is a conversation between Garga and Yudhiṣṭhira regarding Keralotpatti. Incidentally, Paraśurāma's donation of the earth to Kāśyapa is narrated. From the fifth chapter onwards, the story in D. 2393 proceeds on the same line as that in D. 2392. Perhaps due to this extra subject-matter in D. 2393, the colophons to the first five chapters along read as:—

इति श्रीकेरलमाद्दात्म्ये ब्रह्माण्डपुराणे अगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये गर्गयुधिष्ठिर-संवादे × ×

There is justification for the above colophon, as the Brahmānḍa Purāṇa also refers to Kārtavīrya as the incarnation of Sudaiśana and Paraśurāma as a partial incarnation of Viṣṇu. From the sixth chapter, D. 2393 also has the same colophon as D. 2392 ( इति श्रीभूगोलपुराणे केरलमाहात्म्ये ). The text in D. 2393 is corrupt and in many cases there is no proper versification. The 85th chapter of D. 2393 gives in prose, the details of Gaṇapatihoma, and this extraneous matter is not found in D. 2392.

The Keralamāhātmya (D. 2392) after referring to Paraśurāma's donation of the earth as an expiation for his sins of matricide and Kṣatriya-slaughter, learns from the sages that he has no place in the land gifted by him. Paraśurāma then goes to Kailāsa and appeals to Śiva for help. The Lord asks Paraśurāma to request the ocean for a piece of land. To help him in this matter Śiva sends Subrahmaṇya with a promise to Paraśurāma that all the divinities, including Himself, will be present in the new land created by him. Paraśurāma and Subrahmaṇya proceed southward and Subrahmaṇya creates Kumāri (Kanyākumāri?) and asks Paraśurāma to worship her for a year. Paraśurāma does accordingly and Varuṇa appears before them at the end of the year. Paraśurāma requests Varuṇa for some living spaces

and Subrahmanya also intercedes on behalf of his friend. At the behest of Varuna, Paraśurāma throws his axe from the place where he stood and the axe falls at Gokarna. Śiva, Kṛṣṇa and the other deities descend to the new land which is called Kerala after the son of Jayanta.

### जयन्तस्य तु पुत्रत्वं केरलो नाम वीर्यवान् । समुद्रकन्यां मूह्मपां केरलाय ददौ तदा ॥

Śiva and Viṣṇu give to Paraśurāma, respectively Sudarśana and Vṛṣabha. Paraśurāma then goes to Śrīmūlasthāna¹¹ and instals Sudarśana and Vṛṣabha there. Thenceforth, the place was also known as Vṛṣabhapurī.

To make the new land cultivable, Paraśurāma starts digging the earth with his axe. When mother-earth appeals to Brahmā for help, Brahmā calls forth Varuṇa and orders him to give plentiful showers to the newly-formed country. Varuṇa accedes to the wishes of Brahmā.

## वैशाखादर्धमासात्तु षण्मासांश्च निरन्तरम् । धारावर्षं करोम्यस्मन्केरले कलिनाशने ॥

Paraśurāma then brings learned Brahmins from the Kṛṣṇā, the Godāvarī, Madhura, 19 and Śālivāṭīpura, 20 into the new land and creates sixty-four colonies for them. Paraśurāma brings the provisions necessary for the people from Paradeśa (foreign land) in a ship. After making the land habitable, Paraśurāma introduces many social customs, modes of conduct and life for its people. The ācāras of Kerala prevalent in all communities and walks of life are very elaborately dealt with and fathered on Paraśurāma. He is also said to have visited a number of places outside Śrīmūlasthāna and erected many temples. The

R. Narayana Pillai, 'Bhāsā Sāhitya Caritra' (Malayālam), Vol. I.
 P. 100, identifies Śrīmūlasthāna with Talipparambu near Kozhikodu.

<sup>19.</sup> Madurai in Tamilnad.

<sup>20.</sup> Tirunelveli in Tamilnad.

following are the places referred in the above connection in the  $Kerala-m\bar{a}h\bar{a}tmya:$ —

- 1. Sangameśvarapura<sup>21</sup>—Paraśurāma instals Viṣṇu there and bathes in the Matsyatīrtha.
- 2. Saptaśaila<sup>22</sup> and Padmatīrtha nearby—Viṣṇu is installed there.
- 3. Subrahmanyapurī.
- 4. Kukkuṭapura and Kumāradhārā nearby—Here Subrahmaṇya is installed.
- Mūṣaka kingdom—Paraśurāma kills the king of Mūṣaka and brings his family to Subrahmanyālaya.
- 6. Laksmīśapurī.
- 7. Triśirācala—Paraśurāma meets Kālī.
- 8. Mudrācala—Śiva, Viṣṇu and Kālī installed.
- 9. Kurambaka—Śiva installed in the form of a hunter.
- 10. Kalyāņagrāma.
- 11. Vātālaya<sup>23</sup>—When Paraśurāma suffers from windtrouble, Nārada asks him to bring the image of Kṛṣṇa from Dvārakā and instal it at Vātālaya so that Paraśurāma may be relieved of the trouble.
- 12. Tīvra river—Visnu temple/erected.
- 13. Krodapurī—Kālī installed.
- 14. Tripūrņapurī—Kṛṣna's temple.
- 15. Srītala.
- 21. Bombay Gazeteer, X. p. 372 mentions a Sangameśvara at the meeting place of the Alakananda and Varuṇa. The Vādeśvarodaya Kāvya also refers to a Sangameśvara (J. B. B. R. A. S., New Series, Vol. 27, pp. 73, 78).
- 22. K. V. Subrahmanya Iyer, J. R. A. S., 1922, p. 171 identifies Sapta-saila with Mount De' Ely and says that the dental 'l' in Eli sometimes changed to lingual 'l' that has given rise to the Sanskritised name Saptasaila. Elimalai was in the Mūṣaka kingdom that extended from Tulu or South Kanara to the Kerala dominions, until about the 12th century.
- 23. Probably Guruvāyūr which is famous as a centre of curing rheumatism.

- 16. Bālā-a city named after Kubera's daughter.
- 17. Simhapurī—Śiva's temple erected.
- 18. River Tāmraparņī and Svarņācala mountain, where Parasurāma meets Agastya.
- 19. Śrīvardhanapurī<sup>24</sup>—Paraśurāma declared a certain Bhānuvikrama as the ruler of Śrīvardhanapurī and asks him to protect the empire till Gokarņa. Paraśurāma deposits also his svarņamudrās there.
- 20. Sucindra.
- 21. Kanyākumārī.
- 22. Varāhapurī.

A prominent feature of the Kerala-māhātmya is the intimacy between Paraśurāma and Subrahmaṇya. While Subrahmaṇya helps Paraśurāma in founding the new kingdom, Paraśurāma erects many temples for Skanda and also created a new city, called Subrahmaṇyapurī. Subrahmaṇya receives a part of the newly-created area.

पश्चादागत्य रामश्च सुब्रह्मण्यालये शुमे । अष्टयोजनभूमि तां द्विधाकृत्याथ भागीवः ॥ एकभागं कुमाराय एकभागं शिवाय च । द्विभागभूमिरक्षार्थं ददौ च भृगुनन्दनः ॥

Paraśurāma aids Subrahmaņya in the slaughter of Tārakāsura and also in the latter's marriage with Vallī and Devasenā.

<sup>24.</sup> According to Travancore State Manual (Vol. I. p. 2), Travancore, which is the abbreviated English form of Tiruvithānkodu, is a corruption of 'Śrīvāzhumkodu'. The svarṇamudras deposited in Śrīvardhanapurī, as related in the Kerala-māhātmya, makes possible its identification with Travancore. Tradition says that Paraśurāma minted gold coins called Rāśi and that in Travancore, he sowed them and buried the surplus in Cairns. (Travancore State Manual, Vol. I. p. 170). M. J. Walehouse (Indian Antiquary, III, p. 191) refers to three such Paraśurāma-cairns that are seen even to this day and where the hill-tribes still keep lamps burning.

There are literary references<sup>25</sup> pointing to the rivalry between Paraśurāma and Subrahmaṇya. The epithet Krauñcārin or Krauñcabhid is applied to both of them and Mallinātha<sup>26</sup> and Kumārasvāmin<sup>27</sup> explain the circumstances that necessitated the creation of a tunnel in the Krauñca mountain. In this connection of the rivalry between Paraśurāma and Skanda, Vidyānātha and Rājaśekhara refer to Khuralī-viharaṇa.

### श्रावं श्रावं खुरिलविहरत्कार्ति केयेषु जात-च्छिद्रच्छद्मश्रवणपद्वीचारिणीं चारणौघैं: ।

Pratā parudrīya, Kāvya-prakaraņa, śl. 49.

Kumārasvāmin explains Khurali as a place where wrestling is practised, ( खुरलिमेल्लादिसाधनशाला ).

कथमधिगतोपदेशरहस्याः खुरलीखेलिन इत एते वर्तन्ते ।

Bālarāmāyana. IV. 14/15

कथं खुरलीख़ेलनपसरत्पृषत्कपङ्क्तीनां त्रिनयनान्तेवासिनां चेतसि विरचितं पदं परस्परस्पर्धया ? Ibid., IV. 16/17.

It is significant that the Kerala-māhātmya refers in detail to the mace-fight at Subrahmaṇyapura between Paraśurāma and Subrahmaṇya to the wonder of all celestials. The fight ends in a stalemate and Paraśurāma, establishes an institution for the practice of arms (āyudhābhyāsaśālā) at Subrahmaṇyapurī and places it at the charge of a certain Gavākṣa. The Keralot patti<sup>18</sup>

Prataparudrīva, Kanyaprakaraņa, śl. 49 and the Com. Ratnapaņa thereon.

Rasārņavasudhākara, pp. 12-13, 16.

Bālarāmā yaņa IV. sls. 17-27.

In the unpublished Gadyakarnāmṛta, (ms. No. 2837 Oriental Research Institute, Mysore), a historical prose work the author Vldyācakravartin conceives the rival Hoysala and Pandya kings as respectively Subrahmanya and Parasurāma.

<sup>25.</sup> P. 44, 'Dasāvatāracarita', Ksemendra.

<sup>26.</sup> Pūrva Megha, 57. See also Raghuvamsa, XI. 74.

<sup>27.</sup> Ratnapana on the Prataparudriya, op. cit.

<sup>28.</sup> p. 61, ed. by C. Achuta Menon.

(Malayalam) too mentions the above fight, as also the erection of a school and refers to the practice of arms as 'Kalari'. It is probable that 'Kalari' in Malayalam is a Tadbhava of the Sanskrit Khurali. Paraśurāma establishes such institutions not only in Subrahmanyapurī but in other places also, like Mūkāmbi and Tirunāvāv.29

Such is the broad outline of the Kerala-mahatmya which is considered a part of the Parasurāmāyana.30 The title is significant of the honour and greatness, conferred upon Paraśurāma in the mythological history of Kerala and his being considered an incarnation of Visnu. The blessings given to the king Udayavarman by Paraśurāma in the Kerala-māhātmya to rule over Kerala for many more years to come, is strikingly similar to that found in the Rāmāyana of Vālmīki.

## यावद्धर्मस्थितिरुकि यावत्सत्यस्थितिः प्रभो । द्विजधर्मस्थितिर्यावत्तावद्वाज्यत्वमस्त ते ॥

There are a few Makenzie mss. 30a in Tamil, Telugu and Marathi that deal with the same topic of Paraśurāma and his influence on country and people along the Coast. The Sagarakathā or Prasurāmaksetrakyfeut31 starts with the inundation caused on earth by the Ganges when she was brought down to the mortal world by Bhagīratha. Like the Brahmāndapurāna (chapter 56), it refers to the great overflow of water, submersion of Gokarna and the consternation amongst the residents who approach Parasurama at Mahendra mountain. The work refers to the extent of the reclaimed land to be of 200 yojanas from north to south. Paraśurāma then goes back to Mahendra mountain asking the people to go to Tirunavayksetra and think of him whenever they wanted his help. After this mythological intro-

- 29. Keralot patti, pp. 62, 63, 71.
- 30. New Catalogus Catalogorum, Vol. I, p. 22.
- 30a. Taylor, Vol. III., Catalogue raisonnee of Oriental Mss., pp. 166-7. 207-10, 690, 705.
- 31. R. 1546 (paper ms.) and D. 2797 (palm-leaf) in the Govt. Oriental mss. Library, Madras. It is short work running to 15 pages in R. 1546.

duction, the work deals with Ceraman Peruamal, and his rule in Kerala.

The unpublished Mūṣakavamśa³³ relates the history of the kings of Kolattunāḍ, which was called Mūṣaka kingdom until the 12th century. The history is inextrically connected with the Paraśurāma tradition.

The connection of Paraśurāma with Tulu country is embodied in the Tuluva Grāmapaddhatis that are supposed to form part of the Sahyādrikhaṇḍa of the Skāndapurāṇa. There are many places in the Tulu country reminiscent of Paraśurāma and his doings. It is interesting to note that the Tulu language has been used in connection with Paraśurāma in districts outside Tuluva. In the Citaldroog district is a place called Paraśurāmapura, some inscriptions of which are partly in Tulu. Udipi or Rajatapīṭha³6 owes its existence to Paraśurāma.

The Sahyādrikhanḍa³¹ of Skāndapurāna, supposed to be a mythological and historical account of Western India, consists of a Pūrvārdha (67 chapters), an Uttarārdha (21 chapters), Renukāmāhātmya (40 chapters), as also the māhātmyas of Chandracūḍa (8 chapters), Nāgāhvaya (2 chapters), Varuṇapura (2 chapters), Kāmākṣī (2 chapters), and Māṅgeśa (12 chapters). The Uttarārdha deals with the formation of the Sapta Koṅkaṇas on three occasions (chapters 1, 6, and 7). That the Sahyādrikhaṇḍa is a late³³ text is evident from its treatment of Brahmin communities along the West Coast, like the Pāṭharīya (Pūrvārdha, chapters 27, 28), Citpāvana and Kārāṣṭra (Uttarārdha, chapters 1, 2). The

<sup>32.</sup> See Travancore Archaeological Series, Vol. II, pp. 87-105, for the contents. Also pp. 52-3, The Contribution of Kerala to Sanskrit Literature, Dr. K. Kunjunni Raja.

<sup>33.</sup> Pp. 17, 24-27, Ancient Karnāṭaka, Vol. I, History of Tuluva, B. A. Saletore; also S. K. Aiyangar Commemoration Vol. pp. 116-7.

<sup>34.</sup> Ibid., p. 21.

<sup>35.</sup> Rice, Mysore Gazetteer, Vol. I. (Ist ed.,) p. 180.

<sup>36.</sup> Rajatapīṭha (Kannada), ed. by R. Narasimhacarya (1960) relates the legendary history of Udipi in the first two chapters.

<sup>37.</sup> Printed, Bombay (1877)

<sup>38.</sup> Journal of University of Bombay, Vol. I, Part I, P. 121.

above-mentioned communities are represented in a derogatory manner. The Renukāmāhātmya like the Datta Purāna and Todarānanda<sup>39</sup> (Avatārasaukhya) glorifies Renukā as Ekavīrā and gives her more prominence than Jamadagni and Paraśurāma.

The Karnātaka, though situated in the interior of the Indian peninsula is also reminiscent of the pious deeds of Paraśurāma. The Banavāsī Sthalamāhātmya as narrated in some Mackenize mss.,40 refers to the Brahman-immigration under the leadership of Parasurama. Many parts of Mysore are connected by tradition with the legends of Parasurama. The Sorab Taluq is supposed to be Surabhi or Kāmadhenu. The temple of Renukā existing to this day at Chandragutti, Shimoga district, is said to mark the spot where she burnt herself on the funeral pyre of her husband.41 Tīrthahalli, on the left bank of the Tunga, is famous as the spot from which Parasurama threw his axe as a result of his colloquy with Sagara. 42 At Hiremagalur in Kadur district is a unique temple of Parasu, the weapon of Parasurāma and its ancient name Bhargavapurī connects the town with him.48 There are temples for Ellammā (also known as Renukā) and Jamadagni at Cikkanāyakanhalli in Tumkur district and the processional image is a wooden figure of Parasurāma.44 There are also other places like Nañjangud and Narasimangalam that are related to Parasurama in some manner. The account of the Parasurāma-tradition prevalent in the Karnātaka will not be complete without a reference to Saundatti in the Parasgod Taluk. Belgaum district44a. There are, in the above place, temples not only for Ellammā (or Reņukā). Jamadagni and Paraśurāma but also to the figure of Kamadhenu, cut in relief on the pedestal

<sup>39.</sup> Ganga Oriental Series, No. 5 (1948).

<sup>40.</sup> Taylor, III, p. 39.

Also p. 24, Kerala Studies, 'Kerala and Parasurāma Tradition', M.R. Balkrishna Warrier.

<sup>41.</sup> P. 427, Mysore Gazetteer, Vol. 5, V. Hayavadana Rao.

<sup>42.</sup> Ibid., p. 485.

<sup>43.</sup> P. 21, Mysore Archaeological Report, 1916; also Hindu dated 13th February, 1965.

<sup>44.</sup> C. Hayavadana Rao, op. cit., p. 468.

<sup>44</sup>a. Pp. 54-5, Annual Report of Epigraphy, 1935-36.

of Jamadagni's image. The image of Paraśurāma is a singular sculpture, representing him as holding a chaudikī (musical instrument), along with Paraśu and Triśūla. The impress of the Paraśurāma-cult in this part of Karnāṭaka, as also in Koṅkaṇa, is evident in its popularity among a section of people, who are mostly non-Brahmans. They are known to dedicate themselves to a life of celibacy and of worshipping Ellammā and Paraśurāma in imitation of whom they carry the chaudikī.

So<sup>45</sup> far as the Tamil country is concerned Renukā is worshipped as Marīyammana or Mārikā, the Goddess of smallpox. In temples dedicated to her, only the head of the deity is kept and this is explained by the story of Paraśurāma beheading his mother, at the behest of his father. Another story is also narrated to explain her worship as the Goddess of measles. As the great pativratā, Renukā entered the funeral pyre on the death of Jamadagni and just as her body was about to be burnt and had already become full of blisters, Indra quenched the fire with showers and Šiva ordained that she would be the village deity presiding over small-pox. The sources for these in Sanskrit Purāṇas are yet to be traced.

The laudatory descriptions of kings and dynasties, especially of Western India, confirm the popularity of the Paraśurāma-tradition in this part of the peninsula. The legend of Paraśurāma is incorporated not only in describing the martial exploit of kings but also in tracing the origin of dynasties. While referring to the origin of the Chalukyan feudatories of the 12th century, namely, the Bappura family or the Bali varhśa that ruled over Kisukāḍ an inscription for the caverns (vala or bala) of Mount Kiṣkindhā for in

<sup>45.</sup> I am thankful to Dr. V. Raghavan for giving me the information about the Renuka-legends prevalent in Tamil country.

<sup>46.</sup> E. I., Vol. XV, 10°ff.

<sup>46</sup>a. For its identification, see p. 34, Geography of Ancient and Medieval India. D.C. Sircar; Purāṇa, Vol. IV, No. 2. (1962). The Geographical text of the Purāṇas, C.A. Lewis.

connection with Paraśurāma's visit to the place. The inscription apparently indicates that after Paraśurāma's extirpation of the Kṣatriyas, a new branch arose deriving their name from 'bala' 47.

The superb gold crown of Paraśurāma is mentioned in many inscriptions of the 12th century. In the course of recounting the conquests of the Cola Rajendra II, it is said that he conquered Tiruvanchikkolam and seized the valuable crown of Paraśurāma, worthy of Lakṣmī. The fulsome account adds that when Paraśurāma bound the kings twenty-one times, he deposited the crown in the impregnable Śāndimat island. The location of the island, however, is not certain.

The Keralotpatti and Kerala-māhātmya refer to the many social customs and everyday-practices that had originated from the magnetic personality of Paraśurāma. The Malabar brahmans honour him daily in their samkalpa referring to their country as Paraśurāmakṣetra. The extent of Paraśurāma's influence on Malabar and its people can also be gauged by their reckoning an era of Paraśurāma, dating from 1176 B. C. That Paraśurāma's name is of hallowed memory is also evident in his being the favourite deity in the performance of some sacrifices.

The popularity of Paraśurāma is also evident not only in the mass of legends and literature gathered round his domineering personality but also his being considered the author of some works like the *Tripuropāstipaddhati* or *Paraśurāma-kal pasūtra* and *Jāmadagnyadhanurveda*. Regarding the *Paraśurāma-kal pasūtra*, it is said<sup>52</sup> that Dattātreya at first composed the *Dattasanhitā* on Tripurā-worship in 18,000 verses. Paraśurāma abridged the above

<sup>47.</sup> L. D. Barnett, p. 108, E.I. Vol. XIV.

<sup>48.</sup> Pp. 87-88, Mysore and Goorg, B.L. Rice. E. C. Vol. X, Kolar 44 and 106 (a); E.C. Vol. III Nanjangud 134; S.I.I. Vol. III, p. 28.

<sup>49.</sup> The island is variously referred to as Cāndimat and Jāndimat. B.A. Saletore (op.cit., pp. 16-7) identifies it with the island Śānti mentioned in the Tulu grāmapaddhati.

<sup>50.</sup> P. 286, Mysore Gazetteer (Revised), Vol. I. B.L. Rice.

<sup>51.</sup> M.S. Parikh, pp. 28, 29, Bhagavān Srī Parasurāma kā avatār kāry.

<sup>52.</sup> Pp. 9-10, Inrroduction to the Parasuramakalpasūtra.

text of Dattātreya, composed it in 6,000 sutras in 50 sections and also simplified it, so that the difficult Śrī Vidyā might be within the reach of the common man. Later Sumedhā of Harita gotra, a pupil of Paraśurāma further simplified Paraśurāmā's version in ten khaṇḍas, in the form of a conversation between Paraśurāma and Dattātreya. The Paraśurāmakal pasūtra, available now, is considered to be the above version given by Sumedhā. It is noteworthy that the Datta-Purāṇa<sup>52a</sup> (IV, 8) of Vāsudevānandasarasvatī states that Paraśurāma came to the Āmalakī grāma in the Sahya mountain after donating the earth to Kāśyapa and became a disciple of Dattātreya. The Goddess Tripurā is identified in the Datta-Purāṇa with Reṇukā (śl. 32), at whose bidding Paraśurāma learns the vidyā from Dattātreya.

There are again some works having some bearing on the Paraśurāma-tradition like the three unpublished works, the Paraśurāma-pratāpa, Bhārgavārcanadīpikā and Bhrguvainśamahākāvya, all of them written by Sābāji Pratāparāja (1500-1600 A. D.) a protege of Burhan Nizam Shah of Ahmadnagar. 68

A further survey of inscriptions, local legends, literary works, sculptural representations and oral traditions of people in Western India may bring forth fresh material on this subject. But the picture of Paraśurāma presented to us even in the available material is somewhat dim and confusing. He is an avatāra of Viṣṇu, and at the same time a cirajīvin. He, therefore, belongs to the Tretāyuga, as well as to the present Kali age. Though himself an avatāra, he heralds the greatness of Kṛṣṇa in the Dambodbhava episode of the Mahābhārata (Udyoga, 94) and is himself defeated in battle by another avatāra namely, Rāma Dāśarathi. Kṛṣṇa in the Bhagavadgīta refers to Paraśurāma

<sup>52</sup>a. Vāsudevānandasarasvatīgranthamālā, Nos. 6, 7.

<sup>53.</sup> P. K. Gode, pp. 156-64, A. B. O. R. I., Vol. XXIV (1943). Also Poona Orientalist. VII (1942), pp. 1-26 for an analysis of the encyclopaedic Parasurāma pratāpa. The first Kāṇḍa, namely the Pratāpa-kāṇḍa of the Parasurāma pratāpa recounts the history of Parasurāma.

<sup>54.</sup> Kalki Purāņa (III, 1-5) refers to Kalki learning Sāstra and Sastra at the feet of Parasurāma.

as one of His own glorious manifestations. Paraśurāma completely roots out all Kşatriyas and at the same time is a king-maker. He is honoured not only in the Brahmanical society but also in the lower strata. He is himself a Brahmin with the qualities of a Kṣatriya, but is never in charge of any kingdom. His figure is that of a gigantic hero of martial splendour on one occasion and at another a peaceloving social reformer. Supposed to be an incarnation of Visnu, he is as ardent disciple of Siva. The paradoxical figure of Parasurama is as appalling as it is appealing. It is no wonder, therefore, that there have been varied conceptions or interpretations of Parasurama among modern scholars. According to some, the story of the quarrel between the Bhrgus of Broach and the Haihayas recount the exploits of Parasurama supported by nagas. 55 According to others, he is the leader of the Aryan civilisation. 66 Yet others regard him a leader of the tribe called Paraśurāma and that there were many Paraśurāmas in that family.57 The possession of the crude axe by Parasurama is regarded by some as determining the age in which he lived as one less civilised.58 Paraśurāma's encounter with Kārtavīrya is said to denote a time when the sacerdotal and royal class did not strictly adhere to their respective prerogatives. 59 The indissoluble association of Parasurama with the reclamation of the West Coast has been regarded by some as a myth that seeks to explain certain geographical and social phenomenon.60

55. The connection of Parasurāma with the Nāgas is popular in legends. The Nāgāhvaya story in two chapters appended to the Sahyādri-khanda (Bombay ed. pp. 505-512) relates how Parasurāma averted the fear of the Nāgas from Vainateya.

The temple of snakes at Mannārśāla in Haripād in Central Travancore, with Vāsuki and Sarpayakṣī as the main deities, is believed to have been established by Paraśurāma (Hindu dated 3rd May 1964). A large number of people, even in the present day, make offerings here on the day of Âyilyam star in the month of Tulam. There are several traditions regarding the sanctity of the place (T. K. Velu Pillai, Travancore State Manual. Vol. IV, p. 700).

56. Kerala Studies, p. 22, 24.

- 57. Kerala Studies, p. 11. P. 38, Poona Orientalist, Vol. XI (1946), R. D. Karmarkar.
- 58 M. S. Parikh, op. cit., p. 10.

59. J. Muir, Original Sanskrit Texts, Vol. I, 442ff.

60. Journal of Bombay University, Vol. I, p. 116; Journal of Rama Varma Bulletin, Vol. XII (1945). p. 7.

It is evident, therefore, that it will be hazardous to try to define clearly the blurred figure of Paraśurāma seen through the maze of tradition. The history of the Bhārgavas in the Vedic, Epic, and Purāṇic literature can, however, supply some clues of ideas that were probably magnified in the imagination of the remote descendants of a powerful ancient clan, influenced strongly by the cult of ancestor-worship.

The Bhrgus or Bhārgavas are an ancient and powerful family, occuring frequently in the Rg-Veda. They are intimately connected with the production of fire and the performance of Soma-saccrifice. Bhrgavāṇa<sup>61</sup> occurs once probably as an epithet of Agni, because of this connection of the Bhrgu family with fire. The Bhrgus appear to have been the first to bring fire from heaven for the use of mankind.<sup>62</sup> This may probably explain the part played by fire in the stories of Bhārgavas like Aurva as also the very name Jamadagni. It is also an indication of the prerogative and position enjoyed by the Bhrgus.

The Samhitās represent the Bhṛgus not only as priests but also as historical characters with inclinations for fighting. Thus in RV. VII. 18, 5ff., the Bhṛgus figure in the confederacy of Ten Kings, Simyu, Turvaśa, Druhyu, Kavaṣa, Pūru, Ānava, Bheda, Śambara, and the two sons of Vikarṇa, to fight against Sudāsa, the king of the Tṛṭṣavaṣ. 53

पुरोळा इत्तुर्वशो यञ्जरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव । श्रृष्टिं चकुर्भुगवो दुह्यवश्च सखा सखायमतरिद्वपूचोः ॥

RV. VII. 18. 6.

Sāyaṇa explains it as:

अपि भृगवः दुद्धवश्च योघाश्च सुदासः तुर्वशस्य च श्रुष्टिम् आशुप्राप्ति चकुः । यद्वार्यक्षु यज्ञशीलः पुरोळाः पुरो दाता × × × अपि च भृगवो दुद्धवश्च श्रुष्टिं सुखं तुर्वशस्य चकुः ।

<sup>61.</sup> Vedic Index, Vol. II, p. 101.

<sup>62.</sup> J. Muir, op. cit., p. 443.

H. Oldenburg, Die Religion Des Veda, 122ff.

<sup>63.</sup> E. W. Hopkins, J. A. O. S. Vol. 15, pp. 261-5.

Sudāsa supported by Indra fought against the Ten kings and gained a victory over them. The two sons of Vikarņa who fought against Sudāsa, had along with them the tribes of not only the above-mentioned Ten kings but also some others, making a total of twenty-one tribes.

एकं च यो विंशति च श्रवस्या वैंकर्णयोर्जनान् राजा न्यस्तः । दस्मो न सद्मित्र शिशाति बहिः शूरः सर्गमक्कणोदिन्द्र एषाम् ॥ RV. VII. 18. 11.

It is perhaps an accidental coincidence that the above hymn refers to the number of tribes against whom Indra fought as twentyone a number that is indissolubly connected with Paraśurāma in later times.

On another occasion, (RV. IX. 101, 13), the Bhrgus are referred to, as fighting against a demon called Makha.

प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्तो न वृत तद्भचः । अप श्वानमराधसं हता मर्खं न भृगवः ॥

Sāyaṇa says here :—सुन्वानस्य × × × तत्र दृष्टान्तः । मसं न । यथा पुरापराद्धं मसमेतन्नामानं भृगवः अपहतवन्तः तथापहतेत्यर्थः ।

In the Atharva Veda (V. 18. 10-11; V. 19. 1-11) there is a curious anecdote that narrates the irretrievable ruin of Srñjaya Vaitahavyas when they slaughtered the cow of the Bhrgu. 64

<sup>64.</sup> M. Bloomfield, S. B. E., Vol. 42, pp. 433-4.

The Brahmāṇḍa-Purāṇa (III. 47. 65.67) refers to the following descendants of Kārtavīrya:—

Kārtavīrya—his fifth son Jayadhvaja—his son Tālajangha—his hundred sons also called Tālajanghas, the eldest of whom was Vītahavya. The *Mahābhārata* (XIII. 30) also refers to the Vaitahavyas as belonging to the Haihaya stock. Some scholars have therefore connected the legend in the *Atharva Veda* with that occurring in the epics and Purāṇas, and also identified the Kesaraprābandhā of the Atharva hymn with Renukā.

From the later stories about the Bhargavas, it would appear that they were a Brahmin clan, perhaps more intimately connected with the ruling class than most of the other clans. They entered into matrimonial ties with Ksatriya ladies. Thus Cyavana is married to Sukanyā, the daughter of King Saryāti, Rcīka to Satyavatī, daughter of Kanyakubja and sister of Viśvamitra and Paraśurāma's father, Jamadagni, to Renukā, daugther of Renu<sup>66</sup> of the Iksvāku family. The royal connections of the Bhargavas for successive generations from Cyavana to Parasurama not only renders the activities of Parasurama against the Ksatriyas look more natural but also reveal the reformist tendency of the Bhargavas even in the remote past. The routing of the whole Ksatriya race by Parasurāma may have been the exaggeration of bards and the fulsome account is to be explained probably by the uniqueness of a Brahman wielding a weapon. But there is some justification in connecting Parasurama with the routing of Ksatrivas; for Sagara who came seven generations after Parasurama and who was helped by the Bhargavas, did entirely rout out not only the Haihayas who comprised the five prominent groups, the Vītihotras or Vītahavyas, Šaryātas, Bhojas, Avantis and Tundikeras, but also the Śakas, Yavanas, Kāmbhojas, Pāradas and Pahlavas from North West. Sagara of Ayodhyā was born and

<sup>65.</sup> Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol. II, pp. 558-60.

<sup>65</sup>a. There is no certainty about the meaning of Kesaraprābandhā. Lüdwing took it as the name of a cow. See S. B. E. Vol. 42, p. 433.

<sup>66.</sup> In some accounts, however, Renukā is considered the daughter of Prasenajit of Ayodhyā.

educated in the Bhargava Aurva's hermitage and also given Paraśurāma's fire weapon with which he devastated the Ksatriyas. Paraśurāma, probably checked the territorial expansion of the Haihayas in the initial stage and his work was completed by Sagara with the help of the Bhargavas.67

A significant effect of the supposed extirpation by Paraśurāma however lies in the history of the social order of the day. For, the ruling and priestly classes had then the necessity to intermingle for the sake of progeny.

तदा निःक्षत्रिये लोके भागवेण कृते सित । ब्राह्मणान्क्षत्रियाः राजन्स्रतार्थिन्योऽभिचक्रमुः ॥ तेभ्यश्च लेभिरे गर्भं क्षत्रियास्तास्सहस्रशः। ततस्सुषुविरे राजन्क्षत्रियान्वीरवत्तरान् ॥ एवं तद्ब्राह्मणैः क्षत्रं क्षत्रियासु तपस्विभिः। जातम्ध्यत धर्मेण सुदीर्घेणायुषान्वितम् ॥ चत्वारोऽपि ततो वर्णाः बमृतुर्बाह्मणोत्तराः ।

Mahābhārata, Ādi Parva, 58, 5-8.

In the later Parasurama-legends prevalent along the West Coast we find Paraśurāma not only inculcating martial spirit in the people of the newly-created area by erecting many institutes for the practice of arms but also creating new conditions of social life there. Paraśurāma, herein, invites Brahmans from outside to people the new country and also confers Brahmanhood on the local people of lower castes.

The anicent Bhrgus were craftsmen noted for their dexterous artistic creations, as evident in the references to their chariotbuilding. On the basis of the above references, Bhrgu is considered synonymous with a handicraftsman. 70 The Maha

<sup>67.</sup> F. E. Pargiter, Ancient Indian Historical Tradition, p. 271.

<sup>68.</sup> cf. Sahyadrikhanda (Bombay 1877), p. 128, sls. 5-9.

<sup>69.</sup> RV. IV. 16, 20 and X. 39. 14.

<sup>70.</sup> Dr. Hermann Weller, A.B.O.R.I., Vol. XVII (1937), p. 299. Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol. II, p. 558.

bhārata<sup>11</sup> (Ādi, 190.47 and 191.1) uses the term 'Bhārgava' in the sense of a potter. The same Epic in a later context<sup>78</sup> narrates the unique account of our indebtedness to Jamadagni for the origin of sandals and umbrelas.

Bhṛgu is a typical name for an Atharvan priest and Bhṛgvangiras is a name of the Atharva-veda itself<sup>73</sup>. The Mahābhārata
and the Purāṇas also relate many accounts of the Bhārgavas'
skill in occult practices, for example the knowledge of the
Sañjīvanī vidyā (reviving the dead) possessed by all Bhārgavas,
and Cyavana paralysing Indra. Cyavana is associated in medicine
with an elixir. Yāska<sup>74</sup> also regards the Bhṛgus as semi-mythical
beings moving in mid-air. Dharma and politics too were their
special subjects of study and Manu Smṛti is referred to by the
other name of Bhṛgu Saṅhitā.<sup>76</sup> Bhṛgu is also one of the authors
on the art of buildings<sup>76</sup> (Vāstušilpa). In fact, there is no subject
on Art or Science that the Bhṛgus were not associated with.

The Bhārgavas, according to the Purāṇas, are a tribe belonging to the West Coast.

#### ब्रह्मोत्तराः प्रविजया भार्गवा ज्ञेयमार्द् काः ।

Śūrpāraka<sup>77</sup> (modern Sopāra) and Bhṛgukaccha (modern Broach), the marine stations along the West Coast are connected with Paraśurāma since the age of the Mahābhārata and the Purāṇas. The Mahendra mountain mentioned on several occasions in the Mahābhārata and the Purāṇas as the place where Paraśurāma is said to have engaged in austerities is supposed to be,

गत्वा तु तां भागवकर्मशालां पार्था पृथां प्राप्य महानुभावी ।
The Bhāvapradīpa of Nīlakaṇṭha says on the above : भागवः कुलालः

<sup>72.</sup> Anuśāsana, chapter 95.

<sup>73.</sup> M. Bloomfield, op. cit., p. XXXIII.

<sup>74.</sup> Nirukta, XI. 19.

<sup>75.</sup> Sukthankar, op. cit., pp. 73-74.

<sup>76.</sup> A. P. Karmakar, A.B.O.R.I. Vol. XX (1938-39), p. 22.

<sup>77.</sup> Aranyaka, 86, 9 connects Sūrpāraka with Jamadagni himself: वेदी शूर्पारके तात जमदमेमहात्मनः।

by some authorities,78 the southernmost spur of the Travancore hills, a few miles from Nagercoil. Amongst the early Bhargavas. Cyavana, entering into matrimonial ties with the royal family at Anarta, is connected with the West. Todarananda (Avatarasaukhya, Paraśurāmāvatāra, śls. 109-11) refers to Jamadagni and Rcīka as belonging to the region near Godāvarī and adds that the river, out of fear for Rcīka, branched into two streams.

> भार्गवाविति जानीहि पुण्याद्गोदावरीतटात्। आगताविह राजर्षे दर्शनार्थं तवानघ॥ अयं मे जनको राजन्नचीको नाम नामतः। <sup>79</sup>यस्य शापभयाद्वीता द्विधा गोढावरी बभौ ॥

The Bhargavas, appear to have occupied a key position near the Narmada and there are no clear evidences to show when they moved further south. With their artistic and literary achievements they seem to have contributed considerably to civilisation. The Brahmanda-Purana (III. 24) recounts the victory that Paraśurāma gained over the Daityas. Paraśurāma is honoured even to this day in the Elnad80 or the Sapta Dravida

F. E. Pargiter regards the Mahendra mountain of the Ramayana as distinct from the range of the same name in the Puranas and says that the first is the Tinnevelli hills and the second is on the eastern India near Ganjam (pp. 97-9, Studies in Indian antiquities, Dr. Hemachandra Roy Choudhri).

The Vādesvarodaya kāvya locates the Mahendra mountain, one yojan to the west of the Sahya mountain on the banks of the river Jagat. pāvanikā and refers to the tradition that Parasurāma named it Mahendra on account of its similarity with its namesake on the East, (A. D. Pusalker, op. cit., pp. 68-9).

79. Cf. Sahyadri khanda of the Skanda Purana (Bombay, 1877), p. 403. गौतम्यां कोटितीर्थे तु ऋचीकस्याश्रमः ग्रुमः। ऋचीकः स तपस्तेपे सहितो जमदिशना ॥ ऋचीकस्य भयाद्यत्र द्विधा गोदावरी बभौ। तत्र स्नानं च दानञ्च ह्यक्षयं च नृणां भवेत्।।

Renukāmāhātmya, chapter 8., Sls. 4. 5. 80. P. 719, Indian Culture, Vol. III (1936-37), "Mohenjodaro, the people and the land" Rev. H. Heras, S. J.

<sup>78.</sup> M. A. Saletore, op., cit., pp. 24-25.

Konkaṇa of the Purāṇas and Reṇukā or the Dravidian deity Ellammā is still worshipped by thousands of people in the province. It can be mentioned here that the story in early literature about Paraśurāma and his killing Reṇukā has taken a different turn in later legends. It is said (Taylor, III, p. 210) that after killing his mother Paraśurāma asked Jamadagni, the boon of reviving Reṇukā. Jamadagni accordingly instructed Paraśurāma to;unite the head and body of Reṇukā in a particular manner. In the confusion of the moment, Paraśurāma applied the head of an outcaste woman to the lifeless body of Reṇukā. Thenceforward, the outcastes are said to regard Reṇukā as their divinity. The Sahyādrikhaṇḍa, Datta Purāṇa and Todarānanda glorify Reṇukā in diverse manner. In fact, Paraśurāma and Reṇukā are considered with equal regard in later legends. §1

The popularity of Parasurāma, as the most prominent representative of the glorious Bhārgava tradition is evident not only in the honoured place as an avatāra assigned to him in the Hindu pantheon but also in his being recognised as an immortal. Purānas like the Bhāgavata and Brahmānḍa describe him as an avatāra and a cirajīvin. Parasurāma is also mentioned among the sages who would be occupying a notable position in the Sāvarṇa manvantara, which is to follow the present Vaivasvata manvantara.

# सावर्णस्य प्रवक्ष्यामि मनोर्वेवस्वतस्य ह । भविष्यस्य भविष्यन्ति समासात्तानिबोधत ॥

81. In the Sahyādrikhanda, Renukā Māhātmya (37 chapter), Parasurāma insists on Renukā to stay with him in the Sahya mountain, and she too accedes to his request.

न हि शक्ष्यामि मातस्त्वद्दते वस्तुमुत्तमे। अस्मिन्सह्याच्छे रम्ये शोभितेऽपि सुर्राष्ट्रिः॥ सर्वतीर्थैः सुरैः सर्वेर्मुनीन्द्रैः सिद्धिकन्नरैः। सिद्धितात्रैव विश्रामं करिष्यामि न संशयः॥

The purely South Indian tradition connecting Parasurāma and Renukā with the origin of the lower strata of society is supposed to have known even to Goethe. (Dr. Jarl Charpentier, Mm. Kuppusvāmi Sāstri Commemoration Volume. 11fn.)

अनागताश्च सप्तैव स्मृतास्त्विह महर्षयः । कौशिको गालवश्चैव जामदग्न्यश्च भार्गवः ॥ Vavu, 100.9-10.

भविष्यसि महर्षिस्त्वं नृनं सावर्णिकेऽन्तरे । ततः प्राप्ते महाकाले मत्सायुज्यं गमिष्यसि ॥ Datta Purāṇa, IV. 8. 17.

Even in the present time, the shades of Paraśurāma could be seen in the martial traits of the Maharastrians, in the matriarchal bias of Kerala and the Aliya-santāna (inheritance through nephews) of Tulu, in all of which areas, Reņukā is prominently deified, and the unique temple of Paraśu in Hiremagaļūr in Mysore is a symbol of the vogue of Paraśu-Rāma's worship in this region.

# श्रीनारद्पुराणम्

#### अनन्तशास्त्री फडके

In this article the learned author has dealt with the various aspects of the Narada-Purana. In the beginning of the article he has tried to establish that the Purana is the most ancient literature from which even the Veda sprang. Originally the Purana was the only literature on the basis of which all religious and social rites were performed. Later on it was also used as the dharmaśāstra, arthaśāstra, nītiśāstra etc. According to the author, in Krtayuga only the Purana existed, in Dvapara the Vedas and the Purāṇas, and in the middle of Dvapara were the Vedas, the Puranas and the other Sastras. At the end of the Dvapara Vyasa codified the Vedas and the Puranas; and after him the Sūtas, the narrators of the Puranas, played an important role in the evolution of the Puranas.

After discussing the origin and the development of the Purāṇa and other allied literature the writer has discussed the problem of the Nāradīya Purāṇa. Dr. Wilson was of the opinion that neither the present Nārada Purāṇa nor the Bṛhannāradīya Purāṇa is the real Nārada-Purāṇa. But here the author has proved the authenticity of the Bṛhannāradīya Purāṇa and proved it as the real Purāṇa. The Nārada-Purāṇa published from Moradabad consists of 42 chapters. The other one published from Venk., bears the name Bṛhnnāradīya Purāṇa and consists of two parts, the first part of 125 chapters and the second part of 82 chapters. The first 41 chapters of both the Purāṇas are the same. 50 verses of the 42nd ch. of Nā. Purāṇa tally with ch. 125 of Part I of the

Brh. N. P. and the remaining 31 verses of ch. 42 are the same as the last 31 verses of ch. 82 of the Part II of Br. N. Purāṇa. Thus all the Ślokas of the Nārada P. are available in the Brhan-Nāradīya.

The author has also given some useful details of the interlocutions of the Brhan-Nāradīya Purāṇa, and also has briefly dealt with the subject-matter of this Purāṇa, specially the contents of the 18 Mahāpurāṇas given in the Bṛhannāradīya.]

श्रीनारदपुराणस्य स्वरूप-समयनिर्धारण-महत्त्व-इतरपुराणतो वैशिष्ट्यादिविवे-चनारपूर्वं संक्षेपेण सर्वेसामान्यं पुराणविषयकविवेचनं कर्तुमुचितं प्रतिभाति ।

प्रायः सर्वपुराणेषु पुराणप्रादुर्भावसमय-स्वरूपनिर्णय कमशोवर्धनप्रकारादिकं समुप्रकम्यते, परन्तु विद्वद्भिस्तद्विशेषतोऽद्य यावन्नालोचितमिति सखेदं कथ्यते ।

प्राचीनभारतीयवैदिकवाञ्चयतः पूर्वं पुराणप्रादुर्भावोऽजायत । ततो वेदास्ततः सर्वशास्त्राणि च—

> पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् । अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥ मत्स्य ५३

वैदिक-सर्वशास्त्रप्रादुर्भावात्पूर्वं पुराणस्य प्रादुर्भावः, अनन्तरं च वेदाः । ततः सर्वशास्त्राणि । अयं क्रमः प्रायः सर्वत्रोषरुभ्यते । परमतिप्राचीने काले पुराणे- नैकेनैव मानवानां त्रिवर्गसिद्धिः समपद्यत, तच्च तदा शतकोटिपरिमितमासीदेतद्पि प्रायः पुराणे सर्वत्र समुपरुभ्यते—

पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरेऽनघ । त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ मत्स्य ५३ तथा रेवामा० १।२३।३०

तस्मिन्नतिप्राचीने काले वैदिकमन्त्रसाध्यधार्मिकाः सर्वाः क्रियास्तथार्थशास्त्र-प्रमृतीनि सर्वाणि शास्त्राणि धर्मकाममोक्षसाधकानि पुराणद्वारैव संपाद्यन्ते स्म । प्रत्युत तदा पुराणपदेनैव संप्रति भिन्नानां वेद-शास्त्र-तन्त्र-कलादिबोध्यानां प्रन्थानां व्यवहारो जायते स्म । एतत्सर्व पुराणमेकमेव पद्समुद्ययेन, त्रिवर्गसाधनपदेन च बोध्यते । तचातिविस्तृतत्वाद् नियतगणनारहितत्त्वाच शतकोटिपविस्तरिमिति कथितम् । न तु तत्र गणनायामावश्यकं श्लोकादिकमुक्तम् । किन्तु केवलं संख्या शतकोटीत्युक्ता, सांप्रतिकैरस्माभिः सांप्रतिककल्पनानुसारं श्लोकपद्मध्याहृत्यार्थः क्रियते । ततस्त-स्मिन्काले विगते तत एव पुराणपद्वाच्याच्छतकोटिसङ्ख्याकप्रन्थराशेर्वह्मणा वेदा आविर्भृताः ततः शास्त्राणि च । ब्रह्मणा ये सृष्टा मन्त्रराशयस्ते केवलं वेदपदबोध्या एव न तु ऋगादिरूपनामसंयुक्ताः, अत एव द्वापरान्ते नारायणस्वरूपव्यासेनैकवेदस्य ऋगादिरूपनामसंयुक्ताः, संगच्छन्ते ।

ऋगादिवेदेषु बहुत्रानेकदेवता गन्धर्वाप्सरस्-आयुर्वेदीयानेकौषध-रोगादिनिवारकमणिमन्त्रादियुद्धोपयोगिकवचशस्त्रादि-गृहस्थितपदार्थ-वस्त्राभूषण-व्यापार-परिमाणनगरप्रामादिका अनेके विषयाः प्रसङ्गतः समागतास्तेषां विस्तार-स्वरूप-निर्माणवृद्ध्यादिकमबोधकाः प्रन्था वेदादितः पूर्वं स्युरिति निश्चयेन वक्तुं शक्यते,
कदाचित्ते लिपिबद्धा न भवेयुः परन्तु गुरुशिष्यपरम्परया संभवेयुः, अन्यथैकजातीयपरस्परभेदसिद्धपदार्थवर्णनं कथं संगच्छेत । उपलब्धानेकसजातीयपरस्परभेदवर्णनपराः प्रन्थास्तदा पुराणारूपैकमहित प्रन्थे अन्तर्भूताः स्युरतः पुराणानामेकं लक्षणं
"पुरा परम्परां वक्ति पुराणं तेन वे स्मृतम्" इत्यप्यु पलभ्यते । अतो वेदानां प्रादुभावादनन्तरं तत्तद्विषयबोधकानि शास्त्राणि पुराणत एव प्रादुर्भूतानीति कल्पनोचिता
प्रतिभाति । अत एव "प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणादभवत्तः ।" (ना० पु०
९२।२३) उक्तं संगच्छते । एवं च त्रिवर्गसाधकपुराणरूपैकप्रन्थराशेर्वेदानां
सर्वशास्त्राणां च प्रादुर्भावोऽभवत् । त्रिवर्गसाधनं-धर्मकाममोक्षरूपित्रवर्गस्य साधकम् ।
अतिपरमप्राचीने काले वेदशास्त्रादिप्रादुर्भावात्पूर्वं पुराणमेकमेवासीत् । स च कालो
वायु-विष्णु-मार्कण्डेयपुराणादिषु वर्णित उपलभ्यते । यथा—

धर्माधर्मी न वा चास्तां निर्विशेषाः प्रजाः तु ताः । तुल्यमायुः सुखं रूपं तासां तस्मिन् कृते युगे ॥ पृथ्वीरसोद्भवं नाम आहारं ह्याहरन्ति वै। ताः प्रजाः कामचारिण्यो मानसीं सिद्धिमास्थिताः ॥

१—न्यदघाद्यज्ञसन्तत्ये वेदमेकं चतुर्विधम् । ऋग्यजुःसामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्घृताः ॥ भाग० १।४।१६-२० ।

पर्वतोद्धिसेविन्यो ह्यनिकेताश्रयास्तु ताः। विशोकाः सत्त्वबहुला एकान्तसुखिताः प्रजाः ॥ तदा सत्यमलोमश्च क्षमा तुष्टिः सुखं दमः। अबुद्धिपूर्वकं वृत्तं प्रजानां जायते स्वयम् ॥ अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्मणो शुभपापयोः। वर्णाश्रमन्यवस्थाश्च न तदासन् न संकरः॥ तासां विशुद्धसंकल्पाज्ञायन्ते मिथुनाः प्रजाः। सुखपाया हाशोकाश्च उत्पद्यन्ते कृते युगे ॥ ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते। द्वापरे यज्ञमेवाहुः ॥ वायु ८।४७-६४

सर्वप्राणिजातसुखकारकस्य कृतयुगीयकालस्य वर्णनं दृष्टवा स्वाभाविक्येव तात्कालिकप्रजानां धर्में, कामे, मोक्षे च प्रवृत्तिरासीदत एवायं धर्मो ऽयमधर्म इति विमेदस्यावश्यकता नासीदेव। इदं च ''धर्माधर्मी न तास्वास्ताम्'' इत्यनेन बोधितम् । स्वाभाविकं धर्माचरणं च ''तासां सत्यमलोभश्च" ''अबुद्धिपूर्वकं वृत्तम्" इत्यनेन स्फुटीकृतम् । कामार्थमर्थरूपद्वितीयपुरुषार्थस्यापेक्षा नासीदेव । तच "पृथ्वीरसोद्भवं नाम" इत्यादिवर्णनेन बोधितम् । "विशोकाः सत्त्वबहुलाः" ''एकान्तसुखिताः" इत्यनेन मोक्षरूषपुरुषार्थप्राप्तिः सूचिता । ''तासां विशुद्ध-संस्काराज्ञायन्ते मिथुनाः" इत्यनेन विद्युद्धकामपुरुषार्थवत्वं पद्शितम् ।

''वर्णाश्रमन्यवस्थाश्च न तदासन्'' इत्यनेन वर्णाश्रमाद्यवलम्ब्य प्रवृत्तवेदादिकानां तदा ८भाव एव स्पष्टं प्रतिपादितः। एवं च धर्म-काम-मोक्षाणां स्वभावतः एव संपादकः सोऽतिपरमप्राचीनः कृतयुगरूपकालः पुराणमात्र-निर्दिष्ट आसीत् । तत्र केवलं पुराणस्यैव पादुर्भावस्तदासीत् "पुराणमेकमेवासीत्" "त्रिवर्गसाधकं पुण्यम्" इत्यनेन बोधितम् । एवं पुराणादिपादुर्भावकम इत्थं बोधयितुं शक्यते—

- (१) कृतयुगम् , ब्रह्मा, पुराणमेकमेव, धर्मकाममोक्षाः पुरुषार्थाः ।
- (२) द्वापरः " वेदाः पुराणं च, धर्मार्थकाममोक्षाः पुरुषार्थाः ।
- (३) द्वापरमध्ये ,, वेदाः पुराणं शास्त्राणि च, ,,

तदात्वे पुराणाद्वेदादिप्रादुर्भावादन-तरमि पुराणमेकमेव, अतो वेदे पुराणशब्द एकवचनमात्र एवोपलभ्यते । यथा—"ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह । उच्छिष्टाज्जित्तरे'' ( अथर्वसं० ११।७।२४) 'स बृहतीं दिशमनु-व्यचलत् । तिमितिहासः पुराणं च'' (अथर्वसं० १५।६ ) एवं गोप. ब्रा. पू. मा. प्र. २ शतप.ब्रा. ११।४।७-९; १३।४।३१३, बृहदा. २।४।११ छान्दो० ७।१।३ इत्यादिषु पुराणादिकस्य वाङ्मयरूपेणैकवचनान्तेन च समुक्लेखो हश्यते । स तृतीयकालिकस्थितिबोधकः । अत एव ''ऋचः सामानि च्छन्दांसि'' इत्यथर्वमन्त्रे "उच्छिष्टाज्जित्तरे' इति पदं सार्थकं भवति । प्रथमत एकपुराणरूपात्पादुर्भूतो वेदरूपमन्त्रराशिरुच्छिष्टं तस्माच पुनर्यज्ञसंतत्ये द्वापरान्ते व्यासदेवद्वारा ऋचां सामनां छन्दसां यजुषां च प्रतिभिन्नानां प्रादुर्भूतानामनन्तरमवशिष्ट एको राशिः पुराणरूप एवाख्यानादिसहितः स्थितः । ततो व्यासदेवेन वेदविभागकरणादनन्तरमाख्यानादिभिर्विशिष्टाः पुराणसंहिताः कृताः—

आस्त्यानैश्चाप्युपास्त्यानैर्गाथाभिः करुपशुद्धिभिः । प्राणसंहिताश्चके पुराणार्थविज्ञारदः ॥ विष्णु० ३।६।१५

तदात्वे व्यासकृताष्टादशपुराणसंहितानामितिहासस्य जयनामकस्य च पृथक् स्वरूपं लक्षणं च यथार्थमासोत् । इतिहासस्याख्यानगाथादिभिरमिश्रितत्त्वात् । यथा शुक्रनीतौ—

प्राग्वृत्तकथनं चैकं राजक्रत्यिमषादितः । यस्मिन्स इतिहासः स्यात्पुरावृत्तः स एव हि ॥ पुराणलक्षणम्—सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वैशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं चैव पुराणं तत्प्रकीर्तितम् ॥ शुक्रनी० ४।३।५१-५२

एवं च पुराणेतिहासयोः स्वरूपं तदा परस्परिमन्नं विस्पष्टमासीत् । परन्तु व्यासेन वैशंपायनं प्रति प्रोक्तं चतुर्विशतिसहस्रश्लोकात्मकं भारतं यथाऽऽख्यानादि-

<sup>(</sup>१) अत्र विष्णुपुराणे टोकायां श्रीधरस्वामिभिराख्यानादिकानां स्वरूपमुक्तम्— स्वयं दृष्टार्थकथनं प्राहुराख्यानकं बुधाः। श्रुतस्यार्थस्य कथनमुपाख्यानं प्रचक्षते॥ गाथास्तु पितृपृथिवीप्रसृतिगीतयः। कल्पग्रुद्धिः श्राद्धकल्पादिनिर्णयः॥ इति

भिरेकलक्षश्लोकात्मकं सृतेन संपादितम् तथा श्रीमता व्यासदेवेनापि म्लेकपुराणाद् वेद-शास्त्रपादुर्भावादनन्तरं यदविशष्टं यत्पुराणं तस्य वृद्धिस्तत्कालप्रचलितैराख्या-नादिभिः कृता—

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः । पुराणसंहिता(तां)श्च चक्रे पुराणार्थविशारदः ॥ विष्णुः ३, ६, १५

तथैव भविष्यपुराणेऽपि पुराणानि सर्वाणि मिलित्वा द्वादशसहस्रहलोकात्म-

कान्यासन् । परन्तु आख्यानादिभिर्वृद्धिं गतानीति प्रतिपादितम्— सर्वाण्येव पुराणानि संज्ञेयानि नर्र्षभ । द्वादशैव सहस्राणि प्रोक्तानीह मनीषिभिः ॥ पुनर्वृद्धिं गतानीह आख्यानैर्विविधेर्नृप ॥

भवि-पु० ब्रह्मपर्वे अ० १, १०४-१०५

एवं च संप्रति इतिहासपुराणयोर्विस्पष्टं स्वरूपं नोपलभ्यते, उभयोराख्या-नादिभिर्मिलितत्वेन समानरूपेण विद्यमानत्वात् ।

एवं च व्यासदेवेन पूर्विस्थतं पुराणमवलम्ब्यानादिभिः समेदं पुराणवृद्धि-करणं संपादितम् । व्यासदेवेन याः पुराणसंहिताः कृतास्तासां स्वरूपं नामानि च कानीति विषये किंचित् वक्तुं शक्यते । समुपलब्धैराख्यानादिभिः पुराणवर्धनं सम्पादयन्ति स्मेति वक्तुं शक्यते यतः—

> शौनकाद्यास्तु ऋषयो ज्ञात्वा भूषस्य स्वर्गतिम् । गत्वा सूतं प्रणम्योचुर्धमं मुख्यं वदाधुना ॥ तेभ्यः सूतः पुराणानि श्रावयामास वै पुनः ॥

भवि० प्रतिसर्ग० खं० २ अ० २३

अत्र भूषस्य स्वर्गतिम् नाम विक्रमादित्यमरणम् । ज्ञात्वा शौनकादिभिः पूर्वश्रुतान्यिष पुराणानि पुनः सूतः तान् श्रावयामास । एतेनेत्थं प्रतिभाति

(१) इदं शतसहस्रं तु लोकानां पुण्यकर्मणाम् । उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतस्रुत्तमम् ॥ चतुर्विशतीसाहस्रों चक्रे भारतसंहिताम् । उपाख्यानैर्विना तानद् भारतं प्रोच्यते बुधैः॥

आदिप० १।१०१-१०३

व्यासोक्तपुराणानि सूतेनाख्यानादिभिर्द्धिंद्धं नीतानि, स शौनकादीन् पुनः श्रावयान्मास । नोचेच्छूतानां पुनः श्रवणं नोषपद्यते । िकञ्च "सवाण्येव पुराणानि०" "द्वादशैव सहस्राणि०" "पुनर्द्धिंद्धं गतानीह आख्यानै०" इत्यादिपूर्वप्रदर्शित-भविष्यपुराणोक्तवचनैव्यासदेवक्कतपुराणानां स्वरूपं द्वादशसहस्रश्लोकात्मकमेवासीत् । व्यासोक्तानि पुराणानि तान्यवलम्ब्य सपादचतुर्लक्षिश्लोकात्मकं वाङ्मयं स्तादिभिनिमितम् । व्यासोक्तानि पुराणानि संभवतो व्यासोत्तरकाले आदिपुराणपद-वाच्यानि भवेयुर्यतो ८नेकत्र पुराणेषु आदिपुराणानां समुलेखो हश्यते । यथा—

हरिवंशे भविष्यपर्वपारम्भे ह्युक्तम्— शृणुष्वादिपुराणेषु वेदेभ्यश्च यथा श्रुतम् । . . . ॥

तथा

शृणुष्वादिपुराणेषु देवेभ्यश्च यथाश्रुतम् ॥ पद्मपु० १।३९।११

तथा— शृणुष्वाववहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम् । शोक्तां ह्यादिपुराणेषु ब्रह्मणाव्यक्तमूर्तिना ॥ वामन० १।२०

एवं च व्यासोक्तपुराणानां सूतोक्तपुराणेष्वन्तर्छीनत्वास्त्रतिस्थितिकाले सूतेना-ख्यानादिभिस्तत्कालोपलव्यैः पुराणसंस्कारकरणात्पूर्वं तानि व्यासोक्तान्यादिपुराणपद-बोध्यानि भवेयुरिति वक्तुं शक्यते। तथा च पुराणानुक्रमकालाद्येवं वर्णयितुं शक्यते—

- (१) कृतयुगम् ब्रह्मा पुराणमेव धर्मकाममोक्षसाधकं शतकोटिप्रविस्तरम् ।
- (२) द्वापरः ,, पुराणं वेदाश्च धर्मादिचतुर्विधपुरुषार्थाः।
- (३) द्वापरमध्यः ,, वेदाः, शास्त्राणि, पुराणं च ,
- ( ४ ) द्वापरान्तः कलिपारम्भः, वेद्व्यासः वेदः शास्त्राणि, पुराणसंहिता आदिपुराण-पदवाच्याः पुरुषार्थचतुष्ट्यसाधिकाः ।
- ( ५ ) करुौ व्यासः स्तादिश्च ब्रह्माचष्टादशपुराणानि चतुर्रुक्षश्चोकात्मकानि । सर्वेपुरुषार्थः
- (६) कलौ विक्रममरणानन्तरं पुनःश्रवणमुषपुराणषद्बोध्यानि पुराणानि ॥ संस्कारकः व्यासाः सूताश्च । १२

भविष्यत्पुराणप्रतिसर्गपर्वचतुर्थखण्डस्थक्षोंकैः (६) सङ्ख्याकं वृत्तमुप-लभ्यते-

> पुनर्विक्रमभूपेन भविष्यति समाह्रयः। नैमिषारण्यमासाद्य श्रावयिष्यति वै कथाम् ॥ पुनरुक्तानि तान्येव पुराणाष्टादशानि वै। तानि चोपपुराणानि भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ अ० १

इतो ऽप्यनन्तरं पुराणेष्वनेके संस्कारा जाता इति नारदपुराणस्थसर्वपुराण-विषयसुच्या महत्त्ववर्णनप्रसङ्गे प्रदर्शयिष्यामः । द्वापरान्ते व्यासदेवेनातिमहच्छत-कोटिविस्तरात्पुराणाद् तदानींतनजनशक्तिह्यासादि दृष्ट्वा चतुर्रुक्षिमितं भूलोके रक्षितं देवलोके ऽद्यापि सर्वं तिष्ठति । सतां पदार्थानां विनाशाभावात्तद्योग्ये समये कार्यनिर्वाहार्थं तेषां सत्ता प्रायः सर्गादिष बोध्यते ।

यथा-वायुपुराणे-प्रागुक्ता या मया तुभ्यं पूर्वकालं प्रजास्तु याः । तस्मिन संवर्तमाने त कल्पे दग्धास्तद्गिना ॥ अप्राप्ता यास्तपोलोकं जनोलोकं समाश्रिताः । प्रवर्तन्ते पुनः सर्गे बीजार्थं ता भवन्ति हि ॥

२ उपो० पा० ८।२३-२४

तथा महाभारते—षष्टिं शतसहस्राणि चकारान्यां च संहिताम् । त्रिंशत्शतसहस्रं च देवलोके प्रतिष्ठितम् ॥ एकशतसहस्रं तु मानुषेषु प्रतिष्ठितम् ॥ १।१०५-१०७

अत्रायं पुराणविषये कमः प्रथमत एकशतकोटिपविस्तरमेकमेव पुराणं पुरुषार्थ-त्रयसाधकं, ततो वेदपादुर्भावः स वेद एक एव । ततः शास्त्राणि । चतुर्विध-पुराषार्थसाधकानि । द्वापरान्ते व्यासदेवेनैकवेदाचत्वारो वेदाः, चतुर्रुक्षपुराणानि उद्यानि । ततो व्यासैः स्तैश्च तत्कालस्थिताख्यानादिभिरुपपुराणानि क्रुतानि । आस्तामिदम् । संप्रति नारदपुराणलक्षणादिकं विवेचयिष्यामः---

नारदपुराणलक्षणं स्वयं नारदपुराणे मत्स्यपुराणे चेत्थं लिखितम्-शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुराणं नारदीयकम् । पञ्जविंशतिसाहस्रं बृहत्करुपकथाश्रयम् ॥

यत्राह नारदो धर्मान् बृहत्करुपाश्रयाणि च ॥ (नारदपु० ९७) पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ॥ (मत्स्य० ५३।२३)

अनेन रुक्षणेनेदं ज्ञायते बृहत्कल्पवृत्तान्तयुतं पञ्चविशासहस्रहरूकेकं च नारदपुराणं विद्यत इति । संप्रति तु समुपरुभ्यमाननारदमहापुराणे बृहत्कल्पस्य सम्बन्धस्तु विद्यत एव परन्तु इलोकसङ्ख्या द्वाविशतिसहस्राणि विद्यन्ते, इलोकानां सहस्रत्रयो तु नोपरुभ्यत एवेति केचन ।

पाश्चात्यसंस्कृतज्ञपण्डित डॉ॰ एच्॰ एच्॰ विल्सनमहोदयो नारदपुराणमवलम्ब्य लिखित-नारदपुराणस्य संप्रति इलोकाः सहस्राणि त्रीण्युपलभ्यन्ते, अतो
महापुराणरूपेण नारदपुराणं कथमिप स्वीकर्तुं न शक्यते, इदं पुराणं षोडशे
सप्तदशे वा शतके संगृहीतं भक्तिबोधकं विद्यते, तथा बृहन्नारदीयपुराणमिष
विष्णोः स्तुतिबोधकमेवं वैष्णवानां कर्तव्याचरणबोधकं पुराणमस्तीति । परन्तु
नैतत्तस्य मतं समुचितं प्रतिभाति । यतो नारदपुराणस्योद्धेखो बह्नालसेनकृतदानसागरे
द्वादशरातद्व्यांस्थितहेमाद्विकृतदानखण्डे च विद्यते । तथा एकसहस्रमिते खिस्ताद्वेभारते समागतयवनयात्रिणा "अल्बरुणि"संज्ञकेन स्वकीये प्रन्थे नारदपुराणस्य समुह्लेखः कृतो विद्यते । अनेनेत्थं ज्ञायते डॉ॰ विल्सनमहोदयेन प्रथमाध्यायतः
सप्तत्रिशदध्यायपर्थन्तमेव नारदीयं पुराणमुपलब्धं स्यात्तेन डॉ॰ महोदयेनातस्तथा
लिखितं परन्तु संप्रति संपूर्णस्य नारदपुराणस्योपलब्धेस्तस्य मतं न प्रमाणकोटिमाटीकते ।

संप्रति बृहन्नारदीयमहापुराणविषये भारतीयेषु कश्चन विश्रमो विद्यते, तथाहि अद्य यावत् सर्वत्र पुराणपारायणे प्रवचने च द्वाचत्वारिंशद्ध्यायात्मकमेव मुरादाबाद-मुद्रितं नारदपुराणं स्वीकियतेस्म । बृहन्नारदीयं तु यद्वास्तविकं महापुराणं तदुपेक्षितं सदुपपुराणेषु गणयन्ति स्म । कदाचिन्नारदपुराणेन सह बृहच्छव्दस्य-प्रयोगोपछव्ध्या मूलं नारदपुराणमुषबृहितं सत् बृहन्नारदीयं जातमत एतद् बृहन्नारदीय-पुराणमुषपुराणे गणयित्वा यद्वस्तुतोऽपूर्णं अमेण तथेव मुद्रितं तन्महापुराणेषु गणयित्वा महापुराणत्वेन प्रसिद्धिं गतम् । परन्त्वस्य अमस्य निरासो गते वर्षे कार्तिकशुक्कपक्षे नवमीतः पूर्णिमापर्यन्ते समये श्रीमत्परमास्तिकश्रेष्ठद्विजवरकाशी-राजमहाराजैः प्रवर्तिते पद्मनाभमन्दिरे नारदपुराणप्रवचनप्रारम्भे जातः । मुरादाबाद-

मुद्रितं भाषाटीकायुतं तथा मुंबई वेंकटेश्वरमुद्रितं बृहन्नारदीयपुराणं इति पुराण-द्वयमानीय समालोच्योभयोः समानानुपूर्वीकत्वं कचन वैषरीत्यं विचार्य च निर्णयकरणसमये संशयो जातः । तथाहि वेंकटेश्वरमुद्रायन्त्रमुद्रितनारदपुराणयन्थ-स्यावरणे नारदीयमहापुराणमिति लेखनेऽपि प्रत्यध्यायं समाप्ती "इतिश्रीबृहन्नार-दीयपुराणे' इति लिखितमुपलभ्यते । मुरादाबादनगरे मुद्रिते नारदपुराणे "नारद-पुराण"मित्येव लेख उपलभ्यते, अन्ते च ४२ अध्यायान्ते नारदपुराण समाप्तमिति लेखोपलभ्यते, अतो नारदमहापुराणं वस्तुतः कियत्परिमाणमितिनिज्ञा-सायामुभयोरध्यायरहोकानां समाहोचनमावश्यकं जातम्, तत्कृते इत्थं परिज्ञात-मुभयग्रन्थे एकचत्वारिंशद्ध्यायाः रलोकाश्चैकरूपा एव । मुरादाबादमुद्रिते यो दाचलारिशोध्यायः स वेंकटेधरमुद्धिते १२५ अध्यायोऽस्ति । तत्रापि पञ्चाश-च्छलोकाः समानाः, वेंकटेश्वरमुद्भिते १२५ अध्यायः पञ्चाशच्छ्लोकान्त एव तत्र च पूर्वोऽघोंऽपि समाप्त एव । पूर्वार्द्धे च चत्वारः पादाः सन्ति । मुरादा-बादमुद्भितनारदपुराणे ४२ अध्यायाः सन्ति पादन्यवस्था पूर्वोत्तराद्धीदिन्यवस्था च नास्ति । ४२ अध्याये ५० रहोकेभ्यो ऽनन्तरमेकत्रिंशछ्होका अधिकाः सन्ति, एवं ८१ इलोकेरध्यायः समाप्यते पुराणमपि तत्रैव समाप्तम् । एते एकत्रिंशच्छ्-लोकाः कुत्रत्या इति जिज्ञासायां वेंकटेश्वरमुद्भिते बृहन्नारदीयपूराणे स्थितस्योत्तर-भागस्य ८२ अध्यायस्य ३२ इलोकेभ्योऽनन्तरं समानानुपूर्वीकास्त उपलभ्यन्ते । एतेषु तेषु इलोकेषु केवलं पुराणमाहात्म्यं पुराणं केन कस्मै पाठितमित्यादिकं विद्यते । तत्रापि मुरादाबादमुद्धिते ४० तमः रहोको नास्ति, स एताहशो विद्यते—

> पञ्चविंशत्साहस्रो संहितेयं प्रकीर्तिता । पञ्चपादसमायुक्ता कृष्णद्वैपायनेन ह ॥ इति ।

म्रादाबादनगरे यावदध्यायश्लोकात्मकमर्थात् ४२ अध्यायात्मकं पुराण-मुपलब्धं तत्र च समाप्तमिति च लेखो दृष्टः स्यात्तत्र "पञ्चविंशत्साहस्री" इत्यादि-इलोको न स्यादेवेति उचितमेव। नोचे 'त्पञ्चविंशत्साहस्री' इलोकदर्शनेन

<sup>(</sup>१) मुरादाबादभाषाटीकासहितंनारदपुराणम्, पताकासंज्ञकपत्रिकायां संवत् १६६६ अभे ऋषिकुमाररामचन्द्रशर्मणा संपाद्य ६।३।४७ सन्काले संमुद्रय प्रकाशितम्।

कथमत्यरुपं प्रायस्त्रिसहस्रहरोकात्मकमिदमित्यवश्यं मुद्रकसंपादकयोश्चेतिस संदेह उदियादेव । अनेनेत्थं करुप्यते स्वरुच्यनुसारं केनचित्स्वपारायणं कर्तुं बृहन्नार-दीयपुराणादियद्ध्यायश्लोकात्मकं भागं विलिख्य "पञ्चविशत्साहस्री" इति विरुद्ध-श्लोकं निष्कास्य च स्वकार्यं संपादितं स्याचदेव मुरादाबादनगरस्थमुद्रकसंपाद-काभ्यामुपल्ट्यं भवेत् । तदेव भाषाटीकायुतं सर्वत्र लव्धप्रचारं नारदपुराणं महापुराणान्तर्भूतमिति मत्वा प्रवचनपारायणपरम्परायां अमेण स्वीकृतं सल्ल्यप्रतिष्ठं ज्ञातमिति मन्ये । एवं विद्वत्यु द्वितीयो अमोऽयमासीत् बृहन्नारदीयं नाम पुराणं मुरादाबादमुद्धितपुराणापेक्षया बृहद्विद्यते परन्तु तदुषपुराणं महापुराणं तु संप्रति नोषलभ्यत एवेति । यथा मतं पाश्चात्यविद्धो डा० विलसन् महोदयस्यासोत् । परन्तु वस्तुतः बृहच्ल्ब्दो न परिमाणबोधकः किन्तु पूर्वपदर्शितमात्स्यनारदपुराणोक्तनारदपुराणलक्ष्मणेनैतन्नारदपुराणं पद्मपुराणं यथा पाद्मकल्पे काले श्रावितं तथैव बृहत्संज्ञकरूपे श्रावितमित्यर्थस्य बोधकं बृहत्पदम् । इदं विस्तरत एतदर्थं कथितं प्रचलितश्रमनिवारार्थमेव ।

उपपुराणेऽप्येकं नारदपुराणं समुपलभ्यते, यथास्तसंहितायामुपपुराणगणना-प्रसङ्गे लिखितं समुपलभ्यते—

षष्ठं तु नारदीयाख्यं काषिलं सप्तमं विदुः ॥ इति । आस्तामिदम् ।

इतरपुराणापेक्षया नारदपुराणे सर्वपुराणानां रुक्षणैःसह प्रतिपाद्यविषयाणां प्रायो मुख्यांशानां सूचिका, अध्याय-श्लोकानां बोधिका यदिस्यात्पाद-पूर्वोत्तरभागव्यवस्था सापि वर्णिता ऽस्ति । तेन संप्रति समुपरुभ्यमानेषु महापुराणेषु कियन्तोंशाः प्राचीनाः कियन्तश्च नवीनाः संप्रदायाभिमानिभिः संयोजिताः, छप्ताश्चेति सम्यक्तया ज्ञातुं शक्यते । यद्यपि मत्स्यादिपुराणेषु केषुचित्पुराणरुक्षणानि कस्मिन् कल्पे कस्य पुराणस्य प्रादुर्भावो ऽतिसंक्षेपेण स्वरूपादिकं चास्ते, परन्तु नारदपुराणतुरुनया तद्तीवसंक्षिप्तमस्ति । केचन नारदपुराणस्य पुराणानां विषयसूचिका न प्राचीना किन्तु नवीना केनचिन्निर्माय योजितेति वदन्ति । अतः सूचिकायाः प्राचीनत्वे विचार-करणमत्यावश्यकं, तेन नारदमहापुराणस्य प्राचीनत्वं तत्र निर्दिष्टानां पुराणानां ततो ऽप्यतिप्राचीनत्वं संसिध्येत् । अतस्तदेव प्रारम्यते । विष्णुपुराणस्य रुक्षणादिकं

मात्स्ये नारदमहापुराणे चेहक् समुपलभ्यते—

वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः । यत्प्राह धर्मानखिलांस्तदुक्तं वैष्णवं विदुः ॥ त्रयो विंशति साहस्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधाः ॥ इति मात्स्ये ५३

नारदपुराणे — शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वैष्णवं महत् । त्रयोविंशति साहस्रं सर्वपातकनाशनम् । यत्रादिभागे निर्दिष्टाः षडंशाः शक्तिजेन ह ॥

एवं प्रचित्रतिविष्णुपुराणनाञ्चा प्रसिद्धविष्णुपुराणे यथा षडंशस्थविषया विद्यन्ते तथैव सूचिकायामिष निर्दिष्टम् । ततः उत्तरभागविषयसूचिका एवं विद्यते —

उत्तरभागे— अतः परस्तु स्तेन शौनकादिभिराद्रात् । पृष्टेन चोदिताः शश्चद्विष्णुधर्मोत्तराह्वयाः ॥ नानाधर्मकथाः पुण्या व्रतानि नियमा यमाः । धर्मशास्त्रं चार्थशास्त्रं वेदान्तं ज्योतिषं तथा ।

इत्यादिप्रकारेण विष्णुधर्मोत्तरपुराणस्थविषयान् संसूच्यान्ते— एतद्विष्णुपुराणं वै सर्वशास्त्रार्थसंग्रहम् ॥ इत्युपसंहृतम् ।

एतत्प्रदर्शनेनेत्थं संसाध्यते नारदपुराणप्रोक्तविष्णुपुराणसृचिकासमये विष्णुपुराणं षडंशात्मकं विष्णुधर्मोत्तरं चैकस्येव पुराणस्य षडंशात्मकः पूर्वभागः, विष्णुधर्मोत्तराख्यनानाधर्मकथा ज्योतिषादिरूप उत्तरभागः, एवं च मिलित्वैकिमव विष्णुपुराणनाम्ना व्यविद्यमाणं त्रयोविंशतिसहस्रक्षोकात्मकं पुराणमासीत्। श्रीशङ्कराचार्याणां समयतःपूर्वमेव नारदपुराणसृचिकाप्रदर्शितव्यवस्था छप्ता लोकानां स्मृतिषथान्निर्गतेति च वक्तुं शक्यते। यतः श्रीशङ्कराचार्येविष्णुपुराणं विष्णुधर्मोन्तरपुराणं च मिन्नत्वेनाङ्गीकृतम्। तैर्विष्णुसहस्रनामभाष्ये लिखितम् "विष्णुपुराणगान्ते श्रीपराशरेणोषसंहतम्। "यिस्मन्न्यस्तमितिरिति" इति प्रचलिते विष्णुपुराणनाम्ना प्रसिद्धे षडंशात्मके सप्तसहस्रपरिमितस्रोकात्मके पुराणे "यिस्मन्न्यस्तमितः" स्थोकः षष्ठांशस्याष्टमाध्याये पञ्चपञ्चाशत्सङ्ख्याको विद्यते प्रथादन्ते एवास्ति। एवं च

श्रीशङ्कराचार्या अपि विष्णुपुराणस्य समाप्तिः संप्रत्यस्माभिर्यथा मन्यते तथैव मन्यन्ते स्म । तथा विष्णुसहस्रनामभाष्ये पार्थक्येन नामनिर्देशं विष्णुपुराण-विष्णुधर्मोत्तराभ्य प्रमाणानि गृह्णन्तिस्म । एवं च विष्णुपुराणं विष्णुधर्मोत्तरपुराणं च सर्वथा भिन्नमेव न त्वेकस्यैव अन्थस्य पूर्वोत्तरभागरू पमिति व्यवहारः संप्रति यथा प्रचिलतः तेषां समये तथैवासीत्। अतो नारदपुराणस्थविष्णुपुराणसूचिका श्रीशङ्कराचार्यभ्यः परमप्राचीने तत्काले विस्मृतेति च कथनेन भासमानेयं विसङ्गतिः परिहर्तुं शक्यते नान्यथा । एवं च मत्स्यपुराणोक्ते विष्णुपुराणरुक्षणे ''त्रयोविंशतिसाहस्र''मिति श्लोकवर्णनमिष पूर्वोत्तरभागरूपमेकमेवपुराणमिति स्वीकारे सङ्गच्छते । संप्रति विष्णु-पुराणनाम्ना प्रसिद्धे विष्णुपुराणे सप्तसहस्रक्षोका उपलम्यन्ते, तथा विष्णुधर्मोत्तर-नाम्ना सर्वथाभिन्नत्वेन स्वीक्रियमाणे पुराणे ( व्यङ्कटेश्वरयन्त्रमुद्भिते ) प्रायो विंशति-सहस्रक्षोका लभ्यन्ते ( एतच्छ्लोकाधिक्यं मूर्तिवर्णनादिना समधिकचतुःसहस्रक्षोकै-र्वृद्धमित्यादियथार्थसमालोचनामर्हति )। विष्णुधर्मोत्तरे स्थितज्यौतिषांशमवलम्बय ब्रह्मगुप्तेन स्वीय ज्यौतिषं लिखितमिति सूर्यसिद्धान्तटीकाकारोक्तिःसङ्गच्छिति, यतो-नारदपुराणस्थविष्णुपुराणस्चिकायां ज्यौतिषांशो ऽस्ति । एवं च नारदपुराणोक्तमतस्य-पुराणोक्तविष्णुपुराणलक्षणेन त्रयोविशतिसहस्रक्षोकात्मकं पूर्वोत्तरभागयुतमेकमेव पुराणं श्रीराङ्कराचार्यतः पूर्वतरकाले लोके प्रसिद्धमासीदतः खिस्ताब्दपञ्चशत्याः पूर्वं नारदपुराणस्थसर्वपुराणस्चिका, नारदपुराणं तथान्यानि पुराणानि अब्दानां पञ्चश-तीतः पूर्वं पादुर्भूतानि न तु सर्वथार्वाचीनानीति निश्चयेन वक्तुं शक्यते । ततः पूर्वं कदा प्रादुर्भ्तानीति न निश्चयेन वक्तुं शक्यते यतो ऽथर्ववेदे पुराणस्य ग्रन्थरूपत्वेन समुल्लेखोऽस्तोति पूर्वं पदर्शितमेव । नारदपुराणस्थसर्वपुराणविषयाणां महत्याः सूच्याः सर्वपुराणविषयाणां प्राचीनत्व-नूतनत्व-प्रक्षेपत्व-निष्कासन-न्यूनीकरणत्वादि विचारे महानुषयोगो ऽस्तीति निश्चप्रचम् । यथा विष्णुधर्मोत्तरे नारदपुराणोक्त-वेदान्तांशोऽत्यरुप उपरुभ्यते । नारदपुराणेनानिर्दिष्टा विषया मूर्तिनिर्माणादयोऽति-

१—"योऽहं सत्त्वं जगचेदं सदेवासुरमानुषम्। अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा-भिन्नदर्शिनः इति विष्णुपुराणे" इति "पवित्राणां पवित्रं यः" इति विष्णुसहस्रनामदश्चमश्लोकव्याख्याने तथा-"यच्छब्दमन्नाम यस्य तत्तस्मिन्नेव वस्तुनि १०" इति विष्णुधर्मोत्तरवचनात् "इति त्रयोदश्लोकव्याख्या प्रारम्भे । एवं यानि नामानि गौणानीति श्लोकव्याख्यायामिति ।

विस्तृता विद्यन्ते । तथा श्लोकसङ्ख्यापि त्रयोविंशतिसहस्रीतोऽधिका विद्यन्ते । अस्य वास्तविकं यथार्थभूतं विवेचनम् अन्यदा करिष्यामः।

नारद्पुराणस्थां प्रतिपुराणस्चिकामवल्रह्य कियन्तों ऽशाः प्राचीनाः कियन्तश्च संपदायपवर्तं केमें लिताः कियन्तश्च निष्कासिता अरुपत्वं वा नीता इत्यादिकं जातुं शक्यम् । यथा—पद्मपुराणे पाखण्डिनां रुक्षणं मायावादिनन्दा तामसपुराणानां लक्षणम् , ऊर्ध्वपुण्ड्रादिधारणपशंसा, द्वैतस्य पशंसा इत्यादयः। तत्र पाखण्डिलक्षणे—

शङ्खचकोध्वपुण्ड्रादिचिह्नैः प्रियतमैई रेः। रहिता ये द्विजा देवि ते वै पाखण्डिनः स्मृताः ॥ पद्म०उ०२३५।५

इत्याद्यः संप्रति पुराणेषूषरुभ्यमाना एतेभ्यः संप्रदायेभ्योऽतितरप्राचीने समये व्यासविरचितपुराणेषु नोपलभ्येरन् । यतो नारदपुराणस्थपद्मपुराणस्चिकायां तेंऽशा न विद्यन्त एव । एवं तामसञास्त्राणि (पद्मपु० १३५, २-१३) तामसपुराणानि ( पद्म ० पु ० २३५, १८-२६ ) वर्णितानि । तत्र मत्स्य-कूर्म-लिङ्ग-शिव-स्कन्द पुराणानां, गौतम-बृहस्पति-संवर्त-यम-उशनस्-साङ्ख्यस्मृतीनां च नरकप्रदत्वमुद्घोषितम् । एतादृशा अंशाः प्रक्षिप्ताः भवेयुः परन्तु तान् दृष्ट्वा ते मूलव्यासविरचिते पुराणे भवेयुरिति मत्वा च सर्वथा पुराणान्यतिनृतनानीति कथनं केषाञ्चनाधुनिकानां न शोभतेतराम् । आस्ताम् । एतस्तर्वं विवेचनं नारदपुराणस्थ-सर्वपुराणविषयस् चोदर्शनेन कर्तुं शक्यत इति नारदपुराणस्थसर्वपुराणविषयस् च्या अतिमहत्वं पुराणविवेचने ऽस्तोति निर्विवादम् , परन्त्वद्ययावत्साविषयस्च्युपेक्षितै-वासीत्।

संप्रति नारदपुराणस्य स्वरूपं संप्रत्युभलभ्यमानश्लोकादिकं च विविच्यते— नारदपुराणस्य स्वरूपम् , यथा-

> यत्राह नारदो धर्मान् बृहत्करुपाश्रयाणि च। पञ्चिवंशत्सहसाणि नारदीयं तदुच्यते ॥ मत्स्यपु० ५३।२३ शृणु वित्र प्रवक्ष्यामि पुराणं नारदीयकम् । पञ्चिवंशित साहसं बृहत्करूपकथाश्रयम् ॥ नार० पु० ९७

एवं च पूर्वोत्तरभागयुतं पञ्चविंशतिसहस्रक्षोकात्मकं नारदपुराणं नारदपुराण-

विषयसूची प्रादुर्भावकाल आसीत् । संप्रति तु द्वाविंशतिसहस्रक्षीका उपलभ्यन्त इति केचन। अस्माभिः कृतायां गणनायां विंशतिसहितद्विशतोत्तराष्टादशसहस्रक्षीका उपलब्धाः। तथाहि पूर्वार्द्धे १२८०९ एवमुत्तरार्द्धे ५४११ मिलित्वा १८२२०। अस्तु । अत्र नारदपुराणे पूर्वार्द्धे चत्वारः पादाः। तत्र प्रथमपादे प्रथमाध्यायतः ४१ अध्यायपर्यन्तं सनको वक्ता नारदः प्रष्टा। द्वितीयपादे ४२ अध्यायतः ६२ अध्यायपर्यन्तं सनन्दनो वक्ता श्रोता प्रष्टा च नारदः। ६३ अध्यायतः ९१ अध्यायपर्यन्तं तृतीयपादे सनत्कुमारो वक्ता प्रच्छको नारदः। ९३ अध्यायतः १२५ अध्यायपर्यन्तं चतुर्थपादे सनातनो वक्ता प्रक्षकर्ता नारदः। अत्र पूर्वार्द्धे शौनकादिकान् प्रति स्तः सनकादिभिर्नारदाय यदुपदिष्टं पुराणं तत्कथयति।

उत्तरार्द्धे तु सर्वथा नारदऋषेः सम्बन्ध एव नास्ति किन्तु मान्धाता प्रष्टा तथा वसिष्ठो वक्ता । एवं शौनकादिकान् सौतिः कथयति । मान्धातृवसिष्ठसंवादतः प्राप्तं नारदपुराणोत्तरार्द्धं नारदपुराणनामके पुराणे कथमन्तर्भावनीयमिति प्रश्नः समुदेति, परन्तु नारदपुराणस्थस्वपुराणसूचिकायां संप्रति यथोपळब्धस्योत्तरार्द्धस्य विषयाणां समुपळभ्यमानत्वात्तन्नारदपुराणान्तर्गतमेवोत्तरार्द्धमिति मन्तव्यम् ।

सर्वत्र पुराणोपकमे नैमिषारण्यनिवासिनो हरिं सहस्रवर्षात्मकसत्रेण यजन्तः शौनकाद्यः समागतं स्तं प्रच्छन्ति स्म । नारदपुराणोपकमे तु सिद्धाश्रमेऽनेक-प्रकारिर्यज्ञैः परमेश्वरं यजन्तं स्तं शौनकाद्य ऋषयो गत्वा प्रश्नमकुर्वित्ति कमो विद्यते । ते शौनकाद्य ऋषयस्तत्र गत्वाझिष्टोमेन नारायणं यजन्तं सूतं दहर्शुः ।

अत्र सूतेन मनुष्यस्वभावं ज्ञात्वा प्रथमत एव पुराणश्रवणे योग्यतां प्रदर्शयितुं केचन सिद्धान्ताः प्रोक्तास्ते त्ववश्यं सर्वैध्येया एव ।

- यथा—(१) सत्कथासु प्रवर्तन्ते सज्जना ये जगद्धिताः । निन्दायां कलहे वापि ह्यसन्तः पापतत्पराः ॥
  - (२) पुराणेष्वर्थवाद्त्वं ये वदन्ति नराधमाः । तैरर्जितानि पुण्यानि क्षयं यान्ति द्विजोत्तमाः ॥ १।५४-५५
  - (१) ते तु नारायणं देवमनन्तमपराजितम् । यजन्तमिष्ठोमेन दहश्र रोमहर्षणिम् ॥ नारद पू॰ १।२६ संभवतः अयमिष्ठशेमयज्ञः पुराणोक्त एव ।

(३) नरो यः सत्कथामध्ये सम्भाषां कुरुतेऽन्यतः । स याति नरकं घोरं तदेकाग्रमना भवेत् ॥ श्रोता वक्ता च विष्रेन्द्रा एष धर्मः सनातनः ॥ १।७३-७४

अन्ये विशिष्टांशा अत्रान्यत्र संकलिता एव ।

पुराणानां विषय इदं विशेषतो ध्यातव्यं विचारणीयं चास्ति । द्वापरान्ते पादुर्भ्तेन व्यासदेवेन तदानींतनानां जनानां बुद्धि-शक्तिहासादिकं दृष्ट्वा तदात्वे स्थितस्यैकदेवस्य यज्ञरूपप्रयोजनमुद्दिर्य ऋग्वेदादिद्वारा विभागः कृतः। तत्र वेदप्रोक्तयज्ञफलसिद्धयर्थं स्वरेण, मात्रयापि वेदोचचारणे वैपरीत्यं न भवत्वितीच्छया पद्कम्जटाघनादिद्वारा पैलप्रभृतिशिष्यद्वारा वेदरक्षार्थं तदात्वे महान् प्रयत्नः कृतः । अतो वेदवाक्ययं प्रायो हिमालयादारभ्यारामेश्वरं संहिताभागरूपमेकस्वरूप-मेबोपलभ्यते । परन्तु पुराणादिवाङ्मयानुपूर्वीरक्षणे न तादृशः प्रयत्नः कृतः । किन्तु पुराणादिष्वर्थज्ञानरक्षणार्थं सामान्यरूपेणेव प्रयत्नः कृतः । स्तश्च अर्थं रक्षयितुं तदा तदा यथेच्छानुपूर्व्या तत्तत्काले सामाजिकघटनां राज्ञां च स्थितिं समालोच्य व्यासोपदिष्टमार्गेण ब्रह्मणा नारदायोपदिष्टपथमनुसृत्य यज्ञार्थं दीक्षितान् शौनकादीन् तदृद्वारा च तत्तद्देशस्थसामाजिकांश्च नैमिषारण्यादिस्थलेषु गत्वा गत्वा श्रावयति स्म । तत्र ब्रह्मणोपदिष्टं व्यासपद्रितसुद्दिष्टमेकमेव विद्यते ।

यथा इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम् । संग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमेतद्विपुली कुरु ॥ यथा हरी भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति । सर्वातमन्यखिलाधार इति संकल्प्य वर्णय ॥ भाग० २।७।५१-५२

इत्युद्देश्यं तन्मार्गं चानुसृत्य सर्वेषां श्रोतृणां स्वीययोग्यतानुसारं स्वीयाराध्ये भक्ति-चित्तेकाग्रय-सन्तोष-राग-द्वेषादिराहित्यं तद्द्वारा समाजस्थिति-रक्षण-वर्धनं जनेषु सामान्येष्विप ज्ञानिवज्ञानं च भवित्वतीच्छया प्रवृत्तास्तत्तत्त्कालिकाः सूताद्य एकरूपमेव "सर्गश्च प्रतिसर्गश्च" इति पुराणलक्षणमाश्रित्य तत्रत्यं "वंशानुचिरतं चैव'' इति घटकमाश्रित्य तत्तत्कालिकऋषि-ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैदय-शृदादिकानां चरितादिवर्णनमेदेन पुराणानि भिदन्ति स्म । तत्रानुपूर्व्या रक्षणे बेदबद् विशेष-

प्रयत्नाभावेनानेके पाठमेदाः परस्परिकद्धा अपि संभवन्तीति नाश्चर्यम् । सांप्रतिकेषु त्रिचतुःशतान्दीतः पूर्वं पादुर्भृतेषु तुरुसीरामायणादिषु पाठमेदाः संभवन्ति, तत्र किमु वक्तन्यमनेकसहस्रवर्षभ्यः पूर्वं प्रादुर्भृतपुराणवाष्ट्रयविषये । यत्केवरुं श्रोतृवक्तु-गुरुशिष्यपरम्परया कर्णानुकर्णश्रवणद्वारा ठिपिलेखनात्पूर्वं रक्षितम् ।

पुराणेर्भारतीयानां हृदयेषु धार्मिक-संस्कार-व्रत-देवता-वेद-दर्शन-धर्मशास्त्रादि-भारताखण्डादिकं च दृढं सुस्थिरं च कीलकवित्रविशितमाबाल्यातसुस्थिरमन्तःप्रविष्ट-मास्ते । तत्तु सांप्रतिकैर्धर्मनिरपेक्षेः केवलमितिहासप्रत्यक्षादिप्रमाणद्वारा सत्यमर्थ-मभिलिप्सुभिः कदापि यत्नशतैरिप न निष्कासियतुं च शक्यम् । एतदेव भगवतो व्यासदेवस्य कृष्णद्वेषायनस्य पञ्चसहस्रवर्षपर्यन्तं जगतीतले विशेषतो भारते च धार्मिकं दार्शनिकं चादर्शभूतं साम्राज्यं विद्यते । यच्च जाति-देश-धर्म-संप्रदाय-आचार-भाषादिभिर्भेदैः कदाप्युच्छेतुं न शक्यते । अग्रैऽपि तथैव सुनिश्चितं सुनिश्चलं च स्थास्यत्येव । भूमावस्यामनेके सम्राजाः समागता विनष्टाश्च तत्र केषां च न नामान्यिप न श्रूयन्ते । परन्तु व्यासदेवस्य जनस्वान्तेषु निर्विरोधं बद्धादरं साम्राज्यं तिष्ठत्येव ।

पुराणवाङ्मयनातेन भारतीयन्तमनस्सु परमेश्वरश्रद्धा-पूर्वनन्मविश्वास-कृतकर्मफलावश्यभोक्तृत्व-प्रभृतयो उनेके गुणा भारतीयेतरदुर्लभा अन्तःस्थापिता-श्चिरं निश्चलतां गताः, संप्रति दूरतरमधोनिषिततान्, दिद्धान्, पाश्चात्यभौतिक— सिद्धिचाकचिक्यचिकतान्, किंकर्तन्यमूढान्, उत्कोचपरायणान्, सर्वतः शञ्च-भिराकान्तानिष समुद्धरेयुरिति निश्चप्रचम्।

एतत्सर्वं तदैव संभवितुं शक्येत यदा पुराणवाङ्मयस्य वास्तविकं सत्यं स्वरूपमनेकविद्वत्समालोचितं निष्पक्षपातरिहतं प्राय इदमेव सत्यमिति सर्वेरङ्गी-कियमाणं सर्वेषां कृते विद्युद्धरूपं समुपलभ्येत । तत्तु बहुविशिष्टविद्वतत्पिश्रम-बहुद्वव्यव्यय-बहुकालसाध्यं च समस्ति । प्रदेशराज्येः केन्द्रराज्येण च तत्संपादियतुं शक्यते । एतदर्थमुत्तरपदेशराज्यद्वारा श्री डा० सम्पूर्णानन्दमहोदयैस्तदात्वे मुख्यमन्त्रिभः समालोच्येतत्कार्यं संपादियतुमेका समितिः समायोजिता, यत्राहमप्येको घटक आसम् । परन्तवन्यकार्यवत्तदिष शोभनं कार्यमञ्चे न प्रचलितिमत्यहो दुर्भाग्यं भारतीयानाम् ।

अस्यां स्थितौ परमास्तिकैरीश्वरदयापात्रैर्महाराजैः काशीनरेशैर्महता द्रव्यव्य-येनानेकविशिष्टविद्वत्सं धटितया ऽखिलभारतीयपुराणनिधिसमित्या सुचारु सप्रमाण-मनेकहस्तिळिखितयन्थसंपादनपूर्वकं पुराणविषयसंशोधनसंपादनादिकार्यं सम्पाद्यते, तत्तावदतीव महनीयं सर्वेषां ऋते आदर्शभूतमभूतपूर्वं सर्वथा संशुद्धमास्तिकादि-हृदयग्राहि संभविष्यतीत्याशास्महे ।

पूर्वं व्यंकटेशमुद्रायन्त्रादिद्वारा मुद्रितैस्तद्धिकारिभिर्विद्वद्द्वारा संपादितैः कलकत्ता-महाराष्ट्र-गुजरात-मद्रासप्रभृतिदेशप्रकाशितैः पुराणैस्तत्काले महानुषकारः समजनोति निश्चितम् । परन्तु तानीतस्ततः स्वसमीपदेशस्थोपलब्धे-ईस्तिलिखितैर्द्वित्रैः पुस्तकैः पाठमेदान् संयोज्य प्रकाशितानि । न तत्र सर्व-भारतीयदेशस्थम्रन्थपाठानां समायोजनं जातम् । परंतु तेन प्रकाशनेनैको गुणः संजातस्तथा दोषोऽपि । गुणोऽयं तानि पुराणानि सर्वेषां ऋते सुलभानि जातानि, अतः पुराणानां परस्परविरुद्धांशान् समालोच्य समालोचकानां चेतसि महान् विश्वासः समुत्पन्नः, यद्भारतीयसंस्कृतेरितिहासस्य च संपादने पुराणैर्विना नान्य उपाय इति, अतस्तानि संशुद्धानि संपूर्णानि विश्वासार्हाणि यथोपलभ्येरन् तथा प्रयत्नः कर्तव्य इति । दोषस्त्वयं येषां समीपे हस्तलिखितानि पुराणान्यासन् तैः समुपलब्धेषु मुद्रितेषु सुवाच्येषु तानि सर्वथा हस्तलिखितानि पुराणान्य-पेक्षितानि सन्ति कीटैर्भक्षितानि किंवा मूर्खेंस्तेषां पुत्रपौत्रादिभिरापणेऽल्पेन द्रव्येण विक्रीतानीति प्रत्यहं संदृश्यते । अतो हस्तिलिखितपुराणसंग्रहोऽपि यावत्प्रयत्नं यावच्छक्ति यावद्द्व्यसाध्यं च प्रामाणिकपुराणसंशोधनार्थं प्रवृत्तसंपादक-समालोचक-संग्राहकाणां प्राथम्येन कर्तव्यकोटिमाटीकत इत्यलमतिप्रसक्तविचारणेन ।

#### THE GARUDA PURANAM

By

#### B. H. KAPADIA

िनबन्वेऽस्मिन् लेखकेन गरुडपुराणस्य स्वरूपरचनादिविषये विमर्शः प्रस्तुतः । गरुडपुराणं तु तार्ध्य-सौपर्ण-वैनतेयादिनामभिर्षि अभिधीयते । विष्णुना गरुडायाभिहितत्वादस्य पुराणस्य गरुडपुराण-मिति संज्ञा । पुराणेषु अस्य पुराणस्य महत्ता सर्वत्र स्वीक्रियते । अस्मिन पुराणे पुराणपञ्चलक्षणान्तंगतविषयातिरिक्ता अपि बहुविधा अन्ये विषया वर्तन्ते येनास्य पुराणस्य महत्त्वं वर्धते एव। पराणस्य गणना वैष्णवपुराणेषु क्रियते। गरुडपुराणे काण्डत्रयं वर्तते - आचारकाण्डः , प्रेतकाण्डः तथा ब्रह्मकाण्डः । लेखक-महोदस्य मतानुसारं प्रेतकाण्ड एव अस्य पुराणस्य मूलभूतोंऽशः, पुराणेऽस्मिन् भूगोल-राजनीति-त्रत-प्रायश्चित्त-माहात्म्य-औषधादिनाना-विषया वर्तन्ते । विषयदृष्ट्या पुराणमिदम अग्निपुराणेन साम्यं भजते। प्राणेषु महाप्राणानां गणनाप्रसङ्गे अस्य पुराणस्य स्थानं सप्तदश वर्तते । क्रचित्त नवमे, त्रयोदशे, पञ्चदशे वा स्थाने अस्य गणना विद्यते । अस्य पुराणस्य वक्ता विष्णुः श्रोता च गरुडः । श्रोकसंख्या अष्टसहसाधिकं वर्तते। रचनाकालनिर्धारणमपि लेखक-महोदयेनात्र कृतम् । पुराणेऽस्मिन् संहितात्रयं वर्तते अगस्त्यसंहिता ( रत्नपरीक्षा ), बृहस्पतिसंहिता ( नीतिः ) तथा धन्वन्तरिसंहिता ( भैषज्यम् )। प्राचीनतमा सीमा ई० पू० २०० वर्षनिर्घारिता सुश्रत-स्य नामोल्ळेखात् । निम्नतमा सीमा ईश्ववीयकाळस्य दश्मशाताच्याः प्रागेव, अळवेरूनी-महोदयेनास्य पुराणस्य निर्देशत्वात्। याज्ञवल्क्यस्मृतेर-पेक्षया (कालः ४०० ई०) अपि अस्य पुराणस्य प्राचीनत्वं निर्घारितं लेखकमहोदयेन । बहवोऽस्य प्राचीना अंशाः लुप्ता नवीनाश्च संयोजिताः। बह्वीनां विद्यानामपि सन्निवेशः परवर्त्तिनि काले एव कृतः महाभारत-रामायणयोः केचित् विषया अप्यत्र संकलिताः। अंततः प्रेतकल्पस्य विषयाणां विमर्शः कृतः। हेमाद्रौ प्रेतकल्पस्य अनेके उद्धरणा विद्यन्ते ये वर्तमानप्रेतकल्पे न विद्यन्ते । अतः ते अंशा गरुडपुराणतः छुप्ता नाता इत्यनुमीयते, नौनिधिरामकृतस्य गरुडपुराणसारोद्धारस्य विषयेऽपि विचारः प्रस्तुतः । ]

The Garuḍa or the Gāruḍa Purāṇa was first revealed by Viṣṇu to Garuḍa and hence its such a name. Its interest in the usual Paurāṇic topics is rather secondary. It is concerned more with the Vaiṣṇavite rituals, Vratas, Prāyaścittās and Māhātmyas. Viṣṇu, Śiva, Durgā, Sūrya and Gaṇeśa are the five gods recommended for worship in it. Imitating the Agni-Purāṇa it summarises the Rāmāyaṇa, the Mahā-Bhārata, Harivaṁśa and has sections on cosmography, astronomy, sāmudrikaśāstra, medicine, prosody, grammar, ratnaparīkṣā, nīti, dharmaśāstra etc.

In the usuall ist of 18 Mahapuranas its place is 17th; as given in Visnu P. 3.6.24, Mark. P. 137. 11, Bhag. P. 12.13.8 (under the name Sauparna), Kurma P. I. I, Br. Vai. P. 4. 133.20, Padma P. 4. 111. 93, 6.220.25, Sayra. P. 9, Madhusudana Sarasvatī: Prasthanabheda 13. Padma P. gives also the 16th place at 6. 263. 80. Garuda itself gives this at 215. 16. The Varaha P. sets this aside and gives in its place Vayu P.1 In Alberunis first list,2 which edition rests on oral information, it is quoted under the name of Tārksya P. and it is assigned 15th place. Dividing the Purānas according to the sattvikani and tamasikani according to Padma P. 4.263.83 Garuda P. is sāttvika along with Visnu, Nārada. Bhagavata, Padma and Varaha. It shows thereby, that it is to be recokned along with Vaisnavani.8 Dikshitar classifies Garuda Purāna among Visnu Purānas. Dr. Haraprasad Śāstrī puts it in the list of the first group of encyclopaedias of literature comprising of Garuda, Agni and Nārada.

Tne Garuḍa Purāṇa is also named after the huge mythical bird Garuḍa, the son of Ṣṣi Kāśyapa or Tārkṣa (after whom it has the name Tārkṣya Purāṇa) and Vinatā (therefore named as Vainateya by Vāyu 2.42.8). The Garuḍa-Purāṇa has three Kāṇḍas: Ācāra or Karmakāṇḍa, (having 240 Adhyāyas) Pretakāṇḍa (49 Adhyāyas) and Brahmakāṇḍa (129 Adhyāyas). Out of these,

<sup>1.</sup> Wilson Visnu P. p. XXIV.

India, I 130, Alberuni's second list (ibid 131) is borrowed from Visnu P.

<sup>3.</sup> Cf. Wilson, Viṣṇu P. XX. Even Sonnerat 178 names it as one of the four Puraṇas dedicated to the praise of Viṣṇu.

<sup>4.</sup> Visnu P. I. 21. 17, Bh. P. 6. 6. 21f. also Hopkins, Epic Mythology 23.

the second is the real Garuda Purana as the common mass is familiar with this only. These three kandas are independent. Pretakanda is the chief and the early part of the Garuda Purana. It is probable that the Acarakanda is added afterwards by about 9th cent.A. D. Brahmakanda is still later as it has the influence of the Bhagavata Purana it; still, it is not later than the 10th cent.A. D. The Uttarakhanda, a part of the Garuda Purāna is interesting as it depicts interesting prakaraņas describing rites to be performed at the approach of death, obsequial ceremonies to be performed by the son, the life of the preta, Narakavātanā, exaltation of the Satī, the efficacy of the Gayāśrāddha.

As the garuda Purāna also possesses the alternative name Suparna it is cited by the Bhagavata Purana as Sauparna P. The connection of the present Garuda P. with the Garuda rests on the account that Visnu revealed the Purana to Garuda at its request and it in its turn announced it to Kaśyapa. Besides. Visnu granted the request of Garuda namely of setting free its mother from the servitude of the serpent, obtains Soma and makes it his Vehicle.7

As soon as Kaśyapa listended the Garuda Purāṇa, as an example of the mystic power attained through it he turns a dried up tree once again green. Otherwise, there is no reference to the Garuda-Myth in the present Garuda-Purana. The Account of the Matsya Purāṇa8 that fundamentally the Garuda Purāṇa deals with the birth of Garuda ought to refer9 to another text or it is only derived from the title of the Purana. The short sketch of the Matsya Purāna regarding the contents of the Purānas10 are quite general. The account of the Agni purana also is to be judged in

<sup>5.</sup> Garuda P. 2. 17ff.

<sup>6.</sup> She was a prey to the lost bet with Kadrū. Cf. Suparnādhyāva 3 and 4, M. Bh. I. 1189ff.

<sup>7.</sup> Cf. Uttara. Kh. I. 9.

<sup>8.</sup> Mats. P. 53. 53: यदा च गारुडे कल्पे विश्वाण्डात गरुडोद्धवम । अधिकृत्याब्रवीत् विष्णुर्गावडं तदिहोच्यते ॥

<sup>9.</sup> That one such was existing is rendered possible from the citation of Hemādri from the Garuda P.

<sup>10.</sup> Mats. P. 53. 13ff,

the same manner that Garuḍa Purāṇa describes the origin of Garuḍa from the universal egg.<sup>11</sup> Even in most of the Purāṇas the connection of the contents with the title of the Purāṇa is very loose. Not only these accounts regarding the contents of the Garuḍa Purāṇa which are in the Purāṇa lists of Matsya and Agni go contrary to our present Purāṇa text but also controvert the account regarding its extent contained in the Purāṇas.

In the Edition of Jībānand Vidyāsāgara, Calcutta, 1890 the text without Uttara-Khanda has about 7200 ślokas12, while with the Utta. Kh. it is 8500 ślokas. The account of our Purāṇa14 itself approximates to it, as according to it it has 8800 ślokas. The Agni-Purana also does not go far off when it gives 8000 ślokas. On the other hand, the accounts of other Purānas regarding the extent of the Garuda Purāṇa are a pure phantasy. Matsya P., 14 Vāyu P., 15 Bhāg. P. 16 and Br. V. P. 17 ascribe to it 19,000 ślokas. Generally, from such numbers one can conclude the existence of a very large text than the one known to us at present which fact equally applies to the number given of other Puranas. As regards the diversity of contents G. P. surpasses Agni P. about whose encyclopaedic nature Winternitz18 has already pointed out. Save the Vaisnavite Purānas, as in the case of the other Purānas, the contents of this Purana agrees very little with the traditionally determined five laksanas of a Purana19 and still less to those characteristics enumerated in the Bhag. Purana.20 Nevertheless,

# 11. Agni P. 271.21 : गारुडं चाष्ट साहस्रं विष्णूक्तं तार्क्ष्यंकल्पके । विश्वाण्डात् गरुडोत्पत्तिं तत् दद्यात् हेमहंसवत् ॥

- 12. The same account is given by Wilson, VI. P. LXXXV on the ground of the present text. Even the account of the contents, though short, gives no doubt that out text was before him. The whole is divided into 229 Adhyāyas.
- 13. Garuda P. 1. 35.
- 14. Matsya P. 53. 54.
- 15. Vāyu P. 2. 42.8
- 16. Bh. P. (Bhāgavata) 12. 13. 8
- 17. Br. Vaiv. P. 4. 133.20.
- 18. Gesch. der Ind. Lit. I. 473 and Wilson Visnu P. LIXff.
- 19. winternitz a. a. 0 443.
- 20. Bhag. P. 2. 10. I; 12. 7. 8.

Adhyāyas 4-6 treat of sarga and pratisarga, Adhyāya 54 deal with Vumsa, Adhyaya 87 treat of Manvantarani, Adhyayas 138-141 treat of Vanisanucaritam (Solar and Lunar dynasties). A large part of the text is occupied with Vaisnavite ceremonies and vratas, Prāyaścittas, description of celebrated Tīrthas and enumeration of their sin removing power. The following is most noteworthy:

Description of Dvipas, Varsas and universal mountains in Adhyāyas 54-61, astronomy in Adhyāya 59, Astrology, omens, and portents in Adhyāyas 60-62, Sāmudrikašāstra in Adhyāya 65, detail description of precious jewels and their potency (ratnaparikṣā) in Adhyāya 68-80, contents of Rāmāyana in Adhyāya 143, legend of Rci's meeting his ancestors in adhyayas 88-90, contents of Harivamsa in adhyaya 144, contents of the Mahabharata in Adhyāya 145, diseases and their treatment in adhyās 146-177, magic to overpower another, to bring impotency and to kidnap a rival in adhyaya 178, the Garuda Mantra which drives away demons and heals fever in Adhyaya 197, medicinal herbs and their potency in adhyayas 179-193, the science of curing horses in adhyāya 201, grammar in adhyāyas 66, 203, 204 and discourse over Nīti in adhyāyas 108-115.

The Garuda Purāna has Khandas Pūrva and Uttara. In the first khanda there is detailed description of ratnaparīksā and rājanīti. Āyurveda is described in 26 adhyāyas. Here also the description of medicinal herbs as a result of whose use one's intellect becomes sharp and pure. This Purana treats the chandaśāstra in six Adhyāyas. From the Garuda Purāna, many small books such as Trivenīstotra, Panca parvamāhātmya, Visnudharmottara, Venkatagirimāhātmya, Srīranganāthamāhātmya, Sundarapuramāhātmya etc. have come out.

The Uttara Khanda of this Purana contains Pretakhanda which is very well known among the devoute Hindus. The Garuda Purāna has its importance and glory for the Hindu only on account of this portion. During the ten days of the Śrāddha after the demise in a family the recitation of this part of the

<sup>21.</sup> These accounts are also treated in Kirfel's Kosmographie der Inder 55f.

Garuda Purāṇa, in particular, is considered very holy and pious by the religious minded Hindus.

On account of certain common features the Garuḍa Purāṇa can be safely described as the sister Purāṇa of the Agni-Purāṇa. Each one deals with the Parā and Aparā Vidyā and the Rāmāyaṇa and the Mahābhārata can be looked upon as the model of that class of literature. This Purāṇa lifts the veil of nature as it were.

It is a moot question whether Garuḍa Puraṇa was written by one author or its bulk has been increased by subsequent additions. From the first chapter we gather that it consisted of 8800 verses. It seems that many things have been added which have no direct bearing with it or have no legitimate connection with it and a large mass of original matter has been expunged from it so that it can remain true to the number 8800. The Pretakhaṇḍa was added as an appendix. The Purāṇa was slowly turned into a compendium. Tāntric rites and mantras such as Tripura Vidyā, Nityaklinna Vidyā, were incorporated in the Garuḍa Purāṇa. This Purāṇa is considered as one of the scriptutal Purāṇas of Vaiṣṇavism. The Pretakalpa is manifestedly an interpolation as its subject is dealt with in chapters on Śrāddha Kalpa, Prāyaścitta etc.

The Garuḍa Purāṇa contains three Saṁhitās viz. the Agastya Saṁhitā, the Bṛhaspati Śaṁhitā (Nītisāra) and the Dhanvantari Śaṁhitā. Any one of these would give it a permanant value, accord it immortal fame among works on practical ethics or applied medicine. The Agastya Saṁhitā deals with the formation, crystallisation and distinctive traits of different preciouse jems and enumerates countries from which our forefathers used to collect them. This part will be surely welcomed by the present day minerologists.

In the Bṛhaspati Saṁhitā there are observations on practical conduct and knowledge of human naturs and it reminds one of Bacons essays. In the Actiological portion of the Dhanvantari Saṁhitā one is surprised to note that in certain types of fever the blood undergoes a sort of chemical change etc. and a kind of

parasite produces leprosy. The therapeutical portion of the Samhita contains many excellent remedies which can help the art of living a long life.

In view of additions and amplifications, it is futile to determine the time of the Garuda Purāṇa. One cannot lay down a precise date for its composition. Garuda Purana is mentioned in Halāyudha's Brāhamaņasarvasvam. According to many eminent authors Vișnudharmottarapurana forms a portion of Garuda Purana. Garuda Purāṇa like Agni Purāṇa, Padma Purāṇa and the like were the exponents of victorious Brahmanism. Descriptions in the life of Buddha though meagre and the occurrance of the name of Susruta in the medicinal portion of the Garuda Purana show that its author was acquainted with the Buddhistic literature of the age. The recension of the Susruta Samhitā was written in 200B. C. by Nāgārjuna. Susruta Samhitā gives the number of bones in a human body as 300, Visnu Smrti gives as 360 and the Garuda Purāna gives as 362 (Asthnām dviadhakam proktam).

The Law book of Yajñavalkya forms the upper limit which is 400 A.D.22 and in the 1st and the 3rd Adhyayas almost the entire Garuda Purana is drawn upon. 23 For a still later date, there is the circumstance, that over and above the contents of the Mahābhārata and the Rāmāyana even the contents of Harivamsa which possesses the character of a Purana are given and therefore is scarcely older than the latest portions of the Great Epics. A surer lower limit is fixed by Alberuni24 whose work about India is composed by 1031 A.D. He knew the 18, Puranas as canonical texts. Their origin ought to be thus 100 years prior. The citations of Alberuni from Purānas particularly form Visnudharmo-

<sup>22.</sup> Jolly, Recht und Sitte p. 21.

<sup>23.</sup> They are the following: Garuda. P. Adhyaya 93=Yajña. I. 13. Adhy. 94 = Yāj. I. 14-50, Adhy. 95 = Yāj. I. 51-89, Adhy. 96 = Yāj. I. 91-180, Adhy 97=Yāj. I. 182-96, Adhy. 98=Yāj. I. 200-216, Adhy. 99= Yāj. I. 217-269, Adhy. 100=Yāj. I. 270-291, Adhy. 101= Yāj. I. 294. 305, Adhy. 102=Yāj. 3. 45-53, Adhy. 103=Yāj. 3.56, ff, Adhy, 104=  $Y\bar{a}j. 3.208-218$ , Adhy.  $105 = Y\bar{a}j. 3.219-328$ , Adhy.  $106 = Y\bar{a}j. 3.1-43$ .

<sup>24.</sup> S. O. S. I.

ttarapurāņa which has been analysed by Bühler shows that this text was before him in a form which is identical with the one known to us to-day. This much can be accepted with certitude that the Garuda preferably Tārkṣya P. quoted by him is identical with that of our text. Compared to the Matsya Purana, we may note; that in the Matsya Purāṇa, the lord assumes the form of a fish and tells the account to Manu, but here the lord tells or better answers the questions of the Garuda, the king of birds, and solves the doubts.

The exact determination of the lower limit depend on the answer to the querry whether Garuda Purana is as old as Visnudharmottarapurana and it can be considered as the part of it. According to Bühlers analysis 27 the Kasmerean Visnudharmottarapurana like other Puranas treats the successive world creations, gives geographical, astronomical and chronological accounts, gives numerous genealogies, legends, contains extensive discourses on vratas and Śrāddhas, gives discourse on dharma and rājanīti, medicine, science of arms, short chapters on Sanskrit and Prakrit grammar, lexicography, metrics, poetics, contains discussion on preliminaries to dance, song and instrumental music, has discussion on the construction of images and temples. As pointed out by Bühler Visnudharmottarapurana is already cited in the 7th cent. A. D.28 As gathered from the work of Alberuni, it appears that he knew and has studied it well and he knew it in a form which is essentially identical with the Kashmerean recension.29 He gives extracts from it, mostly in the form of dialogues between Mārkandeya and Vajra,30 between king Parīkṣa and Śatānīka31 mostly treating of astronomical and mathematical

<sup>25.</sup> Cf. the introduction to the translation of Apastamba's Dharmasūtras S. B. E. 2, XXVIIff. and particularly I. A. 19 (1890), 381ff. 25 (1896) 323ff.

<sup>26.</sup> Winternitz I. 480.

<sup>27.</sup> I. A. 19, 381ff.

<sup>28.</sup> Brahmagupta's (628 A. D.) Brahmasiddhanta is borrowed in Visnudharmottarapurāņa.

<sup>29.</sup> Cf. Bûhler a. a. O. as well as Jolly Recht und Sitte 31.

<sup>30.</sup> India I. 241f., 321, 360, 386, II, 2. 3.

<sup>31.</sup> India I. 77ff.

objects (planets and fixed stars 1.287 f., legends of stars 1.211, Pol. 1.241, even treats of mythology 1.54, Manyantaras 1.387). The oldest Indian author who cites Vi. D. P. is Hemādri32 in whose Caturvargacintāmaņi and entire chapter is borrowed from it. As regards the offering of Śrāddha in Vi. D. P. Caland has shown a very narrow connection with the Visnusmrti and according to which the Purana might have been the portion that loans. If the Vi. D. P. be a part of the original Garuda Purana which still requires a very exact investigation, then the time of the origin of this work may be given between 4th Cent A. D. to 7th cent. A. D. Probably, Vi. D. P. cannot be taken as a decisive criterion for the age of the Garuda Purana since diverse types of additions to the Puranas are often very loosely connected with the main work and they need not originate at the same time. In any case, the Garuda Purāṇa as a whole, does not belong to the latest portions of the Purana literature. According to Hopkins.84 it can be as old as the conclusive redaction of the Mahābhārata. According to Pargiter,35 the genealogical chapters (Adhyāyas 138-141) contain lists of kings which are later than that of Matsya, Vāyu and Brahmāṇḍa Purāṇas. It is a matter for a thorough investigation, whether the shorter list of kings in the Garuda Purāna is really the later one. According to the thorough criticism which Keith<sup>36</sup> has levelled against the chronological determination of Pargiter with reference to the Puranas, still their utility for the absolute and relative date determination of these texts is admissible in any case only with great care. If the Vamsanucarita chapter of the Garuda Purana be later than the above named Purānas it will be so in view of the tolerably high age of the Vāyu Purāṇa<sup>37</sup>; still, it cannot push on Garuda Purāṇa up to the latest time that comes in view.

<sup>32.</sup> Is to be placed according to Bühler a. a. O. between 1260 to 1309 A.D.

<sup>33.</sup> Cf. Winternitz 455 and 477. Rajendralalmitra's account in the introduction to his ed. of Agni Purana, p. III.

<sup>34.</sup> Great of India 48 ann. 2.

<sup>35.</sup> The Purana Text of the Dynasties of the Kali Age, VII and 83, cf. also Ancient Indian Genealogies and Chronology, J.R. A.S. 1910, I-56.

<sup>36.</sup> JRAS 1914, 1021-1031.

<sup>37.</sup> Winternitz I. 463.

The general view point applied by Winternitz, that if a Purāna is to be given a later date then its accounts should be inconceivable and phantastic. This point of view cannot allocate a high age to Garuda Purāņa which with its 84,00000 hells excells to an extent such similar accounts of other Purānas.39 Even the priestly greed, which is enveloped in verbose and pretenteous enumeration of the gifts are to be given to Brahmanas at every possible opportunity ought to point to a later age. This characteristic is stamped on all the later Puranas, (f. e. g. Saura Purāna, Adhyāya 10).

The Uttarakhanda (Pretakalpa) printed by Vidyasāgara at the end of the Garuda Purana, which has the title Pretakhanda (rituals for the departed) treats in 35 Adhyāvas about Pretas, hells and the cult of the dead. Its connection with the main is very loose. Therefore, many chapters of the latter treat the same topics e. g. Adh. 57 deals with the nether world and hells, Adh. 85 offerings on Gaya, Adhy. 99 Śrāddhavidhi, Adh. 104 coming back of the sinner from the hells, Adh. 106 impurity on death, Adh. 210-212 Śrāddha and Sapindikarana. In any case, such repetitions in one and the same Purana are quite frequent and are

<sup>:8.</sup> Hells are beneath the Earth and water. Vișnu P. 2. 6. 1, Vāyu 2.

<sup>39. 176,</sup> Br. Vaiv. P. 2. 33, Bhag. P. 5. 26. 5, Garuda. P. 57. 4, and Vama. P. 2. 50. The number 84,000000 is highly liked in the Indian systems. The Hindus as well as the Jains also believe in 84,00000 lives after which one gets a human birth. Cf. Caurasilakha me bhatakyo etc. In Garuda P. 4. 62, 16, 13, this is the no. of beings. Uttar. Kh. 6. 44 gives this no. of beings in the world of Yama. The nmber of hells given in the oldest Brahmana literature is 7. Cf. Sankarācarya and Rāmānuja on Br. Sūtra 3. I. 15, Amarakośa I. 9. I. Mārk. P. 12 and 14. Manu 4. 88-90, Yāj. 3.222-224, Viṣṇu. XLIII I-22, Vāmana P. II. 50ff., Kirfel Kosm. Visnu P. 2. 6. 2-4, Bhag. P. 5. 26. 7: 28 krores of hells are given according to Agni P. 370 18ff., Padma P. 6. 227. 66. Thus the Brahmanic accounts give multiples of 7 as the basis while the Buddhists give multiples of no. 4. Sporadic accounts are given by Brahma P. viz. 10 hells to give 10 Pindas. Garuda. P. 105.4 gives 12 hells Br. Vaiav. P. gives 86 hells, Brahma P. 214.14 gives 22 hells cf. also Bhaga. P. 5.26.37, Padma P. 6. 229.37 Visnu P. 2. 6. 27, The usual seven principal hells are Raurava, Mahāraurava, Kālasūtra Apratistha, Avīci, Lohapṛṣtha, and Tāmas.

very temptingly connected with the composition of these texts. Sha The date of this Śrāddhakalpa cannot be fixed prior to the middle of the 7th cent. A. D. is to be assumed from the citations from Bhartrhari as he died about 651-652 A. D. However, this conclusion is not convincing as under the name of Bhartrhari, as pointed out by Hertel, there are poems of different authors who can be as old as Bhartrhari himself.

Citations from the Garuḍa Purāṇa occuring in Hemādri's Śrāddhakalpa (Caturvargacintāmaṇi ed. Bibliotheca Indica Vol. III. 1) are borrowed from a text whose general contents visibly correspond to the Uttarakāṇḍa (pretakalpa) of this Purāṇa. But, nothing of the like occurs in the text lying before us, not even in the main part of the same. This circumstance shows, that there must be another Garuḍa Purāṇa than the one edited by Vidyāsāgara. In Hemādri there is no citation from the Uttarakhaṇḍa of the Garuḍa Purāṇa lying before us which does not naturally prove that this text did not yet exist in the time of Hemādri.

By the side of the Garuḍa Purāṇa, as it occurs in the edition of Jīvānanda Vidyāsāgara; there is yet another, which has become well known and this appears to be an extract form this Purāṇa, indeed, from the pretakalpa of the same and this text is entitled Garuḍapurāṇasāroddhāra.<sup>42</sup> The author of this as also the author of the commentary partly given in ślokas names himself in the latter<sup>43</sup> as Naunidhirāma, son of Śrīharinārāyaṇa, grandson of Śrīsukhalālajī, who was a legend teller in the court of king Śrīśardūla in Juñjhuṇūnagara.<sup>44</sup>

<sup>39</sup>a. Garuda P. and Agni P. contain many descriptions of hels which do not confirm to their aims. Particularly rich are the repetitions in Padma P.

<sup>40.</sup> Uttar. Kh. 3. 18 = Bhartrhari 3. 76

<sup>41.</sup> Thus, I-tsing (Takakusu 179 f.), it is presumed that the poet Bhartrhari is identical with the grammarian and the philologist which is even presumed even by Pischel (Die Indische Literatur, Kultur der Gegenwart, 205).

<sup>42.</sup> Aufrecht, Cat. Cat. quotes it as Garudapurānasāroddhārasanıgraha.

<sup>43.</sup> last p. Mayā Naunidhirāmeņa Kṛtoyam Sārasamgrahah Ṭikā on Adhyāya XVI: Iyam Naunidhirāmeņa mayā tikā kṛtādarāt.

<sup>44.</sup> The present Jhūnjhunu, capital of Tahsil of the same name in Jaipur Rājaputāna, about 140 kilometres N. N-W of Jaipur.

If one compares Naunidhirāma's Sāroddhāra with the Pretakalpa of the Garuda Purāņa found in the edition of Vidyāsāgara, it appears that both the texts in reality agree in their general contents and that too rather verbally. Even regarding the extent they are very close: Uttarakhanda has 1319 ślokas in 35 Adhyāyas, Sāroddhāra has 1275 ślokas in 16 Adhyāyas. As Naunidhirama's text almost comes near to the contents of the Uttarakhanda it follows that it is not purely an extract from it. It contains, besides the similarities, even such material which is not found in the main Garuda Purana. The author of the Sāroddhāra points out in the introduction to his Ţīkā a few ancient extracts from the Garuda Purana and utilises still other texts and visibly they are other Puranas. From the Bhagavata Purana a few passages are literally borrowed: Death and the pangs on the path of Yama 1. 21-25, 37ff., = Bhag. P. 3. 30. 14-18, 28, development of the child in the womb 6. 5ff., = Bhag. P. 3. 31.1ff, Sarpapujā 12.74f. occurs almost exactly as in Bhavişyottara P. (Hem. 1666). The description of Yama's path verbally agrees with Brh. Narada P. 19, description of Yama 3. 30ff. agrees with Brh. Nārada P. 29. 47ff, and both these are also in the Uttarakhanda.

In the external form, the text differentiates itself from the Uttarakhanda above all through careful literary style and orderly composition. Adhyāyas 1-13 contain uniform material concluded by the śravanaphala, Adhyāyas 14-16 follow uniformity and have very few repetitions. On the contrary, the arrangement of the Uttarakhanda is awufully confusing, has repetitions even in the same phraseology and that too in abundance. Remarkable is the extensive portion on widow burning (X. 35-50) for which a few verses are in the Uttarakhanda. Even the chapter on Yoga Adhyāya XV and the wise sayings in Adhyāya XVI have no exact parallel in it. From all these it comes out, that Naunidhirāma's

<sup>45.</sup> Ungrammatical forms or usages, irregular Sandhi are very rare. Artistic metres are very often used as in U.kh. They are the following. Indravajrā 1.38; Upajāti 2.16; 6.36; 7.60; 9.48. Vaņšastha 2.35-40; Vasantatilakā 2.48; 6.40; 8.19-20; Sragvini 8.17.18; Sārdûlavikridita 1.59; 15.74-75; Āryā 1.1.16121.

Sāroddhāra is not a mere extract from the Uttarakhanda of the Garuda Purāṇa.

The text should be late on account of the inordinate glorification of Satī found in it, in particular its sources 6, this is also so from the borrowals from the Bhāgavata Purāṇa which speaks for its lateness inspite of its extraordinary estimation in India it belongs to the youngest product of Purāṇa literature. Monier Williams states regarding the conjectured age of Sāroddhāra: "The Garuḍa Purāṇa is comparatively a modern work, probably not older than the seventh or the eight century, and possibly still modern." The last observation is just for Sāroddhāra, hardly only for the Garuḍa Purāṇa.

In his treatment of the cult of the Hindus Monier williams has taken) Sāroddhāra of the Garuḍa Purāṇa as the basis for the deliniation of modern views and usages of the Hindus because he sees in it the excellent incorporation of them, as in this text occurs, what the modern Hindu believes; regarding the continuity of the soul after death and the literary determination of the ceremonies connected with the dead confirming greatly with the modern usages. Jolly proves that ancient custom of the burial were extensively preserved by the Brāhmaṇas and the present consolatary mantras uttered with a certain predilection are borrowed from the Garuḍa Purāṇa (i. e. without doubt our Sārroddhāra). The introduction to the English translation S B H p. I confirms that it is recited whole over India at the funeral of the corpse and still however many fear to listen to it on other occasions as they are considered as ominous.

Before bringing this small article to a close, I would be failing in my duty if I were not to mention my indebtedness to the source which I have made use of in the composition of this article.

<sup>46.</sup> Jolly states in S B E 7. XXIX that widow burning is not mentioned in any ancient Sanskrit Literature. Cf. also Garbe, Beitrage zus Indischen Kultur Geschichte 154f., Winternitz W Z K M 29, 172ff.

<sup>47.</sup> a. a. O. 291ff.

<sup>48.</sup> Recht nnd Sitte 156.

In particular, I ought to express my special debt to Dr. Abegg. To a large extent, I have drawn upon the material from Dn. Phil. Emil Abeggs "Der Pretakalpa des Garuda-Purāṇa", 1921 which is his Habilitations-schrift submitted by him to the Hohen philosophischen facultät I der Universität Zurich. I am highly obliged to the great scholar for it as well as the publisher. If scholars are able to make use of this article, I think, my purpose of writing will be fruitified.

# SAKHAS OF THE SAMAVEDA IN THE PURANAS

#### By

#### GANGA SAGAR RAI

िनबन्धेऽस्मिन् सामवेदस्य शाखानां पुराणानां साक्ष्याघारेण अन्य-साक्ष्येश्च विवेचनम् कृतम् । सामवेदस्य महत्त्वप्रदर्शनपूर्वकं तच्छाखाना-मुत्पत्तिविस्तारह्रासादीनां विवरणं दत्त्वा जैमिनि-राणायनीय-कौथुम-शास्यमुग्नि-शाख्वायनिप्रभृत्यनेकासां शाखानां परिचयः प्रस्तुतः । ग्रन्ते साममंत्राणां संख्याविषयेऽपि विभिन्नमतानामुल्लेखः कृतः ]

The Sāmaveda has a special place in the Vedic literature. In the Gītā, Lord Kṛṣṇa says 'I am Sāmaveda among the Vedas'¹. The Bṛhaddevatā of Śaunaka holds that he who knows the Sāmans, knows' the reality². According to the Rgveda, the Sāmans are accessible only to those who are attentive³. In another mantra of the Rgveda the Sāma-singing is compared to the songs of birds⁴. Special references have been made to Sāmaveda in the Upaniṣads and the Purāṇas also. According to the Chāndogya Upaniṣad if the Rgveda is the speech, the Sāmaveda is the life breath (1. 1. 5) and if the RK. is the eye, the Sāma is the self. (1. 7. 1.) In the Vāyu-Purāṇa, also the Sāmaveda is glorified.

### THE MEANING OF THE WORD SAMAN

By Sāmaveda we generally mean a collection of verses, nearly all of which occur in the Rgveda, and which are sung mostly at the Soma-sacrifices. But strictly speaking Sāman was a melody or chant, apart from the words and Jaimini defines Saman as a gīti<sup>5</sup>. The word Sāman is explained by Yāska in

- 1. वेदानां सामवेदीऽस्मि। Gītā X. 22
- 2. सामानि यो वेद स वेत्ति तत्त्वम् Brhaddevatā
- 3. यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ॥
  Rg. V. 44. 14
- 4. उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि Ibid II. 43.2
- 5. गीतिषु सामास्या Jaimini, II. 1. 36

Nirukta<sup>6</sup>. Bhartrhari, too, has referred to the term<sup>7</sup>. According to the Chandogya Up. already noted the Saman is based on the RK<sup>8</sup>. This shows the distinction of the two, RK and Saman. Saman was a tune, a melody sung to the words of the RK and the Samaveda was the collection of the RKs as set to the Samans<sup>8</sup>.

As recorded in tradition, Sāmaveda originally consisted of one thousand Śākhās. But as in these Śākhās, the texts were studied in forbidden times (anadhyāyas), Indra destroyed them with his thunderbolt<sup>10</sup>. Patañjali, regards the Sāmaveda as of thousand schools (Sahasravartmā)<sup>11</sup>. Othere references, too, are of the same view<sup>12</sup>. The Buddhist text Divyāvadāna also mentions these to be one thousand and eighty in number<sup>13</sup>.

It is obvious that according to the tradition the Sāmaveda originally consisted of thousand schools, which were, later on,

- 6. साम सम्मितमूचा। ग्रस्यतेर्वाचि साम मेन इति नैदानाः Nirukta VII. 12
- 7. ऋचो वा गोतिमात्रं वा सामद्रव्यान्तरं न तु । गीतिभेदाि गृह्यन्ते ता एव निकृता ऋचः ॥
- 8. ऋचि अध्यूढं साम Chāndogya Up. I. 6. 1 and का साम्नो गतिः। स्वर इति होवाच ibid I 8. 4
- Rktantram, Intr. PP. 13-18; For a recent account of Sāmaveda and music, See Dr. V. Raghavan Journ. of the Music Acadamy, Madaras, vol. 33, PP. 127, 133
- 10. (i) अनध्यायेष्वघीयानास्ते शतक्रतुवज्रेणाभिहताः प्रनष्टाः

Caranavyūha P. 43

- (ii) म्रनध्यायेष्वधीयानांस्ताज्ञघान शतक्रतुः Vāyu 61. 29, Bd. II. 35.33
- 11. सहस्रवत्मा सामवेदः Mahabhasya
- 12. (i) सहस्रसंख्यया जाताः शाखाः साम्नः परंतपः ।। Muktikopanişad
  - (ii) स सहस्रमधीत्याशु सुकर्माप्यथ संहिताः । प्रोवाचाथ सहस्रस्य सुकर्मा सूर्यवर्चसः॥ Vāyu 61. 28, Bd. II. 35.33
  - (iii) सहस्रसंहिताभेदं सुकर्मा तरसुतस्तत: I Vișnu III. 6. 6
  - (iv) सहस्रसंहिताभेदं चक्रे साम्ना ततो द्विजाः Bhag. X11 6. 76
  - (v) तत्र सामवेदः सहस्रवा Atharvan parisista 49. 3. 1
  - (vi) तत्र सामवेदस्य शाखासहस्रमासीत् Prapancahrdaya
- 13. ब्राह्मणाः सर्वे एते छन्दोगाः पंक्तिरित्येका साशीतिसहस्रधाभिन्ना । Divyāvadāna

lost. Mahidāsa, the commentator or Śaunaka's Caraṇavyūha quotes a verse according to which he who reads the sacred text in the forbidden times is killed by lightning (vidyut)<sup>14</sup>. Though the myth of the banishment of the Sāmavedic Śākhās cannot be relied upon, yet the existence of the much more Sāmavedic Śākhās than extant cannot be denied. Since the Sāmaveda is based on melody and chants and music depends on vocal organs, the origin of different schools is but natural. The minor differences of these Śākhās were forgotten, and their numerous schools dwindled. The differences between many Samhitās of the Sāmavedic schools is negligible as they differ only in the omission of certain syllables or the pronounciation of certain sounds in a different manner. These differences too, exist between major Śākhās, the minors have even less differences<sup>16</sup>.

As regards the Śākhās that survived, texts are not unanimous in mentioning their names. The Caraṇavyūha of Śaunaka enumerates only fourteen Śākhās of this Veda<sup>16</sup>. Mahidāsa, the commentator on the same text, has slightly differed from the original text and he has cited some new names<sup>17</sup>. The Ātharvaṇa Caraṇavyūha also has some differences in the names<sup>18</sup>. The

<sup>14.</sup> अन्ह्यायेष्वधीयाना म्रीयन्ते खलु विद्यूताः P. 43

<sup>15.</sup> Dr. Caland, Jaiminīya Samhitā, P. 11, Sāmāśramin Trayīrikā P.249

शिषान् प्रवक्ष्यामि आसुरायणीया वासुरायणीया वार्तान्तरेया प्राञ्जल-ऋग्वैनविषाः प्राचीनयोग्या राणायनीयाद्देति । राणायनीया नाम नव भेदा भवन्ति—राणायनीयाः शाख्वायनीयाः सात्यमुद्रलाः खल्वला महाखल्वलाः लाङ्गलाः कौथुमाः गौतमा जैमिनीयाश्चेति ।

<sup>17.</sup> Aftet mentioning the original he writes

अथ प्रकारान्तरेणाह — तत्र राणायनीयानां सप्तभेदा भवन्ति-राणायनीयाः

सारयमुग्राः कालेयाः महाकालेया लाङ्गलायनाः शाद्धूलाः कौथुमारचेति ।

तत्र कौथुमानां षड्भेदा भवन्ति—कौथुमाः आसुरायणाः वातायनाः

प्राञ्जलिवैनभृतः प्राचीनयोग्या नैगमोया इति ।

<sup>18.</sup> तत्र केचिदवशिष्ठाः प्रचरन्ति — राणायनीयाः साड्यमुगाः कालपाः महाकालपाः कौथुमाः लाङ्गलिकादचेति । कौथुमानां पड्मेदा भवन्ति । तद्यथा । सारायणीयाः वातरायणीयाः वैतष्टताः प्राचीनास्तेजसा अनिष्ट-काश्चेति Ath. Parisista 49. 3. 2, 3

verses quoted by Mahidasa mention the name of 13 acaryas18. In the Gobhila Grhyakarma-Prakāśikā, too, the names of 13 acaryas are mentioned 10 and references to 13 acaryas are found in the Jaiminīya Grhya-sūtra21. According to the Rudraskanda, a commentator of the Khādirasūtra, the number of ācāryas is 1322.

The Puranas widely differ from each other and they have less concordance with the above mentioned texts. The Samavedic Śākhās are enumerated in detail in the Viṣṇu Purāṇa as follows:

सामवेदतरोदशाखा व्यासशिष्यस्स जैमिनिः। क्रमेण येन मैत्रेय बिभेद शृण सुमन्तुस्तस्य पुत्रोऽमृत्सुकर्मास्याप्यमृत्सुतः। अधीतवन्तौ चैकैकां संहितां तौ महामती ॥ सहस्रसंहिताभेदं सुकर्मा तत्स्रतस्ततः । चकार तं च तच्छिष्यौ जगृहाते महावतौ ॥ हिरण्यनाभः कौसल्यः पौष्पिञ्जिश्च द्विजोत्तम । उदीच्यास्सामगाः शिष्यास्तस्य पञ्चशतं स्मृताः ॥

- ब्रासां शाखानामध्यापका आचार्यास्त्रयोदशसंख्याकाः । ते यथा— 19. राणायनी सात्यमुग्री दुर्वासा अथ भागुरि:। भारण्डो गोग्रंजवीभंगवानीपमन्यवः।। दारालो गाग्यंसावणीं वार्षंगण्यश्च ते दश । क्युमि: शालिहोत्रश्च जैमिनिश्च त्रयोदश इत्येते सामगाचार्याः स्वस्ति कुर्वन्ति तपिताः ॥
- 20. राणायनिः सात्यमुग्निः । व्यासः ( दुर्वासाः ) । भागुरिः । अगैगुँगि्डः । गौगुंलवि:। भानुमानौपमन्यवा:। कराटि:। मद्यको गाग्यै:। वार्ष-गण्य: । कौथुमि: सालिहोत्र: । जैमिनि: Further in the same book ten Pravacanakaras are referred to.
  - घटि: । भालवि: । कल्बवि: । ताण्डय: । वृषाण: (वृषगराः) । समबाहु: । रुविकः। अगस्त्यः। बष्कशिराः। हूहूः। Gobhila Grhya Karmaprakāsikā
- जैमिनि—तलवकारं—सात्यमुग्रं राणायनिदुर्वांससं च—भागुरि-गौ-21. रु िंड - गौर्गुलर्वि - भगवन्तमौपमन्यवं - कार्राण्ड-साविशा-गार्गवापं गएय-दैवन्त्यम् — इति Jaiminīya Gihya Sütra 1.14
- तथैव राणायनादीनाचार्यान् त्रयोदश शाख्वायनादीन् प्रवचनकतु न् दश Commentary on Khadira Sutra 32, 14, 16

हिरण्यनाभात्तावत्यस्**संहिता** यदिं जोत्तमैः। गृहीतास्तेऽपि चोच्यन्ते पण्डितेः पाच्यसामगाः ॥ **लोकाक्षिनीं**धमिरुचैव कक्षीवाँछाङ्गलिस्तथा । पौष्पिञ्जिशिष्यास्तद्धे देस्संहिता बहुलीकृताः ॥ हिरण्यनाभशिष्यस्त चतुर्विशति सहिताः। प्रोवाच कृतिनामासौ शिष्येभ्यश्च महामुनिः ॥

III. 6. 1-7

The list of the Bhag. P., though does not differ from the Visnu-Purāna in essence, yet it shows some variations. It is as follows:

> जैमिने: सामगस्यासीन्स्रमन्त्रस्तनयो मुनिः। सुन्वांस्त तत्स्रतस्ताभ्यामेकैकां पाह संहिताम ॥ सकर्मा चापि तच्छिष्यः सामवेदतरोर्महान्। सहस्रसंहितामेदं चक्रे साम्ना ततो द्विजः॥ हिरण्यनाभः कौसल्यः पौष्यञ्जिश्च सुकर्मणः। शिष्यो नगृहत्रश्चान्य आवन्त्यो ब्रह्मवित्तमः॥ उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन् पञ्चशतानि वै। षौष्यञ्ज्यावन्त्ययोश्चापि तांश्च प्राच्यान प्रचक्षते ॥ लौगाक्षिमाङ्गिलः कुल्यः कुसीदः कुक्षिरेव च। पौष्यञ्जिशिष्या जगृहुः संहितास्ते शतं शतम् ॥ हिरण्यनाभस्य चतुर्विशतिसंहिताः। शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः रोषा आवन्त्य आत्मवान् ॥

> > Bhag. X. 6.75-80

The list of the Vayu Purana is much detailed and the same is repeated in the Brahmanda Purana with few variations. 23

23. पुत्रमध्यापयामास स्मन्त्मथ जैमितिः। सुमन्तुश्वापि सुरवानं पुत्रमध्यापयत् प्रभूः॥ सुकर्माणं सुतं सुत्वा पुत्रमध्यापयत्त्रभू: 11 27 सहस्रमधीत्याशु सुकर्माध्यथ संहिताः। प्रोवाचाथ सहस्रस्य सुकर्मा सूर्यंवर्चसः ॥ 28

In the Agni-Purāṇa following list of the Sāma-Veda Śākhās is available:

> सामवेदतरोः शाखा व्यासशिष्यः स जैमिनिः॥ सुमन्तुश्च सुकर्मा च एकैकां संहितां ततः। गृहणाते च सुकर्माख्यः सहस्रं संहितां गुरोः ॥

Ch. 153.28-29

कौथुमसंज्ञैका द्वितीयाथर्वणायनी । साम्नः गानान्यपि च चत्वारि वेद आरण्यकं तथा ॥

271.6

अन्हयायेष्वधीयानांस्ताञ्जधान शतकत्ः। प्रायोपवेशमकरोत्ततोऽसौ शिष्यकारणात् ॥ 29 कुढं दृष्वा ततः शक्रो वरमस्मै ददौ पुनः। भाविनौ ते महावीयौं शिष्यावनलवर्चंसौ ॥ 30 अघीयानौ महाप्राज्ञौ सहस्रं संहितावुभौ। एतौ सुरी महाभागौ मा कृष्य द्विजसत्तम ।। 31 इत्युक्त्वा वासवः श्रोमान् सुकर्माणं यशस्विनम् । शान्तक्रोधं द्विजं दृष्ट्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ 32 तस्य शिष्यो भवेद्धीमान् पौष्यज्ञी द्विजसत्तमाः। हिरण्यनाभः कौशिक्यो द्वितीयोऽभून्नराधिपः ॥ 33 म्रघ्यापयत् पौष्यश्री सहस्राद्धं तु संहिताः। तेनान्योदोच्यसामान्याः शिष्याः पौष्यज्ञिनः शुभाः ॥ 34 शतानि पञ्च कौशिक्यः संहितानाञ्च वीर्धवान् । शिष्या हिरण्यनाभस्य स्मृतास्ते प्राच्यसामगाः ॥ 35 लोकाक्षी कुथूमिश्रेव कुशोती लाङ्गलिस्तथा। पौष्यज्ञिशिष्याश्वत्वारस्तेषां भेदान्निबोधत ॥ 36 राणायनीय: स हि तिण्डिपूत्रस्तस्मादन्यो मूलचारी सुविद्वान् । सकतिपुत्र: सहसात्यपुत्र एतान् भेदान् वित्त लोकाक्षिणस्तु ॥ 37 त्रयस्तु कुथुमे: पुत्रा औरसो रसपासर:। भागवित्तिश्व तेजस्वी त्रिविधाः कौथुमाः स्मृताः ॥ 38 शौरिद्य: शृङ्गिपुत्रश्च द्वावेतौ चरितवतौ। सौमित्रः सामवेदविशारदौ ॥ 39 राणायनीय: प्रोवाच संहितास्तिस्र शृङ्गिपुत्रो महातपाः। चैलः प्राचीनयोगश्र सुरालश्र द्विजोत्तमाः ॥ 40

In the circumstances, it is very hard to determine the exact name and number of the Sāmavedic Śākhās. Tradition is complex and no text can be said to be authentic. Various forms of even one name are to be seen. For instance, the name Lāngali occurs in the following forms:

Bhāg. P. Vāyu P. Ath. Pariśiṣṭa Śaunaka's Caraṇavyūha Māṅgaliḥ Lāṅgaliḥ Lāṅgalikāḥ Lāṅgalāḥ

### JAIMINI-THE FOUNDER OF THE SAMAVEDIC SCHOOLS

According to the Purāṇas, the Sāmaveda was first handed down to Jaimini by Vyāsa. Hence Jaimini was contemporary of Vedavyāsa. According to the Mahābhārata he was present in

प्रोवाच संहिता: षट् तु पाराशर्यंस्तु कौथुम:। **ग्रा**स्रायणवैशाख्यौ वेदबद्धपरायणौ ॥ 41 प्राचीनयोगपुत्रश्च बुद्धिमांश्व पतज्जलि:। कौथुमस्य तु भेदास्ते पाराशर्यस्य षट् स्मृताः ॥ लाङ्गिलः शालिहोत्रश्च षट् षट् प्रोवाच संहिताः ॥ 42 भालुकि: कामहानिश्व जैमिनिः लोमगायनिः। कराडश्व कोहलश्चैव पडेते लाङ्गलाः स्मृताः ॥ एते लाङ्गलिन: शिष्या: संहिता: यै: प्रसाधिता: 11 43 ततो हिरएयनाभस्य कृतशिष्यो नृपात्मजः। सोऽकरोच चतुर्विशहसंहिता द्विपदां वर: ॥ 44 प्रोवाच चैव शिष्येम्यो येम्यस्तांश्व निबोधत । राडश्र महवीर्यश्र पञ्चमो वाहनस्तथा ।। 45 तालकः पाएडकश्चैव कालिको राजिकस्तथा। गौतमश्चाजवस्तश्च सोमराजापतत्त: 11 46 पृष्टन: परिकृष्ट्रश्च उल्लब्स एव च। यवीसश्च वैशालो म्रङ्गलीयश्व कौश्विक: 11 47 सालमञ्जरिसत्यश्च कापीय: कानिकश्च यः। पराशरश्च धर्मात्मा इति क्रान्तास्त् सामगाः ॥ 48 सामगानान्तु सर्वेषां श्रेष्ठी ह्रौ तु प्रकीतितौ। पौष्यि कितरचैव संहितानां विकल्पकी ।। 49

Vāyu 61.27-49.

The same verses are repeated in the Brahmanda Purana with few variations in reading.

the court of Yudhisthira.<sup>24</sup> He is also said to be the *udgātr* of king Janamejaya.<sup>25</sup> Various books are attributed to Jaimini e. g. Samhitā, Brāhmaṇa, Kalpasūtra, Mīmāmsā etc. These were written by Jaimini himself or by his pupils is not certain.<sup>26</sup> In any case, it can not be denied that these works belonged to the Sāmaveda, and particularly to the Jaiminīya Śākhā. Vyāsa has cited the name of Jaimini as an authority in his Brahmasūtra.

Two verses are found which clearly call Jaimini sūtra-kāra and propounder of thousand Śākhās²7. Jaimini went to see Bhīṣma lying on the bed of arrows²8. According to the Purāṇas he was a pupil of Vyāsa and in charge of the Sāma-Saṃhitā²9. He taught the Sāmaveda to his own son Sumantu³0. Jaimini was also an authority on yoga³1. In the Vāyu-Purāṇa he is described as a follower of the Lāngala Śākhā³2. But it is not correct because he was the first propagator of the Samavedic Śākhās, while Lāṅgali was a later authority. The name of Jaimini occurs in Jaiminiya Sūtra Kārikā (171 and 172). The Ātharvaṇa Pariśiṣṭa is also aware of his nāme²3. The Mimāṁsā sūtras are of course connected with his name. Reference to Jaimini is seen in the Śāṅkhāyana Grhyasūtra also.³4

### (1) The Jaiminīya Śākhā.

The literature of the Jaiminīyas is extant in its full form. In the Jaiminīya Samhitā the number of verses is 1687 which is 182 less than the verses of the Kauthuma-Samhitā. There is

- 24. Śāntiparva 4.17.
- 25. **उद्**गाता ब्राह्मणो बृद्धो विद्वान कौत्सार्यंजैमिनि: । Ādi, 53.6
- 26. History of Classical Sanskrit, P. 472.
- Quoted by Pt. Bhagavaddatta Vaidika Vanmaya Itihasa, Vol. II.
   P. 22.
- 28. Śāntiparva 47.6.
- 29. Bhāg. XII. 6.33 and 75; Vāyu 60.13; 61.26; Viṣṇu III. 4.9; Brahmāṇḍa II. 35.31.
- 30. पुत्रमध्यापयामास सुमन्तुमथ जैमिनि: ॥
- 31. Vāyu, 88.207; Visnu IV. 4.107.
- 32. Vāyu 61.42.
- 33. Atharva Parisista 43.4.14.
- 34. Śānkhyāyana Grhya Sutra 4.6.1.

considerable number of variant readings in both the Samhitas. In the *Uttarārcika* there are various mantras which do not occur in the Kauthuma Samhita. The number of the *Gānas* in the Jaiminīya Samhitā is 3681. The division of the *Gānas* is as follows:

Grāmegeya Gāna	1232
Aranyagāna	291
Ūḥagāna	1802
Rahasyagāna	356
	The second secon
	3681

Among 1987 verses, the Pūrvārcika has 646 and the Uttarārcika 1041.34a The prominent feature of the Jaiminīya Samhitā is the conversion of d into l. Though the Jaiminiva Samhita has less verses than the Kauthumas, yet there are such verses in the Jaiminīya Samhitā which do not occur in the Kauthuma Samhitā. Like the Satapatha-Brāhmaṇa, the Jaiminiya Brāhmaṇa is big in size. This Brāhmana is published. 35 The Jaiminīya Upanişad Brāhmaṇa is a part of this Brāhmaṇa. The other name of this Upanisad is Gāyatrī Upanisad Brāhmana. The Jaiminīya Brāhmana is called also Talavakāra Brāhmana. Talavakāra is a pupil of Jaimni and it is possible that some portions were arranged by him. The Jaiminīya Grhvasūtra is divided into two parts86. Prof. Caland has remarked about this Sutra text that it is a genuine text of the Jaiminīyas37. And it attaches itself to the other books of this Sakha. This Sutra has mentioned the name of Jaimini Talavakāra38. Sāyanācārva has quoted a reference of this Grhyasūtra. Some portions of this Sūtra were published by Dr. Gastra. The Upanişad of this Śākhā is named Kena Upanişad. It is also called by the name Talavakara.

<sup>34</sup>a. Rktantram, edited by Dr. Suryakanta, Intr. P. 2;

<sup>35.</sup> Edited and Published by Dr. Raguvira, Nagpur 1954.

<sup>36.</sup> Edited by Dr. Caland, Lahore 1932.

<sup>37.</sup> Jaiminīya Grhaya Sūtra, Intr. P. 8.

<sup>38.</sup> तर्पयेदाचार्यंमाचार्याश्च जैमिनि तलवकारं सात्यमुग्रं राणायनि 1.14

### (2) THE KAUTHUMA ŚĀKHĀ

This Śākhā is one of the extant Śākhās of the Sāmaveda. Pāṇini has mentioned this name along with Kaṭha and Laugākṣi. 39 In the Brahmāṇḍa and Vāyu Purāṇas Kauthuma is said to be the son of Parāśara and incharge of a Saṁhitā. 40 The Saṁhitā of the Kauthumas is current among its followers. According to Mahidāsa this Śākhā was popular in Gujrat. 41 In the Mahārṇava the residence of the Kauthumas is said to be the northern region of the river Narmadā. 42 The Kauthuma Saṁhitā consists of 17 Prapāṭhaka's each of whic is again divided into Pūrva and Uttara Bhāga. The number of the mantras according to Prof. Caland is 1869. The total number of the gānas in this Saṁhitā is 2722 as follows:

Grāmegeya gāna	1197
Araṇyagāna	294
Ūhagāna	1026
Ūhyagāna	205
	2722

According to the tradition a large number of books is related to this Śākhā. It is probable that some of these were related to the other small Śākhās of this Veda. The number of the books attached to the Kauthuma Śākhā, according to the Gobhila Gṛhya Karma Prakāśikā is fifty two. This list is also accepted by Dr. Caland. The Kauthuma Gṛhya Sūtra is

- 39. कठकौथुमा: कौथुमलौगाक्षा: Kārtakaujapādigaņa
- 40. प्रोवाच संहिता: षट् तु पराशयिथ कीथुम: Bd. II. 35.45
- 41. गुजरदेशे कीथुमी प्रसिद्धा P. 45
- 42. माध्यन्दिनी शांखायनी कौंथुमी शौनकी तथा नमंदोत्तरभागे च यज्ञकन्याविभागिन:॥
- 43. कौशुमानां के वा ग्रंथा अध्येतव्या इति चेदत्राह कश्चित्-द्वि पश्चाशिदमे ग्रंथाः शाखायाः कौशुमेरिह । प्रोक्ताः सामोदधौ यस्माच्छीते स्मार्ते सुनिश्चिताः ॥

Gobhila Grhya Karma Prakasika PP. 28

44. Introduction to the Pancavimsa Brahmana's translation.

125

preserved in the Government library Mysore. According to Dr. Surya Kanta this Grhya is of independent nature. 45

### (3) THE RĀŅĀYANĪYA ŚĀKHĀ

In the Brahmāṇḍa and Vāyu Purāṇas, Rāṇāyani is referred to as a Śākhākāra of the Sāmaveda. Pāṇini has also mentioned his name. Reference has been made to Rāṇāyani in the Gaṇaratnamahodadhi, where he is described as a Vāsiṣṭha. Patañjali is also acquainted with this school and mentions it along with the Sātyamugris. According to Patañjali the Sātyamugri Śākhā was a subdivision of the Rāṇāyanīyas. Śaṅkarācārya has mentioned a Khila of the Rāṇāyanīyas. He also mentions a Rāṇāyanīyopāniṣad.

The Samhitā of this Śākhā is preserved. We are not certain whether the Samhitā and the Pañcavirnsa and the Ṣaḍvimsa Brāhmaṇa of the Kauthumas were also in use by the Rāṇāyanīyas in the same form in which now we possess them. But according to Prof. Caland it can be proved that the commentator of the Pañcavimsa Brāhmaṇa was a Rāṇāyanīya and the same may be said about Varadarāja who commented upon the Ārṣeya Kalpa. It is not improbable that these texts were the common properties of both the Śākhā.

But it is certain that the Rāṇāyanīyas have their separate Gṛhya and Śrauta sūtras. The Śrauta Sūtra is that of Drāhyā-yaṇa. It is nearly identical with the Lāṭyāyana Sūtra. The only difference between the two is that the Drāhyāyaṇa has some more Sūtras. The Gṛhya Sūtra of this Śākhā is Khādira Gṛhya Sūtra which is divided into four Paṭalas. The Drāhyāyaṇa Gṛhya Pariśiṣṭa is also attributed to this Śākhā.

Differences from other Śākhās: As said earlier, the Sāmavedic Śākhās differ particularly in the omission of Y and V. Dr.

<sup>45.</sup> Pt. Bhagavanddatta, op. cit. Vol. I. P. 316

<sup>46.</sup> Pailadigana (II. 4.59)

<sup>47.</sup> Ganaratnamahodadhi, 3.236

<sup>48.</sup> Cf. V. S. Agrawala, India As Known to Panini, P. 327

<sup>49.</sup> Vedantabhāşya 1II. 3.23

Suryakanta points out that the Kauthumas sing ha-u while the Rāṇāyanīyas sing hav-u.<sup>50</sup> According to Patañjali<sup>51</sup> th followers of the Sātyamugri Śākhā and the Rāṇāyanīya Śākhā read a half e and o in instances like 'swjāta eṣvasūnṛte.' and अध्वयों मोदिभि: सुतम् At present the Rāṇāyanīya Śākhā is found in south also in Mathura.<sup>51a</sup>

### (4) THE SATYAMUGRI ŚAKHA

The other variants of its name are Sātyamudgalāḥ and Sātyamurgyas. But the real name seems to be Sātyamugri<sup>52</sup> and this name is referred to by Pāṇini<sup>63</sup> and Patañjali. In the Śaunakīya Caraṇavyūha it is regarded as a subdivision of the Rāṇāyanīyas. Patañjali has mentioned this Śākhā in connection with a phonetic peculiarity, viz. ardha ekāra and ardha okāra recognised in its Prātiśākhya text. Moreover, the Āpiśali Śikṣā, too is acquainted with the schools of the Sātyamugris and Rāṇāyanīyas.<sup>64</sup>

No text belonging to Sātyamugri Śākhā is preserved. But, it is most probable that this Śākhā originally contained some books, especially its Prātiśākhya, which were later destroyed in the course of time. The Jaiminīya Grhya Sūtra cites his name among the teachers of the Sāmaveda. Likewise, he is mentioned in the Gobhila Grhya Karma Prakāśikā, and in the verses quoted by Mahidāsa in his commentary on the Caraṇavyūha.

### (5) THE ŚĀŢYĀYANI ŚĀKHĀ

Śāṭyāyani Śākhā is regarded as a Sub-division of the Rāṇāyaṇīyas. The Prapañcahṛdaya has given it among the Sāma Śākhās. Reference has been made by Patañjali to the Brāhmaṇa work of the Śāṭyāyanīyas. Śāṭyāyani comes in the Vaṁśa list of Jaimini whose Brāhmaṇa work is still in existence. The

<sup>50.</sup> Rktantram, Intro P. 10; Sāmāśramin, Trayī Tikā P. 249

<sup>51.</sup> Bhāsya I. 1. 2

<sup>51</sup>a. See Dr. V. Raghavan, the Present position of Vedic Recitation and Vedic Sākhās, Veda Dharma Paripālana Sabhā Kumbha konam, 1962.

<sup>52.</sup> Max Müller, History of Ancient Sanskrit. Lit., P. 192

<sup>53.</sup> Pāṇini IV. 1.81

<sup>54.</sup> Apisali Šiksa, 6th Prakaraņa

Śāṭyāyani Brāhmaṇa is quoted more frequently in the later literature. Śaṅkara has quoted it in his Vedānta Sūtrabhāṣya (III. 3. 2, 5; III. 3. 2, 6). Similarly it has been quoted by Āśvalāyana Śrautasutra Apastamba Śrauta Sūtra and by Sāyaṇa on the Tāṇḍya Brāhmaṇa.<sup>55</sup>

The Jaiminīya Upaniṣad Brāhmaṇa has quoted Śāṭyāyani very frequently. The Kalpasūtra of Śāṭyāyani is mentioned in the Bālakrīḍā of Viśvarūpa, Mahādeva's commentary on the Satyāṣāḍha Śrauta Sūtra and Rudraskanda's commentary on the Khādira Gṛhya Sūtra. But unfortunately no text of this Śākhā is preserved.

### (6) THE KALEYA ŚAKHA

Various names of this Śākhā are found. In the Ātharvaņa Caraṇavyūha the name is Kālāpaḥ. A Kāpeya Brāhmaṇa is mentioned in the Satyāṣāḍha Śrauta Sūtra (1.4 and 9.8). Whether it was only a variant reading of the Kāleyas or a different name is not traceable. The Kāleyas are mentioned very frequently in the Sūtras: Śāṅkhyāyana Śrauta Sūtra, Baudhāyana Śrauta Sūtra, Jaiminīya Śrauta Sūtra, Lāṭyāyana Śrauta Sūtra and Kṣudra Sūtra etc.

### (7) THE MAHĀKĀLEYA ŚĀKHĀ

This Śākhā seems only to be a sub-division of the Kāleyas. It is also probable that the Kāleya Śākhā was called by the name Mahākāleya. No literature of these Śākhās is available.

### (8) THE LANGALI ŚĀKHĀ

The Caraṇavyūha of Śaunaka enumerates the Lāṅgala Śākhā as a sub-division of the Rāṇyāyanīyas. According to Atharvana Caraṇavyūha the name is Lāṅgalika. In the Vāyu-Purāṇa (61. 43) six sages are said to be the pupils of Lāṅgala who read their Saṁhitā from him. 56 In the Śrīmadbhāgavata

<sup>55.</sup> These references are quoted in full by Ft. Bhagavaddatta, Vol. II. pp. 31-32; see also B. K. Ghose Fragments of Lost Brahmanas Vol. II.

<sup>56.</sup> भालुकि: कामहानिश्व जैमिनिर्लोमगायिन:। कण्डश्र कोहलश्चैव षडेते लाङ्गलाःस्मृता॥

the name occurs as Māngala which is corrupt version of a Lāngali. No literature of this Śākhā has survived.

### (9) THE GAUTAMA ŚĀKHĀ

According to the Caranavyūha this Śākhā is a subdivision of the Rāṇāyanīyas. In the Epics and Purāṇas we know of several Gautamas and it is difficult to say which Gautama is related to the Sāmaveda as promulgator of one of this Śākhās.

No Samhitā of this Śākhā is available. Only the Gautama Dharma Sūtra, the Gautama Pitṛmedhasūtra and the Gautama Śikṣā are preserved. At the end of the Gautamī Śikṣā a statement is found which is significant as it shows that there existed a Prātiśākhya, presumably of Gautama which recorded a phenomena. The Gautama Dharma Sūtra is regarded as the most ancient. Kumārila expressly connects it with the Sāmaveda. Moreover, Gobhila has quoted Gautama. The Baudhāyana and Vasiṣṭha Dharma Sūtras have derived some material from this Sūtra. This Sūtra is referred to by Śankara, Kumārila and Medhātithi which shows its importance as well as its antiquity.

#### (10) THE ŚĀRDŪLA ŚĀKHĀ

According to Mahidāsa it is a sub-division of the Rāṇā-yanīyas. Nothing is known about Śārdūla Ŗśi. No literature of this Śākhā is met with. Only the Khādira Gṛhya Sūtra is said to be attached to this Śākhā<sup>61</sup>. Hemādri in his Śrāddha Kalpa Paribhāṣā Prakaraṇa has mentioned the name of Śārdūla Śākhā, which shows the existence of the Śārdūla Śākhā.<sup>62</sup>

#### (11) THE NAIGEYA ŚĀKHĀ

The other names of this Śākhā are Naigi and Naigamīya. The word Negebhyaḥ is used in the Sāmavedānukramaṇikā and

<sup>57.</sup> Adi, 122. 50-51

<sup>58.</sup> Drona, 190. 36-40

<sup>59.</sup> Śānti 47. 10

<sup>60.</sup> Rktantram, Intr. P. 3

<sup>61.</sup> Report on a Search of Samskrit MSS in the Bombay Presidency 1892-95 No. 79

<sup>62.</sup> तद्यथा शादुंलशाखिनाम्

the word Naigi is met with in the Rktantram. A text is known as the Naigeya Pariśiṣṭa. It may be presumed that originally there existed a Samhitā of the Naigeyas. About this Samhitā Dr. Surya Kanta observes On Sūtra 94 the commentator cites एन्द्र सानसि (1.129) as an example of the 'guṇa Sandhi'. The Samhitā of the Nigamīyas has एन्द्र सानसिम्. According to the Rktantra (108) all the Śākhās of the Sāmaveda omit y, when it is followed by a consonant, Naigis omit it when it comes in between the vowels (159)'. From this evidence the existence of a Naigeya Samhitā is well established.

### (12) THE BHĀLLAVI ŚĀKHĀ

In Gobhila Grhyakarma Prakāśikā a pravacanakāra is known as Bhallavi. Reference has been made to him in the Jaiminīva Upanisad Brāhmaņa63. The Brhaddevatā also mentions to Bhāllaveyī Brāhmaṇa66 and the Bhāllaveyī Śruti67. Govindasvāmin on the Baudhāyana Dharmasūtravivaraņa mentions it as a Śākhā of the Sāmaveda68. Moreover, this Śākhā is mentioned in the Nārada Śikṣā (1.13), Drāhyāyaṇa Śrauta Sūtra (III. 4.2) and Śankara Vedantabhasya. Patanjali is also aware of this Śākha (4.2.104) and Kāśikā too mentions it (4.2.6-6; 4.3.105). Suresvara has quoted the Samhitā of Bhāllaveyins in his Brhadāranyakabhāsya Vārtika69. On these evidences the existence of a Bhāllaveyī Samhitā may be concluded. The Brāhmana of this Śākhā is also widely quoted. But at present no text of this Śākhā is available. In the Purāņas a Bhāluka Ŗṣi is referred to. But his identity with Bhallavi is uncertain. It is obvious from the evidences of the Saunaka's Brhaddevatā that Bhāguri was not identical with Bhāllavi as both the names are quoted separately in that Book (3.100; 5.40; 68.).

<sup>63.</sup> Rktantram 2. 6. 9; 4. 3. 2

<sup>84.</sup> ibid, Intr. P. 3

<sup>65</sup> Jaiminīya Up. 2. 4. 7.

<sup>66</sup> Brhaddevatā V. 23

<sup>67.</sup> ibid V. 159

<sup>68.</sup> भाल्लविन: छन्दोगविशेषा:

<sup>.</sup> इति भाक्सविशाखायां श्रुतिवाक्यमधीयते २१६.२०

### (13) THE ŚĀLIHOTRA ŚĀKHĀ

A Śalihotra acarya is mentioned in the Gobhila Grhya Karma Prakāsikā. Mahidāsa has also mentioned him70. According to the Mahābhārata a Śālihotra was a resident of a forest where Pāndavas accompanied by Hidimbā had rested and Śālihotra fed them71. This Śākhā is mentioned in the Vāyu and Brahmāṇḍa Purāṇas72. No text of this Śākhā is avilable.

### (14) THE VĀRSAGANYA ŚĀKHĀ

According to the Jaiminīya Grhya Sūtra, Prapañcahrdaya, Gobhila Grhyakarma Prakāśikā and the verses quoted by Mahidāsa, the Vārsaganya Śākhā belonged to the Sāmveda. The Mahābhārata is aware of a Vārṣaganya, who was taught by Gandharvarāja Visvāvasu about the jīva and the paramātman73. Yādava Prakāśa while commenting upon the Pingala-Sūtra has quoted a verse from the Vārṣagaṇya Samhitā<sup>74</sup>. On the evidence of Yādava Prakāśa the existence of a Vārsaganya Samhitā may be inferred. But at present no text is available.

### (15) THE TANDYA ŚAKHA

The famous Tāṇḍya or Pañcavimśa Brāhmaṇa belongs to this Śākhā. Tāṇdya Rṣi is mentioned in the Śatapatha Brāhmaņa<sup>75</sup>. In the Ŗṣi tarpaṇa of Sāmavidhāna Brāhmaṇa Tāṇḍya is regarded as a pupil of Bādarāyaṇa78, Śankarācārya has mentioned this Śākhā in the Vedāntabhāsya.77 He calls the Chāndogya Upanisad by the name of Tāndya Upanisad<sup>78</sup>. A Tandi Rsi is mentioned in the Mahābhārata. Prof. Caland has quoted the verses which are found in the Tandya Brahmana and have

<sup>70.</sup> दारालो गाग्यंसावर्णी वार्षगण्यश्च ते दश। कुथुमि: शालिहोत्रश्च जैमिनिश्च त्रयोदश ।।

<sup>71.</sup> Southern recension after Adi, 154.18 (Vide Gitapress ed.)

<sup>72.</sup> Vayu 61.42; 61.42: Bd. 3.46.

<sup>73.</sup> Śāntiparva 318.59

<sup>74.</sup> Commentary on Pingala Sutra 3.12 Satapatha Br. IV. 1, 2, 25

<sup>75.</sup> अथ ह स्माह ताएड्यः

<sup>76.</sup> बादरायणस्ताण्डिशाख्यायनिभ्याम

<sup>77.</sup> Vedāntabhāsya 3. 3. 24, 27

<sup>78.</sup> ibid 3. 3. 36

variation from the extant Samhita79. On this ground the existence of a separate Samhita of this Śakha may be argued. From a reference of the Narada Śiksa it seems that originally the Tandya Brāhmaṇa was accented80. At present except the Brāhmaṇa, no text is available.

## (16) THE TALAVAKĀRA ŚĀKHĀ

Talavakāra was a pupil of Jaimini and he founded his own Śākhā. Perhaps he re-arranged his teacher's works, viz. Jaiminīya Brāhmana, which also bears the name Talavakāra Brāhmana. Pāṇini has mentioned him in the Saunakādigaņa as a n author of the Chandas or the Vedic Śākhā81. Talavakāra is mentioned in the Jaiminīya Grhya Sūtra. The Talavakāra Āranyaka is divided into four Adhyayas and 145 Khandas.

## (17) THE KALABAVIN ŚAKHA

In the Gobhila Grhyakarma Prakāśikā Kālabavin is mentioned among the ten Sama-pravacanakaras. The Brahmana of the Kalabavins is frequently referred to in the Kalpa Sutras. According to the Puspa-Sūtra the Brāhmana text of the Kālabavins was accented82. Prof. Max Müller thinks it not necessary that the Brahmana was accented88. No literature of this Sakhā is preserved.

### (I8) RURUKI ŚĀKHĀ

Ruru Rsi is also mentioned among the ten Samapravacanakāras. The Ruruki Brāhmana is mentioned in the commentary on the Drāhyāyaṇa Śrauta Sūtra<sup>84</sup>. No literature is handed down.

<sup>79.</sup> Vaidika Vānmaya kā Itihāsa, Vol. I, P. 323

<sup>80.</sup> Nārada-Siksā I. 13

<sup>81.</sup> Dr. V. S. Agrawala: India as known to Pāṇini, P. 339.

<sup>82.</sup> Puspa Sutra 8. 8

<sup>83. &</sup>quot;The passage of the puspa-Sūtra (VIII. 8) which was quoted before does not prove that the rules on the accent were laid down in the Brahmanas of the Kalabavins, because it may also mean that the accented delivery of the sacred texts was enjoined in the Brahmana" History of Ancient Skt. Lit., p. 59. ft.

<sup>84.</sup> Dhanvis Com. on the Drahyayana Sūtra (V. 3. I.)

### (19) THE BHAGURI ŚAKHA

Ācārya Bhāguri is referred to in the Prapañcahrdaya, the Gobhila Grhyakarma Prakāśikā, The Jaiminīya Grhyasūtra and the verses quoted by Mahidasa in his commentary on the Caranavyūha. The Brhaddevatā has mentioned him as an authority. No literature of this Śākhā has come down to us.

### (20) THE DURVASA ŚAKHA

In the Prapañcahrdaya, Gobhila Grhyakarma Prakāśikā and Jaiminīya Sūtra this Śākhā is mentioned. A Durvāsas is famous for irritable nature in the Puranas. No literature of this Śākhā is available.

### (21) THE CHĀNDOGYA ŚĀKHĀ

This Śākhā is mentioned in the Prapañcahrdaya. probably this school was based on the Brahmana and the Upanisad. The Brāhmana and Chāndogya Upaniṣad are published.

### (22) THE GARGYA SAKHA

This Śākhā is mentioned in the Prapañcahrdaya, Gobhilagrhyakarma Prakāśikā, Jaiminīya Sūtra and the commentary of Mahidasa on the Caranavyuha. We have no knowledge about this Śākhā. No literature of this Śākhā is known.

### (23) THE AUPAMANYAVA ŚĀKHĀ

Reference has been made to it in many texts which mention the schools of the Samaveda. No literature is known.

### (24) THE SAVARNYA ŚAKHA

This Śākhā is mentioned in the Prapañcahrdaya. But no literature is available.

### (25) THE SĀRĀYAŅĪYA ŚĀKHĀ

It has been included in the list of Samavedic Śakhas by the author of the Atharvana Caranavyuha. Nothing is known about it.

### (26) THE PRĀCĪNAYOGYA ŚĀKHĀ

It has been included in the Samavedic Schools by the Mahidasa and the Jaiminiya Upanisad Brahmana (I. 39. 1).

The Vayu and the Brahmanda Puranas have also mentioned this Śakha. But no literature is preserved.

### (27) THE ĀSURĀYAŅĪYA ŚĀKHĀ

In the Caranavyūha of Śaunaka this Śākhā is mentioned. Only the name of this Śākhā is known.

### (28) THE VĀSURĀYAŅĪYA ŚĀKHĀ

This Śākhā, too is mentioned by Caraṇavyūha, Mahidāsa and the Purāṇas. No text of this Śākhā is available.

# (29) THE VĀRTANTAVĪYA ŚĀKHĀ

This Śākhā is only known by its name.

### (30) THE GAULGALAVI ŚĀKHĀ

This Śākhā is referred to in the Jaiminīya Gṛhya Sūtra and the Gobhila Gṛhya karma Prakāśikā. No literature is preserved.

### (31) THE DARALA ŚAKHA

Mahidas has mentioned this School.

## (32) THE BHĀRUŅDA ŚĀKHĀ

It is mentioned by Mahidasa.

The Purāṇic list of the Sāmavedic schools is lengthy<sup>85</sup>. According to them Vyāsa taught the Sāmaveda to Jaimini and Jaimini to his own son Sunvān and Sunvān to Sukarman. Sukarman's two pupils are Hiraṇyanābha Kauśalya and Pauṣyañji or Pauṣpiñji. Hiraṇyanābha Kauśalya was a prācya sāmaga and Pauṣpiñji an udīcya. Hiraṇyanābha Kauśalya's pupil was Kṛta, who according to the Matsya Purāṇa<sup>86</sup> was a son of king Sannatimat, of the Paurava dynasty (49. 75-76 I). He taught his Samhitā to twenty four pupils who were named after him as Kārtāḥ and were

<sup>85.</sup> Vāyu p. Ch. 61; Bd. II. 35; 13 Bhags. XII. 6: Vis. III 6

<sup>86.</sup> तस्यासीत् सन्नतिमतः कृतो नाम सुतो महान् । हिरएयनाभिनः शिष्यः कौसल्यस्य महारमनः ।। Matsya, 49. 75, 6

regarded as Prācya-Sāmagās. In Viṣṇu Purāṇa also Kṛta is said as a pupil of Hiraṇyanābhin in yoga and codifier of the twenty four Samhitās of the Sāmaveda. In the Vāyu and the Brahmāṇḍa Purāṇas also the Prācya Sāmagas are mentioned. The name of Kṛta does not appear in the Vaṁsa Brāhmaṇa, but the name occurs in a Pāṇinian Sūtra कार्तकोजपादयस्व. The pupils of these ācāryas are grouped into two, viz. the prācya or eastern Sāmagas and Udīcya or northern Sāmagas. From these the Sāmaśākhā developed into many.

#### NUMBER OF THE SAMA VERSES

It is very difficult to fix the exact number of the Sāmans since the number varies from one recension to another. According to the Śātapatha Brāhmaṇa Sāma mantras are equal to letters of the four thousand Bṛhati metres<sup>89</sup>. The number of the letters in one Bṛhati is 36. Hence according to the Śatapatha Brāhmaṇa the Sāmans are equal to (36x4000) 144000 letters. The Caraṇavyūha, attributed to Śaunaka gives the number as 1440<sup>90</sup>. This is confirmed by the Vāyu<sup>91</sup> and the Brahmāṇḍa Purānas<sup>93</sup>. The Ātharvaṇa Pariśiṣṭa, too, holds the same view<sup>93</sup>.

- 87. सन्नमित: कृत: पुत्रोऽभवत् ।
  यं हिरएयनाभो योगमध्यापयामास ।
  यश्चतुर्विशप्राच्यसामगानां संहिताश्चकार ॥ IV. 19. 50
  But in the Viṣṇu Purāṇa (III. 6.7), Bhāgavata, XII. 6. 8., Vāyu 61.48.
  Bd. II. 35. 52 also Kṛta is said as a pupil of Hiraṇyanabha Kausalya.
- 88. Vide Dr. V. Raghavan Gleanings from the Matsya Purāṇa, Purāṇa, I. 1 pp. 80-81.
- 89. Satapatha Brāhmana X. 4. 2. 2
- 90. अष्टी सामसहस्राणि सामानि च चतुर्दश । श्रष्टी शतानि नवतिर्दशतिवीलखिल्यकम् ॥

Caranavyūha, P. 43

91. श्रष्टी सामसहस्राणि सामानि च चतुर्देश। सारएयकं सहोहं च एतद्गायन्ति सामगाः।।

Vāyu 61. 63

<sup>92.</sup> Brahmānda P. 35. 71

<sup>93.</sup> Atharva Parisista 43. 3. 9





Their Majesties of Nepal at a reception given by the All-India Kashiraj Trust.

## PRASASTI

IN HONOUR OF

Their Magesties, King and Queen of Nepal

RECITED BY

Panditaraj Rajeshwar Sastri Dravid, Padmabhusan

ON BEHALF OF

ALL-INDIA KASHIRAJ TRUST

# नेपाल-नरेश महाराजाधिराज श्री ५ महेन्द्रवीरविक्रमशाहदेवसेवासु

**炎怒怒寒怒怒怒怒怒怒怒怒怒怒怒** 

सदा काशीश्वरेणैक्ये स्थितः पशुपतीश्वरः । नयपालक्षेमयोगे जागर्त्वाचन्द्रतारकम् ॥

काशो पुण्यतमा पुराणनगरी पूर्वें: सदैवादृता यस्यामद्य समागमेन भवतः सर्वे प्रसन्ना वयम्। संस्थेयं बहुमानयन्त्यभिमतं योगं सुयोगागतं पृथ्य्यामेकलहिन्दुराज्यनृपते ! ब्रूते तव स्वागतम्॥

गौरीशङ्करसिवधान-चरणाधानैः पवित्राञ्चला कैलासात् शिवगन्धशीतलवहन्मन्दानिलान्दोलिता । नेपालाविनरार्यपालनिवधौ प्राक्कालतः शीलिता यस्या अद्य भवान् नृपाल ! कुलवान् सुस्वागतं वेद्यते ॥

या ते सर्गनिसर्गंदुर्गंविटता शूरोद्भटा वीरभूः सा सारस्वतपारदर्शनसुधीहीराकरख्यातिभूः। तस्याः सर्वंविधा कला च सकला विद्या यथोत्कृष्यते सम्यग व्यापृतिरत्र तत्रभवतः सिंहासनादिष्यते॥ लोके केवलनन्यशिक्षणकृतैः पूर्वागतासङ्गतैः शान्तिस्थित्यनुकूलनीतिगतिषु भ्राम्यन्मते सम्प्रति । पाश्चात्याहितदर्शनैरथ पुराणादर्शसम्मर्शनैः तत्रेयं प्रतिसंविधातुमनसा संस्था प्रतिष्ठासित ॥

लोके न्यायपराः कृता यदि नराः पौराणिकात् शिक्षणात् नान्यास्मादिति न सम दुर्ग्रहमदोऽस्माकं परामर्शने । तस्मात् कार्यमुपायकल्पविषयेष्वार्यः कृतस्वक्षणेः कर्तव्यं प्रतिभाति युक्तमधुनोद्धर्तुं पुराणं वचः ॥

स्वस्त्यस्तु सर्वंजगते विजयोऽस्तु सर्वंन्यायानुयायिजनतासु शुभोदयोऽस्तु । विश्वेश्वरस्य कृपया नृप ! यातु वृद्धि सोऽयं समागम उदकंशुभोदयाय ॥

सर्वभारतीयकाशिराजन्यासः (दुर्ग रामनगर, वाराणसी)



### SKANDA IN THE PURĀŅS AND CLASSICAL LITERATURE

By

#### PRITHVI KUMAR AGRAWALA

श्रिरमन् निबन्धे स्कन्दिवषयको विमर्शः प्रस्तुतः । ग्रुप्तसाम्राज्ययुगे स्कन्दवृत्तं चरमिवकासं लेभे । स्कन्दाख्यानं पुराणेषु विभिन्नरूपेणोप-लभ्यते । केषुचित् कान्येषु शिलालेखेषु चापि स्कन्दकथाया निर्देशः प्राप्यते । स्कन्दस्य वाहनो मयूरस्तस्य प्रतिद्वन्द्वी तारकासुरश्च ग्रुप्तकालात् प्राप्यितिमिते साहित्ये ग्रुप्तकालप्राग्वितिषु पूर्तिषु शिलालेखेषु चानिर्दिष्टौ । स्कन्दप्रतिद्वन्द्वरूपेण महिषासुरस्येव वर्णनं ग्रुप्तकालात् प्रागुपलम्यते । दाक्षिणात्यतामिलसाहित्येऽपि स्कन्दकथाया वर्णनं प्राप्यते । दाक्षिणात्यतामिलसाहित्येऽपि स्कन्दकथाया वर्णनं प्राप्यते । दाक्षिणात्यास्तं सुब्रह्मण्येति नाम्ना पूजयन्ति देवसेना वल्लो च तस्य द्वे भार्ये इति च मन्यन्ते । वस्तुतस्तु स पूर्वं पार्वत्यज्ञातीयानामेव देव आसीत् । वल्ली चापि काचिद् पर्वतीया कन्याऽभूत् । मयूरश्च पर्वतदेशीयः पक्षी वर्तते । पुराणसाहित्य स्कन्दस्य वाहनो मयूरस्तस्य पत्नी वल्ली च ताक्षिणात्यतामिलसाहित्यादेव गृहीतौ आस्ताम् , पुराणसाहित्याच तामिलसाहित्ये सुब्रह्मण्यस्य शिवपुत्रत्वं षण्युखत्वं च गृहीते । एवमेतयोः समयोः साहित्ये पुत्रह्मण्यस्य शिवपुत्रत्वं षण्युखत्वं च गृहीते । एवमेतयोः समयोः साहित्ययोः परस्परम् आदानप्रदाने बभूवतुः ।

स्कन्दस्य तस्य गणानां च बालपीडाकरग्रहरूपेण वर्णनमायुर्वेदेऽन्यत्रापि चोपलभ्यते । अत्र निबंघेऽयं पक्षः सविस्तरं विचार्यते । स्कन्द-विषयिका शिलालेखादिपुरातत्त्वसामग्री चाप्यत्र प्रस्तुता ।

The position of Skanda in Hindu pantheon reached its climax in the classical period of Indian culture and literature which came into existence during the reigns of the Gupta monarchs. With the beginning of this epoch we enter into the most glorious phase of Skanda study. By the period of Kushāṇas Skanda had already achieved an exalted position in the religious hierarchy, and influence of his cult were spreading in different quarters. His Śaiva affinities as well as the persistent efforts of his devout followers like the Yaudheyas had made him the warrior god. He was accepted now as the son of Śiva, one of the two great gods. The epic testimony of an overall recognition given to him from

every quarter and the numerous respects and attributes bestowed on him well anticipates the future of this deity, as the National War-God. From the rank of a folk deity, now he was raised to the status of a national war-god and attained a supreme position almost similar to that enjoyed by Vishnu and Śiva, as seen in the Kumārasambhava of Kālidāsa and the Purānic Literature. Various aspects of the deity and his cult which had their origin earlier are seen in this period further elaborated and emphasised; for this period the evidence from the Purānas and Kāvyas on the one hand and art and archaeology on the other is of vast dimensions in which several strands were mingled in the exaltation of this god. As we could gather also from the early history of Skanda, it is obvious that he, as the son of Śiva, enjoyed only an ancillary position in the Śiva family. But that also helped, no doubt, in so many ways in elevating his position.

#### THE LEGEND OF HIS BIRTH

Details of the Birth-legend of Skanda-Karttikeva were developed considerably in Puranic mythology; and that was done, on the one hand, by applying the ingenious methods of Puranic elaboration, and a restatement in the light of philosophical and vogic disciplines explaining esoterically the so many cult congruties, on the other. So far as the legendary myths and motifs are concerned Puranic writers have faithfully represented the earlier versions of the birth-story of Kumara-Skanda though enhanced with some new motifs, e. g. the demon Taraka and the peacock as his vehicle. But under the influence of various religious and expositional approaches, we have in several of the Puranic accounts, no doubt, dissimilar forms of the story. The legend of Karttikeya is found sung at length in a major number of the Puranas. For example, Linga Purana 1.104.105, Vayu Purāna (ch. 72.24 ff), Matsya Purāna (5.26 ff; chs. 146-160), Siva Purāna (chs. 9-19), Brahmanda Purāna (II. 65; III. 11), Vāmana Purāņa (chs. 57, 58), Siva Mahāpurāņa (2.4, 1-12), Padma Purāna (6.28), Skanda Purāna (1 (i), 20-30, 1 (ii) 20-32). Kalidasa glorified it in the Kumarasambhava "The Birth of

<sup>1.</sup> Mbh. Vanaparva, ch. 218.

Kumāra", which represents the common and standardised version of the story.

The birth of Skanda and his exploits formed part of the mythical motif of the Devāsura conflict going on ceaselessly. In this scheme of the perennial clash between the two opposite principles of good and evil, the demons are portrayed acquiring invincible power and irresistible violence by accumulating psychic energy through a severe regimen of ascetic exercises' and then manacing their opponents, the Devas. This happens from time to time and the same myth of the rise of the devil and of his being vanquished by the gods is repeated again and again, certainly in a new version, forged afresh in a different mould. The motif of the demon Taraka evolved in the Puranas in relation to Skanda and his exploits, as it appears, was an invention of the Gupta period, for we have no piece of evidence from the vast epic literature, art and inscriptions of the pre-Gupta times which refers to Tarakasura and his harassing of gods. In the great epics Skanda had as his rival demon, the Mahishasura, but perhaps only due to his association with Siva and the Goddess.1 But it did not serve the purpose. for the killing of the Mahisha was attributed fully to the Great Goddess as her exploit. Therefore, for Skanda, it appears, a separate demon became necessary that was formulated as the hostile Tarakasura against whom he justified his divine strength.

The short account compiled in the Vayu P. (ch. 72) about the birth of Skanda is similar to that of the epic, both in contents and details, and also appears to be nearer to that of the epic in time. But the myth of Taraka is present in the Vayu which is not to be found in the Mahābhārata. It is clear from the Purana that it was a later development and was yet in a formative stage since it has here only a nominal reference. The Krauncha mount, the first victim of Skanda's valour in the epic, is narrated here as his play-hill, where he killed the demon

<sup>1.</sup> Mbh. 3. 231. 1; see also Sorensen, Mbh, Conc., p. 458.

Tāraka.¹ It was on this hillock that the lions were yoked to Skanda's chariot and he was consecrated to the generalship of the gods.²

According to Matsya Purāṇa (Chs. 146-60) Skanda is a member of Śiva's family and the legend of his birth is closely associated with Śiva and his consort Pārvatī as he is invariably considered their son, though all the legendary details of his birth and rearing are there, of which roots are far-reaching in earlier tradition as analysed above in the epic account. The story is to be found first related synthetically in seven ślokas and then at great length in 1569 verses. In the colophon of chapters 154-58 the story is given the title Kumāra-sambhava which is known best from the epic poem of the same name by Kālidāsa, though the whole "Kāvya" in the Purāṇa is styled as Skanda-charita. The whole saga of the marriage of Śiva and Pārvatī has been brought into the picture of the birth of Skanda and sung both in the Purāṇas and by Kālidāsa in a sublime style.

The principal motif of the story according to the Matsya Purāna itself is as follows:

The Devas being worsted by the demon Tāraka, son of Vajrāṅga Daitya, repaired to Brahmā who assured them and said, "Give up your fear. The son of Śiva born from the Daughter of the Mountain Himālaya will slay the demon." Then after the lapse of some time Śiva became infatuated with the beauty of Pārvatī and he allowed his semen to fall in the mouth of Agni, who became the second mother in the birth of Kumāra. The seed of Śiva thus ejaculated in the mouth of Agni pleased the Devas abiding in his body. But they could not digest it and so the seed ripped open their bellies and fell in the river Gaṅgā and then in a grove of the Sara weeds. From there he was born as Guha, appearing resplendent like Sūrya. When the boy was only seven days old he killed the Asura Tāraka.<sup>4</sup>

<sup>1.</sup> Cp. Vāmana Purāņa, ch. 58; Agrawala, V.S., Vāmana Purāņa—a study, p. 117.

<sup>2.</sup> Patil, Cultural History from the Vayu Purana, p. 63.

<sup>3.</sup> Agrawala, V. S., Matsya Purāņa — A study, p. 237. 4. Ibid.

In the elaborate version of the story the agency of the six Krittikas is also recognised who drank the fecund water ejected by the gods and again offered that to Parvati who conceived and gave birth to the Babe from her right side.

Skanda was born as a boy with six heads and he held a Sakti. He was named Kumāra, for he was destined to kill (māra) the evil Asura (ku). As the son of the six Pleiades he was Karttikeya and since the Krittikas were united in a single branch (Sākhā) he got another name Višākha. On the day of shashthī when only six days old he was anointed as Lord Guha by all the gods headed by Brahma, Indra and Vishnu. Indra gave him his daughter Devasenā in marriage. Tvashtā presented him a toy as Kukkuta. Thus appointed in the office the generalissims the divine army he was praised by all the gods with a stotra. And, on the seventh day in a long and trying battle the Asura was slain by Guha Mahāsena.

As in the Epic, so in the Puranas, with usual inconsistencies of detail, Skanda is described as the son of Uma or Parvatī, though he was not born from the womb of her. At the same time he is the offspring of the Krittikas, who either bore him as their child and delivered him separately into six forms or came later on the scene breastfed the uncared babe who by his intrinsic power divided himself into six forms and suck them as his mothers satisfying each one of them at the same time. His mother is Gangā into which the dissipeted retas of Rudra was thrown by Agni, and it was only due to Uma's curse that she had to bear the Agni's garbha1.

Now, Siva-Rudra is his recognised father with whose cult his worship got associated. Besides, the early motif of his sonship attributed the Agni is not altogether forgotten. In several passages he is a son of Agni through Svaha. He is son of Paśupati and Svaha, but clearly it is said by the learned that the god Paśupati has Fire as his self (vahnyātmā).3 According

<sup>1.</sup> Matsya P. 135.79.

<sup>2.</sup> Vāyu 27.53; Matsya 135.79; Bhaga. VI. 6.14.

<sup>3.</sup> Linga P. II. 13. 7-8.

to Vāmana-Purāṇa¹ as the story explains, it was originally the semen of Rudra-Śiva which Agni had to take within himself and roamed about for five thousand years suffering with its intense heat. And, this happened by way of a curse which Agni had got in punishment from Pārvatī for his act of peering while she was with her husband.² The Matsya Purāṇa in a humourous tone says that the energy of Śiva received by fire really entered the belly of all the gods because Agni is the mouth of the gods, and from their being undigested exploded out in the form of a pool of water.

The "Story of Agni" is described in several of the early Purāṇas perhaps following the lines of the Mahābhārata chapter entitled Agnivamsa," but it does not include the legend of the birth of Agni's son Skanda as we see it in the great epic. No doubt, in the Vishṇu Purāṇa, he is described as son of Agni being born in the reed forest. However, the birth of Skanda is felicitated by the gods with joyous hearts for he is born for their welfare and as their saviour from the demon harassment. It was heralded by divine musicians, Siddhas, Chāraṇas, Yakshas, Kinnaras and others. All the gods praised him with a hymn and he was appointed as the commander-in-chief of the divine forces by Indra, Brahmā and Vishṇu, or by Brahmā and Rudra, or allegorically Indra married to him his daughter Devasenā. Vishṇu presented to him a fowl and a peacock, Sarasvatī the lute, Brahmā a goat and Śiva a ram.

However, the origin of Kumāra has been described in a mystic language at several places in the Purāṇas. It is stated in the Matsya Purāṇa (154. 52-3) that from the union of Śiva and Pārvatī Skanda was born like Fire from the two churning sticks (araṇē).

As observed by one scholar: "An allegorical interpretation of the birth of Karttikeya is given in another Purana (Varaha P. 25.

<sup>1.</sup> Ch. 57; Agrawala, loc. cit., p. 108.

<sup>2.</sup> Brahma P. II. 10.27.

<sup>3.</sup> Brahmanda II. ch. 12; Matsya ch. 51.

<sup>4.</sup> I. 15, 115-6.

1-43): Vishnu who is identified with Siva is Purusha. Uma, who is no other than Śrī is Avyakta or Pārvatī. From their union was produced Ahamkara, and this was Karttikeya...The Purāņas also mention that Brahmā and Vishņu were born respectively as Heramba and Shadanana, thereby suggesting the identity of Karttikeya with Vishnu".1 In fact, he is reckoned as an avatāra of Hari or Vishņu in the Bhāgavata Purāņa (XI. 4. 17).

Kumāro navamah sargah (Kumāra is the ninth creation).

In the Sarga-pratisarga sheeme of the Purāņas, Kumāra is described as the Ninth (navam) Sarga (creation),2 which is both natural (prākrita) and created (vaikrita). This doctrine, as connected quite often in the Puranas with the crying of the hungry Kumāra Nīlalohita or Rudra for a name,8 appears to be a purposive development, retaining the ancient terminology, of the "Kumāra-vidyā" which is original to the Satapatha Brāhmana (6. 2. 1. 1-20).

Though at several places references to Karttikeya are made, but the legend of this god has hardly been given importance in the earlier Purānas like the Vishņu, Linga and Mārkandeya. Perhaps the earliest Puranic version of the story is to be found in the Vishnu Dharmottara Purāna, which is almost the same as preserved in the epic. It nowhere does refer to the Tarakavadha, a motif which is a later evolution, dating not earlier than 300 A. D., and which is sung in such a sublime way by Kalidasa (about 400 A. D.). In this Purana similar to the epic, the god is accredited with the disrupting of Krauncha hill, still are caused

<sup>1.</sup> Kurukal, K. K. "A study of the Karttikeya cult as reflected in the Epic and the Puranas, "University of Ceylon Review, October 1961, p. 132.

<sup>2.</sup> Vāyu. 6. 65; Vishnu 1. 5. 25; Garuda 1. 4. 18; for other references see Kirfel, Das Purana Panchalakshana, p. 23.

<sup>3.</sup> Linga 11. 18. 18 (also 1. 1.); Vāyu 27. 1-53; Vishņu 1. 8. 1-12; Brahmanda II. ch. 10.

<sup>4.</sup> As has been dated by Hazra, Vishnu P. between A. D. 100 and 550, Linga P. in its present 600 A. D., but was an early Purana, Markandeya P., major portion about 200 A. D. See his Puranic records on the Hindu rites and customs, pp. 19-26, 93-6, 8-13.

horrors in the heart of Mahisha-demon by the birth of Skanda (I. 95. 26) who was, as has been pointed out earlier, the archenemy demon of Siva family.

We find in the Linga Purana (I. 170. 120-123) a description of Karttikeya's dance and childish sports and activities as a sourse for the filial joy of the divine couple. As a sporting boy, resplendent like the Sun, the six-headed son is described by the goddess Parvatī as shining with various ornaments. Mahādeva himself, asks Skanda to show them his dance and then they became pleased with the boyish pranks (lalas) of his son. Kalidasa has also given a narration of some typical childish activities of Skanda enjoyed by the divine parents.

Here we may point out that this aspect of the boy god got much elaboration in the Tamil land where worshippers of Subrahmanya have a living faith in this aspect and are fond of his bāla līlās even now.

The worship of Skanda as Murugan in south India is traced back by some scholars to very olden times. How ever, in the present state of our knowledge, it can not be taken much earlier than the beginning of the christian era. Seyon (red complexioned) perhaps the oldest name of the god Murugan is sung in the old Tamil hymns as the deity of the hilly region. His spouse Vallī herself is a hill girl from the hill tribe or the kuravas. He bears vel or spear and so is named velan. His worship, it is believed, consisted of simple folk offering of flowers etc. and votaries danced and sang to propitiate him.2

One specimen of the beautiful songs sung by the hill women in honour of Murugan is preserved in the old Sangam epic, silappadikaram (c. 200 A. D.). He is lord of the hills and is prayed to the accompaniment of singing and dancing by girls so that they might be married.

"This is indeed the spear wielded by the deity who naver deserts the mighty renowned chendil, chengodu, the white hill and

<sup>1.</sup> Sastri, K. A. N. Development of Religion in south India, p. 21

<sup>2.</sup> venkataraman, "Skand Cult in South India," the cultral Heritage of India, Vol. IV, p. 309

Eakam—the white, shining, leaf shaped spear, which put an end to (the asura) Śūra (in the form of a) mango-tree, in olden days, by chasing him in to the sea surrounding the earth.

"O! This is indeed the spear held aloft by the matchless deity with six faces and twelve arms, this is the shining spear wherewith (the god) riding the peacock (or elephant) and celebrated by the kings of the celestials, vanquished the Asura enemees and destroyed their greatness.

"O! This is indeed the spear decorating the lovely hands of him who was suckled by six mothers in the lotus bed of the Saravanai pool, this is the long spear that destroyed the Krauncha mountain, after cleaving the breast of the Asura who had that hill for his residence."

The god is described riding on a peacock with him consort vall the beautiful daughter of the mountain folk who has a crescent like forehead of the peacock's hue.<sup>2</sup> He is the son of the god of the kailāsa hill and Pārvati.<sup>3</sup> His long lance is red like fire.<sup>3</sup> or fiery in itself,<sup>5</sup> as he himself is of red complexion.<sup>6</sup> The temple dedicated is distinguished by the cock flung on its top.<sup>7</sup> In the epic are attributed to him the dances tudikkuttu and kudaikūttu the drum dance and the umbrella dance respectively. He danced "the tudi dance in the midst of the sea, which itself served as the dancing hall, following the destruction of the demon Sura who hid himself there", and "the kudai lowering the umbrella before the Asuras who gave up their arm is great distress".<sup>8</sup>

The Tolkoppiyam (Ahanānīru, sūtra 5) portrays him as the tutelary deity of the hillmen. In praise of his glory are sung the late Sangam works like the Tirumurugārruppaḍai and onefourth of the Paripāḍal<sup>9</sup>. Nakkinar, the poet who sang the Tirumurugārruppaḍai tells us how Kuruva girl on the hill side planted a cock banner smeared with ghee and mustard oil, offered to the god garlands of red oleander and green leaves, burnt incense, made

<sup>1.</sup> Dikshitar, Silappadikaram, English trans. pp. 272-8.

<sup>2,</sup> Ibid. p. 280. 3. Ibid. 4. Ibid. p. 94. 5. Ibid. 270

<sup>6.</sup> Ibid. p. 117. 7. Ibid. p. 199.

<sup>8.</sup> Ibid. pp. 124-5.

<sup>9.</sup> Ibid. p. 89 fn. 3.

oblations of balls of cooked rice mixed with goat's blood and danced to the tune of sweet melodies. Elsewhere, the poet tells that Brahmanas who strictly followed the six duties and the codes of dharma and tended the sacred fires, worshipped Skanda with flowers chanting holy mantras1".

It appears, Murugan was a popular hill god, perhaps supreme among the deities of the Kurava and Vedda people of the non-Arvan section of the Tamila land. His cult became identified with that of Skanda of similar nature and associations. It is not far from the truth, that this blending was, if not complete. partly understood by the time of the author of the Silappadikaram, i.e. c. 2nd century A.D. The certain features inherited from the cult of the hill tract deity were new to the already prevailing worship of Skanda in the Pallava and Ikshvaku areas. Some important new features may be pointed out as follows: (1) the Kumāra or bachelor god whose marriage was allegorically conceived with Devasena has as Murugan the beautiful wife Valli, a hill girl herself; (2) his flag or banner got no doubt the figure of a cock, and as we now, the god in iconography of the early period is shown both in the north and in Andhra holding a fowl in his hand. But he got as his vehicle a peacock and also the "gem-like" peacock flag.

In old Tamil works of the Sangam age he is portrayed with the peacock (or elephant) as his mount. As we have seen, the association of the peacock with the god is traceable as early as the Silppadikaram3

The goddess Kottavi the Tamil Mother Goddess is described in the Pattupaddu4 as dancing in the battle field with her son Murugan; who is given such other names in the Silappadikaram as Kumarī, Gaurī etc.,5 and who is portrayed as "the maid of the aborigines" to whom oblations of balls, dolls, peacocks and wild fowls were considered sacred.6

- 1. Venkataraman, op. cit. p. 309.
- 2. Ibid. p. 110.
- 3. Supra, p.
- 4. Karamarkrr, Religions of India, p. 105.
- 5. Dikshitar, op. cit. p. 183.
- 6. Jnana Prakasar, The Siddhanta Saivism, p. 99-100.

The mountain region is dear to the red complexioned Murugan (Tolkappiyam, Ah. 5) which is known as Kuruñji. The commentator of the Tolkappiyam Naccinar Kinijar refers to the worship of Murugan. He observes, in the Kuruñji region and Kuravas (or the dwellers of the forest region) and others are found to offer several oblations in the sacrifice to the Red god''. He rides now on an elephant, now on a goat, or again on a peacock (Paṭṭupaddu IV. 75). His banner has a wild fowl for its device (Paṭṭupaddu, VI. 31).

A vivid description of the orgies in honour of the god Murugan is found in the Pattupaddu (I.220-49). "A shed is put up and is adorned with garlands and flowers. High above it is hoisted Murugan's flag bearing the wild fowl's device, to scare away, as the commentator suggests, blood-thirsty goblins from the feast. His priest who bears his favourite weapon Vel or javeline and who is therefore known as Velan (the name of god also) has a red thread round his wrist probably as a sign of consecration to the deity. He worships at the altar and uttering spells and inchantations scatters flowers, and fried paddy on all sides. He then slaughters a fat bull, and in its warm blood mixes boiled rice and offers it to the god amidst blare of horns, bells and drums, while the perfumes of incense and flowers fill the place. Today. of course, it forms an integral part of the service whose characteristic name is veri-addu, drunken revelry. The Velan as well as the women present begin to dance to the frantic songs of the assistance. And some one in the company—it is usually the Velan becomes possessed by the deity and jumps and snorts giving out at the same time oracles as regards the fortunes of the by-stander. These sacrifices to Murugan seem to have been very prevalent in the South of India in ancient times; so much so that all sacrifices have come to be known by the name Murugu. (Pattupaddu VI.38). The modern devil dance of the villager is but a repetition of the veri-addu of the ancient days."2

One more feature of the Puranic Skandism should be emphasised here. As we have often is the vehicle as well as

<sup>1.</sup> Karamarkar, op. cit. p. 134.

<sup>2.</sup> Jnana Prakasar, op. cit. p. 118

the ensign of the god. In the sculptures of the Kushāṇa period Skanda is portrayed with his favourite bird invariabbl a cock, and the same is to be found on coins connected with the deity. This fact, corroborated both from literature and art is no doubt of utmost value. It helps not only together with the other myth of Tāraka in dating the epic 'Skandopākhyāna' in early Kushāṇa period but points to one more thing that the myth of peacock in place of cock was a Purāṇic development already well established in the time of Kālidāsa who wrote Mayūraprishthāsrayiṇā guhena and Kumāragupta issuing his peacock type coins, and also the several 4-5th century Gupta images of Kārttikeya.

While this feature was a new but well accepted phenomenon in the Gupta period it is conspicuous by its absence in the Kushāṇa age. It was assimilated presumably somewhere in between these two periods, to wit, during about the 2nd and third century A. D. Fortunately on some sculptural evidence offered by an late Kushāṇa image of Agni from Sarnath and the Lal Bhagat Pillar, it is possible to study this evolution more clearly from the view point of chronology.

However, it appears that this additional myth of peacock was one of the results of the complete identification Skanda-Kumāra Kārttikeya of the Aryans and Seyon-Murugan of the Tamils. No doubt, in south also the position of cock was no less established as the sacred bird to and the banner device of the deity but Murugan had adopted the pea fowl as his mounts, it appears through his spouse Vallī, the hill girl fond of peacock's feathure.

From the evidence available in the Sangam texts and also the Purāṇas it is, however apparent that the cults Kumāra-Skanda of the North and Seyon-Murugan of the Tamil country had already mingled and the different mytes and legends of them both were accepted, by each other in some form or the other. While in the Tamil country on one hand the entire legendary mythology of Northern Skanda was fully accepted, in the north in Purāṇic Skandism several trait of Tamilian origin and tradition were

absorbed. For example, in the Silappadhikaram, Murugan is son of Siva and Pārvatī, six faced, twelve-armed etc. In the same way, we have in the Purāṇas associated with Skanda, Vallī as his consort and peacock as his mount.

#### ETYMOLOGY OF HIS NAMES

In the Purāṇas, at several place we find attempts to offer etymological explanations of Skanda's various names of which apparently some are obscure ones and the derivations given appear to be rather forced. They say, "since he was destined to kill  $(m\bar{a}ra)$  the evil (ku), he became Kumara". The ascetics enshrined him or his dhyāna in their heart, so he got the name Guha  $((V\bar{a}mana\ P. 58.\ 1-121).$ 

As he vanquished the demons, he was named Skanda. Or, since the six bodies born separately from the six Krittikās were ultimately joined together as one god (Skanda), he became Skanda (Brahmānda (I) III. 10.40-51). He was born from the dissipated (skanna) energy of Śiva, so also the name Skanda was appropriately given to him (Vāmana 57.3). The six Krittikās united in a single śākhā, and therefore he as their son was known by the two names Kārttikeya and Viśākha (Matsya 159.2-3). At the time of his very birth, it was pointed out, according to the Vāmana Purāṇa, by Śiva that he will be known by several names of Kārttikeya, Kumāra, Skanda, Guha Mahāsena and Sārasvata as the offspring of the Kritikās, Kuṭilā, Gaurī, Śiva, Hutāśana and Śaravaṇa respectively (57. 43-45).

Among his other epithets which evidently reflect the various features of his character and Purāṇic personality, are Śarajanmā or Śaravaṇabhava, Gāṅgeya, Shaṇmātura, Bāhubhya, Shaṇmukha or Shaḍānana, Agnibhū or Pāvaki, Devasenāpati, Mahāsena, Śaktidhara, Śikhivāhana, Tārakāri, etc. These names and epithets are repeated often in the Purāṇas and Kāvyas.

<sup>1.</sup> Dikshitar, op. cit. pp. 94, 117, 278-80.

<sup>2.</sup> For example Siva Purana, Kailasa Sam. 7.40, 64.

<sup>3.</sup> Agrawala, Matsya-Purana a study, p. 246.

<sup>4.</sup> स्किन्दितो दानवगराः तस्मात् स्किन्दः प्रतापवान्, Brahmāṇḍa (I) III. 10. 43; देवारिस्किन्दन। स्किन्दा, Brahmāṇḍa (I) III. 10. 51.

A list of usual and curious names we get in the stotra of the god. Such a prayer marked with pleasing words is to be found twice in the Skanda Purāṇa, once uttered by the mountains (I (2) 31.80ff.) and on other occasion by the sage Agastya (IV. 25). For other short prayers see Vishṇu dharmottara Purāṇa, (I. 95. 25-6; I. 233.4-12; 156.7-9; III. 218.30-32).

The important conception about the personality of the god was, as stated by Kālidāsa, that he represented the energy (tejaḥ) of Rudra as deposited in the mouth of Fire, more resplendent than sun (atyādityam hutavahamukhe sambhritam taddhi tejaḥ, Megh. I. 43). It has been emphasised repeatedly in the Purāṇas, and they describe the form of the either equal in glory to the Sun (Vāyu, ch. 72), or not comparable even to the brilliance of the Suu (Padma 1. 460).

There developed a "vyūha" of the four Skanda gods. In the Linga Purāṇa Śiva is described surrounded by his four divine sons, Naigameyādi (I. 82. 16). The Vishṇu Purāṇa (I. 15. 115-16), has enumerated the myth of the origin of Śākha, Viśākha and Naigameya. His fourfold forms, among which he himself is counted as one, are known as his brothers (Vāyu 66. 24) or sons (Bhāga. 6. 14). But in the Vishṇu dharmottara Purāṇa they are mentioned as Chaturmūrti or Chaturātmā of Kumāra or Skanda which are Kumāra, Skanda, Viśākha and Guha. Their form (rūpa) is described as follows:

"Kumāra should be made with four faces, and adorned with a tuft of hair (śikhanḍaka). He should wear red garment and ride his peacock. In his right hands should be shown a cock and a bell, and in the left ones the Vaijayantī banner and a spear (śakti).

"Skanda, Viśākha and Guha should be made like Kumāra but with a difference that they do not possess six faces and do not ride pecocks. "It is the God Vāsudeva who has become Kumāra in order to lead the army of gods."

As such, Skanda with his four transformations was the lord or presiding deity of the Graha, i. e. asterisms causing suffering to children. All these four, as already seen, were originally low-ranking deities, considered in popular belief as harassing the new born babe and its mother, and when propitiated as acting their protector. It is believed that they exercise their influence for evil with demonic practices upto certain stage in the life of a child and thereafter being pleased for good. They are known as Skandagrahas with their four leaders (V. D. P. II. 22. 88), and the only way to get rid of their ill effects was the bali-offering to them, and their archana (i.e. worship) on the Shashthi day. As stated in the Vishnudharmottara Purana (II. chs. 231-34), Indra with an intension to kill the new born matchless hero, produced a host of mahāgrahas, many thousand in number and provided with different weapons. They at the order of their originator went to the Sveta mountain to kill Skanda, but were subdued by other similar imps and demons created by Skanda. The latter group is described as greatly powerful, vigorous, moving at free will and assuming any form. Their leaders are Skanda, Viśākha and Naigameya, with others of which a long list of names is given in the Purana. Both of the hordes, earlier created by Indra and the latter by Skanda himself, became subservient to god Skanda and were allowed by him to take shelter in the bodies of impure and wrong doing persons. Further in the same Purāna signs of a seized person (grahagrihīta) and also the eradicatory measures to be followed for remedy are enumerated at length in four chapters.

VD. P. III. 71. 3-4.

<sup>1.</sup> kumārah shanmukhah kāryo sihandakavibhūshanah | raktāmbaradharah kāryo mayūravaravāhanah | |4|| kukkutascha tathā ghantā tasya dakhinahastayoh | patākā vaijayantī cha saktih kārya cha vāmayoh ||5|| skando visākhascha guhah kartavyāscha kumāravat | shanmukhāste na kartavyā na mayūragatāstathā ||6|| chatu ātmā hi bhagavān vāsudevah sanātanah | prādurbhūtah kumārastu devasenāninīshayā ||7||

The subject of the grahas and remedy against their infliction was no doubt of practical importance and as such included in the Ayurveda Samhitās. As an aspect of Skanda cult this evidence is invaluable for our study and throws ample light on the popular worship and beliefs associated with the god. Originally a goblin deity (graha) Skanda was elevated to the rank of a major god in the pantheon. Bhūtavidyā, also differently called Grahavidyā is a necessary chapter to be found in the Samhitās of Ayurveda. This Chapter is available in the Charaka Samhitā¹ and various aspects of the beliefs and practices have found their mentions already in the Sūtras and the epic. The evidence of the Suśruta Samhitā in which the subject gets some greater attention, is similar in contents to that of the Mahābhārata material.²

The Suśruta S. gives a list of male and female grahas with the names of Revatī, Pūtanā, Śakuni and Naigamesha which also occur in the epic. According to the Ashṭāṅga Saṅgraha Śiva produced twelve grahas for the help of Skanda among whom the five were male and the seven were females.

The worship of Skanda and his grahas and 'mothers' was no doubt an important cult affecting domestic life in the various periods and even survive today in the form of Shashṭhā-pūjana etc. after the birth of a child.

Curiously enough the Bhūtavidyā is mentioned in the Chhāndogya Upanishad<sup>5</sup> in a list of lores already known to Nārada when he asked Sanatkumāra for spiritual instructions. Tradition is continuously found in the literature recording Skanda-Sanatkumāra as a teacher of Āyurveda. The fifth division of the Ashṭāṅga Āyurveda is named Kuamārabhritya, also called Bāla. It deals with the medical treatment of children and causes of their diseases including evil planetory or graha influences. Under this Tantra were included all the diseases and cures, offerings and charms

<sup>1.</sup> Agrawala, V. S.: Prachin bhartiya lokadharma, pp. 51-2.

<sup>2.</sup> Ibid. pp. 52 ff.

<sup>3.</sup> Ibid.

<sup>4.</sup> Ibid. p. 51.

<sup>5.</sup> Chh. Up. 7. 26. 2.

covering the entire field from the conception to birth and upbringing of human progeny.¹ In ancient texts on medicine where this subject is dealt with we get a long list of male and female demonic spirites who tortured the mother and the base, and also an elaborate discussion about the remedial measures (upachāras) which in this connection are given a special name of abhichāra.

The Kāśyapa Samhitā is the most important text in this connection, dated about fifth century A. D. Its detailed evidence is fully corroborated by that of the Purāṇas. In the Mahābhārata, Devasenā is identified with eight goddesses as Shashṭhī, Lakshmī etc. The Kāśyapa Samhitā takes that myth further and records that the god Guha himself said to Revatī that she will be known by many names. Vāruṇī, Revatī, Brāhmī, Kumārī, Bahuputrikā, Sushkā, Shashṭhī, Yamikā, Dharaṇī, Mukhamaṇḍikā, Śītavatī, Mātā, Kandū, Pūtanā, Niruūchikā, Rodanī, Bhūtamātā, Lokamātā, Mahī, Saraṇyu and Puṇyakīrti were her twenty famous names (nāmāni tava vinišatiḥ).

It appears that these goddess name whose worship was in vogue at some time became identified with one Revatī which comes before us the most prominent goddess in the Revatī-kalpa of the Kāšyapa Samhitā, but as none else than Shashṭhī herself.

The name Shashthī appears to be the personification of the 'sixth' day after the child birth, and whatever goddesses whose favour was sought on this particular day for the new born one were firstly associated and then identified as the Shashthī goddess. Their association with Skanda from earliest times was quite in fitness of things as he represented the host of such wicked male siezers and afflictions.

A flood of light is offered in this question by this particular text (Revatī kalpa chapter). It shows that Revatī had become the most powerful goddess in this age and attained the status of the Great mother with whom all the tutelary female divinities came to be identified as her different forms. She combined in her

<sup>1.</sup> Suram Chandra, Ayurveda kā îtihāsa, Vol. 3. p. 107.

<sup>2. 3. 218. 49;</sup> Hopkins, Epic Mythology, p. 229.

<sup>3.</sup> Pt. Hemarāja's ed., p. 67.

all the qualities and activities of the great mother, those of bestowing, fostering and destroying life of the humyn kind. As can be gathered from the Kalpa in her name, we get the culmination of the idea. She is here the highest goddess, Goddess in Essence, with whom other little goddesses get submerged and become identical. But they all are of evil character and notably concerned with infant diseases.

Revatī is of numerous forms (bahu-rūpā). The author of the Revatī kalpa, "Scripture of Revatī" attacking foetus of the mankind. When the battle between the Devas and Asuras was going on a certain demon Dīrghajihvī, of a long tongue, began to destroy the divine army. The Gods prayed to Skanda for help who sent Revatī The latter assuming the form of a she-wolf (sālāvrikī) not only devoured Dīrghajihvī but also as a Šakunī caused destruction of the demon army. The Asuras took shelter in the garbhas of human and other kinds. But they did not remain unknown to Revatī and she in order to destroy them became Jātahārinī. And thus, she attacks in search of the demons the human progeny in its successive stages right from conception to birth. Particularly she attacks children of those who do not follow dharma.

She has many forms (bahurūpā) and is known under such name, Jātahāriṇī, Revatī, Pilipichchhikā, Aindrī, and Vāruṇī. At the command of Skanda she stupifies all the impious persons of different castes and kills the wicked ones. The text describes in detail the impurities and wrong practices when does Jātahāriṇī get opportunity to seize (sajjate) and attack.

Obviously, Jātahāriņī is a general term. All the goddesses who carry away the born one (jāta) are to be named Jātahāriņī. Such Jātahāriņī devīs are classified under three categories on the basis of their sādhya, (curable) yāpya (lingering) and asādhya (incurable) nature. In the first group are Sushkā Revatī, Kaṭambharā, Pushpaghnā, Vikuṭā, Pariśrutā, Aṇḍaghnī, Durdharā, Kālarātri, Mohinī, Stambhanī, Krośanā, under whose possession mothers do not die. Nākinī, Piśāchī, Yakshī, Āsurī, Kālī, Vāruņī,

Shashthī, Bhīrukā, Yāmyā, Mātangī, Bhadrakālī, Rudrā, Vardhikā, Chandikā, Kapālamālinī and Pilapichchhikā are of the yāpya Vaśyā Kulakshayakarī, Pushyajanī, Paurushādinī, Sandamsī, Karkotakī, Indrabadavā and Badavāmukhī are of the third asadhya category.

But all are Revatīs. They are also grouped according to the three stages of a child, in the womb, after birth and under upbringing. On the basis of popular differences (lokabheda), again, Revatī was of three types, Divine, Human and Tiraschīna (i.e. of birds). No doubt, these were the numerous goddesses actually worshipped in some way or the other by the people.

The Jataharini devis were further divided in view of the castes and classes. Each social class had its own deity, named after that. No less than twentynine such are listed in the Kalpa. Various professional groups also had their own goddess. For example, the Jataharini of the carpenters was called Takshini Ten such names are given:—(1) Ayaskarī, of ironsmiths, (2) Takshinī, (3) Kulālī, of patters (4) Padakarī, of coblers etc.

Jataharini or Shashthi assimilated in herself all the folk goddesses concerning the diseases of mother and child on the one hand, Skanda became the chief of evil grahas of infants, on the other. An elevation in his status made it due that all the goddesses and deities of similar nature were subordinated under him and his pantheon.

Bana also makes important mention about Shashthi and Kārttikeya in the Kādambarī. "Describing the birth ceremonies of Chandrapida he refers to the making of a figure of Shashthidevī wearing yellow clothes dyed with tumeric; he also describes side by side the installation of a figure of Karttikeya holding a spear and riding on a peacock2". She is called Jātamātridevī in the Harshacharita and Bahuputrika in the Kadambari, who is

<sup>1.</sup> Sec. 64.

<sup>2.</sup> Agrawala, "Goddess Shashthi on the Yaudheya coins," J.N.S.I., Vol. V, pt. II, p. 4.

<sup>3.</sup> ch. 4, p. 129 (Nirnayasagar ed.).

<sup>4.</sup> Sec. 64.

<sup>20</sup> 

none else than Shashṭhī herself is made clear by the *Tilakamañjarī* where Shashṭhi is described as painted on a *jātamatripatala* (tablet of Jātamāṭri)¹. In the latter text she is also named Āryavriddhā² whose worship was invariably performed in the *sūtikāgriha* after the birth of a child.

Amongst the sixtyfour Yoginīs, Vidālī, Revatī and Pūtanā etc. are enumerated (Agni P. 52.8). According to the Agni Purāṇa (50.27) by the side of Skanda image Sumukhī and Vidālākshī are to be placed. We have the full-fledged Shashṭhīdevī Upākhyāna in the Devībhāgavata Purāṇa (IX. 46), wherein her various forms and aspects of worship are described. It says that since she is the sixth part of Prakṛiti, she is known as Shashṭhī. She is the presiding deity of children and famous among the mothers as Devasenā. She is spouse to Skanda and grants progeny to childless persons. On the sixth day after child birth her worship should be performed in the sūtikagriha itself.3

According to the KāśyapaSamhitā, the gods during their battle with the demons had to seek Skand's help. The latter aquiring their boons became dominant over all the Vasus, Rudras and Ādityas. As the text says originally the Vasus were seven, but became eight including Skanda in the form of Dhruva the eighth. Similarly, the number of the Rudras, formerly only ten, became eleven with the eleventh one as Guha Śamkara. In the list of the twelve Āditya gods one more was added. That was Skanda himself as Ahaspati<sup>4</sup>.

The "vyūha" or parivāra of the four Skanda deities developed, according to the Kāiyapa Sainhitā, through a simple process. Of the four brothers, Nandikeśvara became the fifth, and Shashṭhī the sixth as their sister. Sometimes Rudra also joined this group as the seventh. In their figures invariably a crescent should be shown on the head. But no where else this point is repeated and we find also no support of this iconographic trait from sculptures or coins. According to the Vishnudharmottara Purāṇa

<sup>1.</sup> Nirnayasagar ed. p. 77.

<sup>2.</sup> Cp. Mbh. III. 220. 16, where Āryā and Vriddhikā occur.

<sup>3.</sup> See also Bhavishya P. I. chs. 39-44; II. ch. 42.

<sup>4.</sup> Kāsyapa S., Hemarāja ed., p. 5. Ibid. p. 67.

where the Chaturmurti conception is explained, the figures of Kumāra gods are described to bear different attributes and poses.

#### SOME OTHER ASPECTS:

On the Akshaya Shashthī day i; e. the sixth day of Bhādrapada the vow of Skanda-Shashthī is observed (Agni 181.2). A similar injunction is made about the Chaitra Shashthī when Skanda should be worshipped with particular attention. The month of Karttika is also considered specially sacred to god Kārttikeya.2 The Vishnudharmottara Purāna prescribes a certain worship called Kumārarocha following which the person obtains children.3

Temples dedicated to Skanda are described not fit for night stay by a treveller.4 A Kumāra tīrtha is known from the Brahma Purāna. 5 Sacred to him are also Kumāradhārā and Svāmīpushkarinī.6 After the Pradakshinā of Śrīgiri, Agastya with his wife visited Skanda-vana. There he saw Skanda himself, and paid his homage to him with a prayer. Kālidāsa in the Meghadūta, describes the Devagiri hill as the permanent abode of Skanda.7 A Skanda tīrtha is at the Narmadā.8

A certain jewel (mani), pose (mudra), pillar and part of the chariot13 are also said to be named after Skanda.

He is said to be the father of Viśākha<sup>18</sup> and others, and the presiding deity of the Angaraka graha.14 He is lord of Nirritis, 15 who are in the habit of kidnapping children. Skandin is a piśacha gana, naked and with hanging hair, eating the leavings of others. 16 Similar are the names Skandika, Kumāras, etc. who all were considered subordinate to Skanda.17

- 1. VD P. III. 221. 54.
- 3. Ibid. III. 223. 18.
- 5. Brahma P.
- 7. Kumāra. 1. 42.
- 9. VD. P. II. 109. 63
- 11. Manasara 15. 19-23.
- 13. Bhāga. 6. 14; Vishņu P. I. 8. 11.
- 14. Matsya P. 93. 13; Brahma P. II. 74. 48, 26. 33.
- 15. Bhaga 6. 14; Vishnu P. I. 8. 11.
- 16. Br. P. III. 41. 17, and 52; 59. 14; Patil, ap. cit. p. 63.
- 17. Br. P. III. 7. 380

- 2. Ibid. II. ch. 96.
- 4. Ibid. II. 94. 2.

12. VD. P. III. 22. 7.

- 6. Skanda P. 2 (101; 2 (I) 12.
- 8. Matsya P. 191. 50-51.
- 10. Ibid. III. 33. 19-20.

A temple of Karttikeva at Paundravardhana in the Gauda country finds mention in the Rajatarangini. It is stated that when the Kashmiriking Jayapida reached there in the temple a performance of music and dance was being performed attraced by which he stopped there. The Agni Purāna enjoins that a shrine of Guha should be erected in the northern sector of a town. As the story records, it was in his own temple that the god Karttikeya appeared and revealed to his devotee the Katantra Grammar.3 Apparently these references show that in this period temples dedicated to Skanda formed a cultural centre for learning and various śāsric arts.

It is stated that Skanda followed Pāśupata Dharma.4 He is portrayed as the best of the Brahma-knowers and adored by the Brāhmaṇas.<sup>5</sup> This ideology seems to be the result of Skanda and Sanatkumāra identificatiou which is traced as early as the Chhāndogya Upanishad and repeated with evolved emplications in the epic and Puranas. It was given a curious turn in later period and in sculpture Skanda figures even as the teacher of Siva. He is depicted as imparting the Brahma-knowledge to his father of which the earliest plastic representation is at Ellora.6 The Kathāsaritsāgara mentions a Brāhmana named Vyādi as worshipping Syāmī Kumāra for obtaining knowledge (vidyā). Similarly the Brahmana named Varsha, who was a dullard in the beginning, obtained all branches of knowledge from Skanda after propitiating the god with his penance.8 According to a story related in this text, Kātantra system of Sanskrit grammar was traditionally known as originating from the six mouths of Karttikeva. The story says that Skanda himself appeared before Sarvavarman. minister of a Sātavāhana king, and revealed to him the knowledge of a new grammar characteristic for its easy method and simplicity.

<sup>1.</sup> IV. 423.

<sup>2.</sup> Agni p. 39. 12 see Banerjea op. cit. p. 338.

<sup>3.</sup> Kathasaritsagara I. 2- 44-61.

<sup>4.</sup> Skanda P. I (1). 7. 43, dharmah pasupatah sreshthah skandena paripalitah.

<sup>5.</sup> Matsya Purana 185, 2-4.

<sup>6.</sup> Rao, Hindu Iconography, Vol. II, part 1, pl. c, 3.50.

<sup>7.</sup> Kathasarit, I. 2. 44.

<sup>8.</sup> Ibid. I. 2. 60-61 & 79.

As the god himself indicated because of its brevity (svalpatantra) it became famous as Kātantra. Its second name was Kālāpaka or Kālā pa after the plumage of Skanda's peacock. During the Gupta times the Kālāpa system was a big rival to that of Pānini as indicated in the drama Padmaprābhritakam of the Chaturbhānī, and also in the Sarvavarma legend itself. This was a system having preserved much of the material and terminology of the older Aindra School.

#### SKANDA AS SURYA'S ATTENDANT

According to the Bhavishya Purāna, on the left side Sūrya there stands Skanda who is lord of the all worlds and popularly known as Dandanāyaka.3 On the corresponding right there is Pingala who is another form of Agni. Skanda also figures in the other set of attendants of the Sun-god, viz. of Rajña and Śrausha. It is clearly pointed out in the Purāna that Rājña is identical to Karttikeya. Because he shines on the office of divine generalassimo, Kārttikeya is famous as Rājāa which word is composed of the root raj "to shine" added with the suffix na.4 This fact is also supported by a late medieval work the Tika sarvasva (c. 1150) by Sarvananda, where the author offers in a verse the equation haraguhau = rājaśrausau. The Bhavishya P. has also given the identification of Śrausha with Guha (I. 124. 21).

Apparently, the above myth was a part of the reorientated worship of the Indian Sun-god in which a number of motifs and forms were accepted from the east Iranian mode Sun-worship. It appeared as an easy crollary while adopting the Iranian iconography of Sūrya to identify the Iranian attendants of the god with some deities of similar nature out of the vast Hindu pantheon. In such a scheme to make the blending complete, Śrausha and Raja were accepted as identical to Skanda and Śiva

#### SKANDA AS THE DEITY OF THIEVES AND ROGUES

Another popular aspect of Skanda worship is known from a passage in the Mrichchhakatika where thieves and burglars are

<sup>1.</sup> Ibid. I. 6. 13.

<sup>2.</sup> Chaturbhani, I. 23.6.

<sup>3.</sup> Bhavishya P., I. 124. 13.

<sup>4.</sup> Ibid. I. 124. 21-3, 34.

<sup>5.</sup> Sen, "Iranian Śrausha and Indian Skanda", Indo-Iranica, Vol. IV, I 6. See supra, p. (July 1950), p. 27.

called skandaputra.1 Karttikeya figures here as the patron-deity of such persons who lived on theft and like professions. Sarvalika, a house-breaker, before entering the house of Charudatta through a breach in the wall bows to the god Kumara-Karttikeya for granting success in his work. The different epithets of the god with which the fellow pays his homage to him include Kanakaśakti Brahmanyadeva and, Devavrata.2 A few lines earlie, Kanakaśakti (whose weapon is the golden śakti") figures as an achārya of the Chaurya-śāstra whose injunction about breach are quoted by the thief. Prithividhara, the commentator of the drama, takes the phrase skandaputra as meaning "skandopajīvī chaurāchārya, i. e. teachers of burglary making a living by invocating Skanda. As pointed by Dr. Sandesra. skanda also means "to attack", and in this context perhaps signify in general the low practices followed by rogues and bandits, looters and marauders and similar sections of society. They regarded Skanda their patron-deity. It is clear from the Mrichchhakatika and appears to have had its footing in the earlier tradition which regarded Skanda as the god of Dhurtas and the patron deity of warring tribes. This aspect of Skanda seems to have continued in later periods also.4

### गवरी ! तारा पुत्र ने समरे मथुरा मोर। दी' ए समरे वाणिया ने राते समरे चोर ।।

Ibid, p. 294.

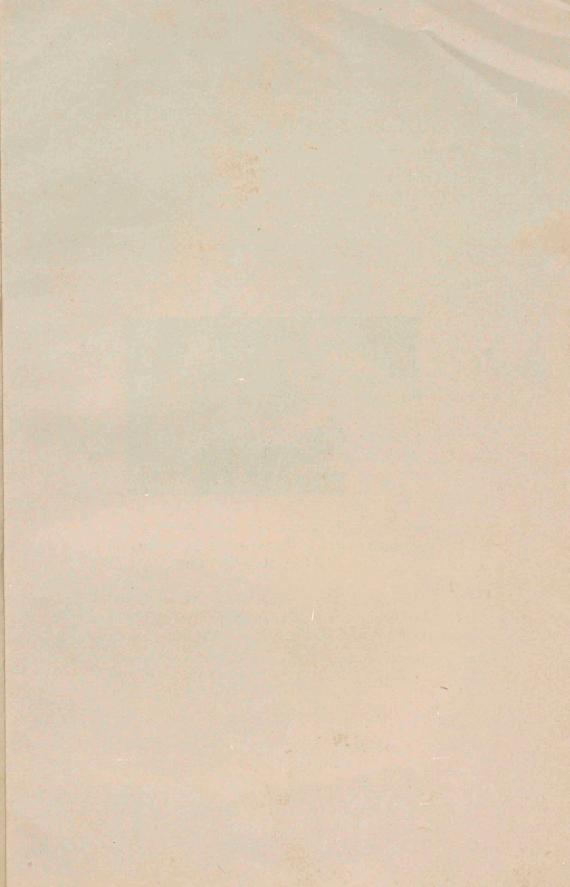
In northern India and specially in Bengal the god Skanda is regarded as the deity of ganikas, also. Gopinath Rao, loc. cit Vol, II, pt. II, p. 415.

<sup>1.</sup> Act III.

<sup>2.</sup> नमो वरदाय कूमारकार्तिकेयाय नमः कनकशक्तये ब्रह्मण्यदेवाय देवव्रताय ।

<sup>3.</sup> Sandesra, "Prachin sahitya men chaurasastra" (The Science of theft in ancient Literature), Bharatiya Sahitya (Munshi Abhinandan Volume, year 3, Jan. 1958), p. 293-4.

<sup>4.</sup> A verse from the Gujrāti folklore reflects the connection of Skanda with thieves who regarded him their lord. As it says, O Gauri! Your son is remembered by sweet peacocks. In day time he is remembered by merchants and at night thieves."





His Majesty, King Mahendra, being presented the welcome address in an ivory casket in the form of the Ghurdaur, Maharaja's barge.

## Welcome Address

PRESENTED TO

Their Majesties, King and Queen of Nepal

ON BEHALF OF

ALL-INDIA KASHIRAJ TRUST

READ BY

Maharaj Kumar Dr. Raghubir Singh of Sitamau (Trustee)

## नेपाल-नरेश महाराजाधिराज श्री ५ महेन्द्र वीर विक्रम शाह देव

एवं

महामान्या महारानी श्री ५ श्रीमती रत्ना राज्यलक्ष्मी देवी शाह

के

भारत की पुण्यनगरी वाराणसी में शुभागमन के अवसर पर सर्वभारतीय काशीराज न्यास द्वारा समर्पित

# स्वागत-आभिनन्दन

महाराजाधिराज,

आज हमारे लिए हर्ष का विषय है कि हमें काशों की इस पिवत्र भूमि में श्रीमान् तथा श्रीमती महारानी का स्वागत अभिनन्दन करने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है। प्राचीनकाल से ही भारत तथा नेपाल का जो घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध रहा है, उस सम्बन्ध को श्रीमान् ने अपने शुभागमन से और भी अनुप्राणित तथा दृढ़ किया है। काशी के साथ नेपाल का घनिष्ठ धार्मिक एवं सांस्कृतिक संबन्ध है। नेपाल के अनेक विद्वान् पण्डित जिस श्रद्धा भाव से काशी के इस पिवत्र तीर्थं में निवास करते हुए अपने मानव जन्म को सार्थंक समभते हैं, नेपाल की अनेक प्रसिद्ध संस्थायें काशी में जिस तत्परता के साथ आर्यजाति की प्राचीन सांस्कृतिक भाषा संस्कृत का तथा संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों का पुनरुद्धार करने में संलग्न हैं, उसके कारण काशी में श्रीमान् के शुभागमन का और भी विशेष महत्व है।

महामहिम,

नेपाल-देश भारत के उत्तर में उसका निकटतम पड़ोसी है। नेपाल का भारत के साथ घनिष्ठ प्राकृतिक और नैसर्गिक संबन्ध है। हिमालय की उच्च श्रेणियों ने नेपाल को अपनी गोद में स्थान देकर लाड दुलार किया है, तथा अपने अनेक जगत्प्रसिद्ध हिमाच्छादित दुर्गम एवं अजेय उच्च-श्रृंगों से उसे विभूषित किया है। नेपाल की गोगरा, सप्तगण्डकी तथा सप्तकोसी आदि नदियों ने कल-कल निनाद करते हुए अपने पवित्र जलों को भारत की जगत्-पावनी गंगा को सम्पित कर नेपाल और भारत के शरीर में प्रवाहित रसों को सम्मिश्रत किया है, तथा उस पवित्र संमिश्रण के द्वारा दोनों देशों के हृदयों को भी एकीभूत कर दिया है।

महामान्य,

हस समय नेपाल ही संसार का एकमात्र स्वतन्त्र हिन्दू राज्य है। नेपाल तथा भारत का सदा ही सांस्कृतिक एवं धार्मिक ऐक्य रहा है। जिस प्रकार भारतीय संस्कृति और धर्म की केन्द्रस्वरूपा काशी नगरी में भगवान् विश्वनाथ प्रतिष्ठित हैं, उसी प्रकार नेपाल की राजधानी तथा प्रधान नगरी काठमांडू में भगवान् पगुपतिनाथ प्रतिष्ठित हैं। काठमांडू आदि स्थानों में निर्मित शिव के और भी अनेक मन्दिर वहाँ की उचकला का परिचय देते हुए नेपाल और भारत के बीच धार्मिक एकता का उच्चियेष कर रहे हैं। नेपाल की भाषा में संस्कृत शब्दों का प्राचुर्य है। नेपाल के काठमांडू पुस्तकालय में संस्कृत-साहित्य का प्राचीन भण्डार है तथा वहाँ अवतक भी संसार में अन्यत्र अप्राप्त प्राचीनतम संस्कृत हस्तलेखों का संग्रह वर्तमान है। भारत की पौराणिक वंशाविलयों के समान नेपाल की "वंशावली" भी नेपाल के प्राचीन इतिहास को सुरक्षित बनाये हुए है।

श्रीमान् महोदय,

काशिराजन्यास के साथ नेपाल का एक विशेष साहित्यिक सम्बन्ध है। नेपाल से काशिराजन्यास को एक अलभ्य हस्तलेख, स्कन्द पुराण का मानसखण्ड, प्राप्त हुआ है। मत्स्यपुराण के वैज्ञानिक संस्करण को तैयार करने के लिए नेपाल की नेवारी लिपि में लिखित एक प्राचीन मत्स्यपुराण हस्तलेख का पाठसंवाद (Collation) भी काशीराजन्यास के पुराण-विभाग में हुआ है। काशिराजन्यास की पुराण-सम्बन्धी मुख्य शोध-पत्रिका "पुराण" काठमांडु में स्थित शिक्षा-मंत्रालय के वीरपुस्तकालय में कई वर्षों से बराबर भेजी जा रही है।

महाराजाधिराज तथा श्रीमती महारानी का काशी में यह शुभागमन नेपाल के साथ भारत, काशी एवं काशीराजन्यास के संबन्ध को और भी अधिक मधुर तथा स्थायी वनायेगा इसकी हमें पूर्ण आशा है।

> सदस्य, सर्वभारतीय काशिराजन्यास दुर्ग रामनगर, वाराणसी।

## THE MATSYA PURĀŅA AND THE RĀMĀYAŅA

Вч

#### D. R. MANKAD

[ वाल्मोकीयरामायणस्य किष्किन्धाकाण्डे ३९-४२ स्रघ्यायेषु भुवनकोशस्य विवरणं विद्यते । मत्स्यपुराणेऽपि १६३ स्रघ्याये भुवनकोशवर्णंनमस्ति । लेखेःस्मिन् विदुषा लेखकेन उभयोः किष्किन्धाकाण्डीयमत्स्यपुराणीयभुवनकोशवर्णंनयोः साम्यं विवेचितम्, प्रमाणैः स्थापितच्च यद् मत्स्यपुराणीयविवरणं किष्किन्धाकाण्डीयभुवनकोश-विवरणापेक्षया प्राचीनतरम् । ]

While editing the Kiṣkindhākāṇḍa for the Baroda Edition of the Rāmāyaṇa, I came across the problem of parallelisms between the R text and the texts of some of the Purāṇas particularly Mt(Matsya), Vy(Vāyu) and Bḍ(Brahmāṇḍa) I have discussed this problem in the Introduction (See pp. XXXV-XLVIII).

Here I want to continue the discussion on one question. Adhyāyas 39 to 42 of the Kiṣkindhākāṇḍa describe the geography of the four directions and it has been found that the description of the several important places is bodily taken from the Matsya Purāṇa (Adh. 163, 60ff) This I have shown in my Introduction by putting the R text and the Mt text in parallel columns.

There I have quoted from the critical edition of the R and noted the various readings also. But about the Mt, I was able to quote from the Venkatesvara Press Edition and was not able to quote various readings for the same.

Thereafter I inquired of Shri A. S. Gupta of the All-India Kashiraj Trust, whether the 163rd. Adhyāya of the Mt was collated or not. He said the collation sheets of that Purāṇa were at Madras with Dr. Raghavan. He, however, volunteered to write to Dr. Raghavan and the latter was kind enough to get the collation sheets of the 163rd Adhyāya of the Mt copied for me. I am greatly obliged to both of them for this kind courtsey.

I have, now, got the collated text of the Mt and give below, at the risk of some repetition also, the text of both the R and the Mt with the different readings. This will enable scholars to judge the matter for themselves.

I have noted here only the important readings from the Mt. In fact, these lines of the Mt show that although about 32 MSS, and printed texts have been collated, there are hardly any important readings found. So far as I am concerned the following is worth noting:

- 1. While discussing Mt 163.62, I have said in the Introduction to the Kişkindhā that 'kamala' in the Mt is clearly a mistake, it should be 'Mekala'. I find that this is fully supported by the MSS. 'Mekala' is actually found in 10 MSS of the Mt. Further, this 'mekala' is preserved by the N MSS of the R, which proves what I have said, viz. in these cases the N MSS of the R preserve the original readings. The evidence is quite conclusive here.
- 2. In the Mt 64cd, 'jambūdvīpa' has no v. 1., which conclusively proves that the original reading is 'jambū' and not 'Yava'. No MS of the Mt shows any reading like 'jalp', 'jvala', 'caya', or 'Yava' which are found in the R. This shows that no MS of the R preserves the original reading.
- 3. In 64cd, the reading सवंरत्नोपशोभितम् of the Mt is preserved in N MSS, but not in S MSS.
- 4. Three MSS of the Mt preserve 'ratnavantam' for 'ratnavata' or 'ratnavara' of the Vulgate. This 'ratnavantam' is supported by the R and is therefore the original reading of the Mt. Here is a case how the original Mt reading is determined by a comparision with the R.
- 5. Similarly, 12 MSS of the Mt preserve the reading 'kośakārāṇām (Mt 66a) in place of kośakaraṇam of the

Vulgate. Here also comparision with the R determines the original reading of the Mt, which is kośakārāṇām.

- 6. The R uses Accusative case, but the Vulgate(Mt) uses Nominative in several cases. See Mt 60cd etc. But in almost all such cases, one or the other MS of the Mt shows the Accusative case, which, therefore, is the original. There are numerous such cases. I have not noted all of them.
- 7. Mt 77c has 'vidyutvān', but R 40-32b has 'vaidyuta'. Here the N MSS of the R preserve the original 'vidyutvān'.
- 8. Mt.79c has 'viśālākakṣa', but R 40-36c reads viśālarathyā'. It is now seen that several MSS of the Mt read 'viśālakakṣā'. This shows that the R has translated 'kakṣā' by 'rathyā' and kakṣā is the original reading of the Mt.

I would request the reader to refer to my Introduction of the Kişkindhā for the textual and other implications of this comparision. I am emboldened to say that a detailed comparision of all the places where the R has borrowed from other sources (other Purāṇas or the Mbh and other books if any) is likely to be very fruitful, atleast from the textual point of view.

In the end, I would note that these lines of the Mt, show that at several places, the printed editions do not preserve the original and correct readings which are now seen in several collated MSS.

### MATSYA, ADHYĀYA 163

- 60 cd नदी भागीरथी चैव शरयू: कौशिकी यथा several mss read नदीं etc. in acc.
- 61 यमुना त्वथ कावेरी कृष्णवेणा च निम्नगा सुवेणा च महाभागा नदी गोदावरी तथा acc. case is used in several MSS.
- 62 चर्मण्वती च सिन्धुश्च तथा नदनदीपतिः कमलप्रभवश्चैव शोणो मणिनिभोदकः ab) acc. used in several MSS.
  - c) मेकल in 10 MSS (for कमल in the Vulgate)
- 63 नर्मदा ग्रुभतोया च तथा वेत्रवती नदी गोमती गोकुलाकीणी तथा पूर्वसरस्वती acc. used in several MSS.
- 64 a मही कालमही चैव तमसा पुष्पवाहिनी acc. in several MSS.
- 64 ed जम्बूद्वीपं रत्नवटं सर्वरत्नोपशोभितम्
- 65 ab सुवर्णप्रकटं चैव सुवर्णाकरमण्डितम् 64c) no v.l. for जम्बूद्वीप : रत्नवंतं 3 MSS. 65a) पटकं पुटकं for प्रकटं.
- 65 cd महानदं च लौहित्यं शैलकाननशोभितम्
- 66 ab पत्तनं को त्रकरणमृषिवीरजनाकरम् a) को का काराणां in 12 MSS.
  - ed मागधाश्च महायामा मुण्डाः शुङ्गास्तथैव च
    -e) मगधांश्च in 10 MSS; महायामान् several MSS.
    -d) पुंड्रान् in 5 MSS; अंगान् in 12 MSS; पुंड्रान्वंगान् 1 MS.
- 67 ab सुद्धा महा विदेहाश्च मालवाः काशिकोसलाः -a) कुरून् for सुद्धा 4 MSS; -b) मालवान् several MSS.
- 67 cd भवनं वैनतेयस्य दैत्येन्द्रेणाभिकम्पितम्
- 68 ab कैलासशिखराकारं यत्कृतं विश्वकर्मणा

[ar., 1966] THE MATSYA PURANA AND THE RAMAYANA 163 RĀMĀYAŅA (cr. ed.), Kiskindhā Kānda

39.19 ab नदीं भागीरथीं रम्यां सरयं कीशिकीं तथा

कालिन्दीं यमुनां रम्यां यामुनं च महागिरिम् 39.19 cd -ป)  $S'_1 D_{1^{-4}+12}$ -वनं ;  $D_{13}$ -वनें: (for-गिरिम्)

सरस्वतीं च सिन्धुं च शोणं मणिनिभोदकम् 39.20 ab -a) S<sub>1</sub> Ñ V<sub>1·2</sub> B<sub>1-3</sub> D<sub>1-4 7·11-13</sub> मेकल (N<sub>2</sub> V<sub>1</sub> ०लं) प्र (B<sub>3</sub> भा) भवं शोणं

नर्मदां च नदीं दुर्गा 40.8c 805\* तथा वेत्रवतीं नदीम्

754\* गोमतीं गोकुलाकीणां तथा पूर्वा सरस्वतीम्

39.20° महीं कालमहीं चैव

रत्नवन्तं यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम् 39.28 cd सुवर्णरूप्यकं चैव सुवर्णाकरमण्डितम् 29 ab

 $28 \ c) \ S_1 \ ilde{
m N} \ B_1 \ D_{1 \ 2\cdot 4\cdot 12} \ \ {
m deg}$  जलद्वीपं ;  $B_{2\cdot 3} \ \ {
m deg}$  व्यलद्वीपं ;  $D_{3\cdot 13}$ चयद्वीपं ;  $D_7$  जन°;  $D_{11}$  च ये द्वीपं (for यवद्वीपं) -1)  $S_1'$   $\tilde{N}_1$  $B_4 \ D_{1^{-}4} \cdot _{11^{-}13} \$  सर्वरत्नोपशोभितम् ;  $T_2$  सर्वराज्योप $^{\circ} \ V_1$ om. 28cd and 29 ab.

महानदं च लौहित्यं शैलकाननशोभितम्। 760\*

शैलकाननशोभितम । 39 20 d

पत्तनं कोशकाराणां। 39.22 a

मागधांश्च महाप्रामान्पुण्डान्वङ्गांस्तथैव च 39.21 cd -d) D5.8-10 पुं (D5 सुं) ड्रास्त्वंगास्तथैव च

ब्रह्ममालान्विदेहांश्च मालवान्काशिकोसलान् 39.21 ab  $-a)\, ilde{
m N}_2\, extsf{V}_1\, \, extsf{B}_4\,$ सूदमान्मल्लान्  $: \, extsf{B}_1\,$ सुंभान्मल्लान्  $: \, extsf{D}_7\,$ सुद्धान्मल्लान्

39.35 ab गृहं च वैनतेयस्य नानारत्नविभूषितम्

39.35 od तत्र कैलाससंकाशं विहितं विश्वकर्मणा

ed रक्ततोयो महाभीमो छौहित्यो नाम सागरः -d) ० त्यं and सागरं in 2 MSS.

69 ab उद्यक्ष महाशैल उच्छ्रितः शतयोजनम् -b) शतयोजनमुच्छ्रितः

69 cd सुवर्णवेदिकः श्रीमान्मेचपङ्क्तिनिषेवितः

70 ab भ्राजमानोऽर्कसदृशीर्जात्रूपमयेद्रं मैः

ed शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैश्च पुहिपतैः

71 ab अयोमुखश्च विख्यातः पर्वतो धातुमण्डितः

ed तमालवनगन्धश्च पर्वतो मलयः शुभः

72 ab सुराष्ट्राश्च सवाह्निकाः शूराभीरास्तथैव च
-b) शूद्रा for शूरा 7 MSS

ed भोजाः पाण्ड्याश्च वङ्गाश्च कलिङ्गास्ताम्रलिप्तकाः

73 ab तथैबोण्ड्राश्च पौण्ड्राश्च वामचूडाः सकेरलाः

ed क्षोभितास्तेन दैत्येन सदेवाश्चाप्सरोगणाः

74 ab अगस्त्यभवनं चैव यद्गम्यं कृतं पुरा

ed सिद्धचारणसंघैश्च विप्रकीण मनोहरम्

75 ab विचित्रनानाविहगं सुपुष्पितमहाद्रुमम्

ed जातरूपमयैः शृङ्गौरप्सरोगणनादितम्

76 ab गिरिपुष्पितकञ्चैव लक्ष्मीवान् प्रियद्शॅनः

ed उत्थितः सागरं भित्त्वा विश्रामश्चन्द्रसूर्ययोः

ef रराज सुमहाशृङ्गेर्गगनं विलिखन्निव

77 ab चन्द्रसूर्याशुसंकाशैः सागराम्बुसमावृतैः

od विद्युत्वान्सर्वतः श्रीमानायतः शतयोजनम्

-c) पर्वत for सर्वतः 4 MSS

78 ab विद्युतां यत्र संघाता निपात्यन्ते नगोत्तमे

cd ऋषभः पर्वतर्चेव श्रीमान्वृषभसंज्ञितः

79 ab कुञ्जरः पर्वतः श्रीमान् यत्रागस्त्यगृहं शुभम्

ed विशालाक्षम्र दुर्धर्षः सर्पाणामालयः पुरी

-c) विशालकक्षा several MSS; दुर्भर्षा several MSS

39.34 ab ततो रक्तजलं भीमं लोहितं नाम सागरम् -b) S'<sub>1</sub> Ñ<sub>1</sub> B<sub>4</sub> D<sub>1·3·4·12·13</sub> लौहित्यं

39.48 cd ततः परं हेममयः श्रीमानुद्यपर्वतः

39.49 ab तस्य कोटिदिवं स्पृष्ट्वा शतयोजनमायता

ed जातरूपमयी दिव्या विराजित सवेदिका

39.50 ed जातरूपमयैदिंग्यैः शोभते सूर्यसंनिभैः

34.50 ab सालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितै:

40.13 cd अयोमुखश्च गन्तव्यः पर्वतो धातुमण्डितः 40.16 ab तस्यासीनं नगस्यात्रे मलयस्य महौजसम्

40.16 ab तस्यासीनं नगस्यात्रे मलयस्य महीजसम् 41. 5 ab सुराष्ट्रान्सह बाह्वीकाञ्ज्रूराभीरांस्तथैव च

804\* ततो भोजांश्च पाण्ड्यांश्च

40.13 ab तथैवान्ध्रांश्च पुण्ड्रांश्च चोलान्पाण्ड्यान्सकेरलान्

40.34° अगस्त्यभवनं यत्र

 $40.32~{
m ab}$  ततस्तमप्यितक्रम्य वैद्युतो नाम पर्वतः  $S_1' \ \tilde{N} \ V_{1 \cdot 2} \ B_{2 \cdot 3} \ D_{1^{-4} \cdot 7 \cdot 11 \cdot 13} \ \text{ततः सागरमुत्तीर्य विद्युद्वा } (S_1' \ \tilde{N} \ D_{1^{-4} \cdot 7 \cdot 12 \cdot 13} \ ^{\circ}$ त्वाः  $V_1 \ ^{\circ}$ माः  $D_{11} \ ^{\circ}$ त्मा) न्नाम पर्वतः

40.38 cd सर्वरत्नमयः श्रीमानृषभो नाम पर्वतः

40.34 ab तत्र नेत्रमनःकान्तः कुअरो नाम पर्वतः

34 cd अगस्त्यभवनं यत्र निर्मितं विश्वकर्मणा

40,36 ab तत्र मोगवती नाम सर्पाणामालयः पुरी

cd विशालरथ्या दुर्घर्षा सर्वेतः परिरक्षिता

80	ab	तथा	भोगवती	चापि	दैत्येन्द्रेणाभिकस्पिता
				-	

80 cd महासेनो गिरिश्च व पारियात्रश्च पर्वतः

81 ab चक्रवांश्च गिरिश्रेष्टो वाराहरचैव पर्वतः

81 od प्राग्ज्योतिषपुरं चापि जातरूपमयं शुभम्

82 ab यस्मिन्वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः

82 cd मेघश्च पर्वतश्रेष्टो मेघगम्भीरानिस्त्वनः

83 ab षष्टिस्तत्र सहस्राणि पर्वतानां द्विजोत्तमाः

83 od तरुगादित्यसंकाशो मेरुस्तत्र महागिरिः

84 ab यक्षराक्षसगन्धर्वेर्नित्यं सेवितकन्द्रः

84 cd हेमगर्भो महाशैलस्तथा हेमसखो गिरिः

85 ab कैलासरवैव शैलेन्द्रो दानवेन्द्रेण कम्पितः

85 cd हेमपुष्करसंद्रन्नं तेन वैखानसं सरः

86 ab कम्पितं मानसं चैव हंसकारण्डवाकुलम्

86 cd त्रिश्रङ्गपर्वतरचैव कुमारी च सरिद्ररा

87 ab तुषारचयसंछन्नो मन्द्रश्चापि पर्वतः

od उशीरबिन्दुश्च गिरिश्चन्द्रप्रस्थस्तथाद्रिराट् -d) मद्र for चन्द्र

88 ab प्रजापतिगिरिश्चैव तथा पुष्करपर्वतः

88 cd देवाभ्रपर्वतऋ व तथा वै रेणुको गिरिः -ी) वालुका for रेणुको

89 ab क्रौद्धः सप्तिषेशौलश्च धूम्रवर्णश्च पर्वतः

89 cd एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा

90 ab नद्यः ससागराः सर्वाः सोऽकम्पयत दानवः

ed कपिलम्ब महीपुत्रो व्याघ्नवां में व कम्पितः

91 ab खेचराश्च सतीपुत्राः पातालतलवासिनः

91 cd गणस्तथा परो रौद्रौ मेघनामाङ्कुशायुधः

ef रक्षिता पन्नगैर्घो रैस्तीच्णदंष्ट्रैर्महाविषै:

41.16 दुर्देशी पारियात्रस्य गता द्रस्यथ वानराः

41.21 ab चतुर्भागे समुद्रस्य चक्रवान्नाम पर्वतः

24 ab योजनानि चतुःषष्टिर्वराहो नाम पर्वतः

25 ab तत्र प्राग्डयोतिषं नाम जातरूपमयं पुरम्

25 ed यस्मिन्वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः

29 d मेचवान्नाम पर्वतः

30 ed षष्टिं गिरिसहस्राणि काञ्जनानि गमिष्यथ

32 ab तेषां मध्ये स्थितो राजा मेरुरुत्तमपर्वतः

42.16 ab तमतिक्रस्य शैलेन्द्रं हेमगर्भ महागिरिम्

42.19 cd कैलासं पाण्डुरं शैलं प्राप्य हृष्टा भविष्यथ

42.33 ab हेमपुष्करसंछन्नं तत्र वैखानसं सरः

833\* तथा चैव विचेतव्यिख्यश्चको नाम पर्वतः 39.24 ab मन्दरस्य च ये कोटिं संधिताः केचिदायताम् 1.2 of 824\* उग्नीरबीजं दिव्यं तं पर्वतं द्रष्टुमईथ

917\* ततो देवसभा नाम पर्वतं द्रब्दुमईथ  $(\tilde{N}_2\ V_{1•3}\ \hat{\mathbf{c}}$ वसभो ;  $V_2\ \hat{\mathbf{v}}$ मतो ;  $B_3\ \hat{\mathbf{v}}$ भो ;  $D_{1^{-4}}\ \hat{\mathbf{v}}$ सथं ;  $D_6\ T_{2^{-3}}\ G_{2\cdot 3}\ M_{2^{-3}}\ C_k\ \hat{\mathbf{v}}$ सखो ;  $D_{7\cdot 13}\ \hat{\mathbf{v}}$ सहो ;  $D_{11}\ \hat{\mathbf{v}}$ समं)  $42.24\ ab$  कौक्रां तु गिरिमासाद्य विलं तस्य सुदुर्गमम्

## विष्णुपुराण-सुभाषितानि

मुढानामेव भवित कोघो ज्ञानवतां कुतः । हन्यते तात कः केन यतः स्वकृतमुक् पुमान् ॥१।१।१७ सिश्चतस्यापि महता वत्स क्षेत्रोन मानवैः । यशसस्तपसध्येव कोघो नाशकरः परः ॥१।१।१८८ क्षमासारा हि साधवः ॥१।१।२०घ यतस्सत्त्वं ततो लक्ष्मोः सत्त्वं भृत्यनुसारि च । निःश्रीकाणां कुतः सत्त्वं विना तेन गुणाः कुतः ॥१।९।२९ बलशौर्याचभावश्च पुरुषाणां गुणैर्विना । लङ्घनीयस्समस्तस्य बलशौर्यविवर्जितः ॥१।९।३० भवत्यपध्वस्तमतिर्लङ्घतः प्रथितः पुमान् ॥१।९।३१ सत्त्वेन सत्यशौचाभ्यां तथा शीलादिमर्गुणैः । त्यज्यन्ते ते नराः सद्यः सन्त्यक्ता ये त्वया(लक्ष्म्या)ऽमले १।९।१२९

त्वया विलोकिता सद्यः शोलादौरिक्लिर्गुणैः। कुलैधर्येश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ॥१।९।१३० स श्राध्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान् । स शूरः स च विकान्तः यस्त्वया देवि वीक्षितः १।९।१३१ सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः । पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवस्रमे ॥१।९।१३२ सुशीलो भव धर्मात्मा मैत्रः प्राणिहिते रतः । निम्नं यथापः प्रवणाः पात्रमायान्ति सम्पदः ॥१।११।२४ एकस्मिन्यत्र निधनं प्रापिते दुष्टकारिणि । बहूनां भवति क्षेमं तस्य पुण्यप्रदो वधः ॥१।१३।७४ उपायतः समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युषक्रमाः ॥१।१३।७८ प्र. अत्यन्तिस्तिमताङ्गानां व्यायामेन सुखैषिणाम् । भ्रान्तिज्ञानावृताक्षाणां दुःखमेव सुखायते ॥१।१७।६१ तापत्रयेणाभिहतं यदेतदखिलं जगत्। तदा शोच्येषु भृतेषु द्वेषं प्राज्ञः करोति कः ॥१।१७।८० अथ भद्राणि भूतानि हीनशक्तिरहं परम् । मुदं तदापि कुर्वीत हानिर्द्धेषफलं यतः ॥१।१७।८१

गुरूणामिष सर्वेषां पिता परमको गुरुः ॥१।१८।१६पू अन्येषां यो न पापानि चिन्तयत्यात्मनो यथा । पापागमस्तात हेत्वभावाच विद्यते ॥१।१९।५ कर्मणा मनसा वाचा परपीडां करोति यः। तद्भीनं जन्म फलति प्रभृतं तस्य चाशुभम् ॥१।१९।६ सोऽहं (प्रह्लादः) न पापिमच्छामि न करोमि वदामि वा । चिन्तयन्सर्वभृतस्थमात्मन्यि च केशवम् ॥१।१९।७ शारीरं मानसं दु:खं दैवं भूतभवं तथा। सर्वत्र शुभचित्तस्य तस्य मे जायते। कुतः ॥१।१९।८ एवं सर्वेषु भृतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी । कर्तन्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभृतमयं हरिम् ॥१।१९।९ साम चोषपदानं च भेद-दण्डौ तथापरौ। उपयाः कथिताः सर्वे मित्रादीनां च साधने ॥१।१९।३ ५ साध्याभावे महाबाहो साधनैः किं प्रयोजनम् ॥१।१९।३६उ अविद्यान्तर्ग तैर्यत्नः कर्तव्यस्तात शोभने ॥१।१९।३९उ विद्याबुद्धिरविद्यायामज्ञानात्तात जायते ॥१।१९।४०पू तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये। आयासायापरं कर्म विद्या ऽन्या शिल्पनैपुणम् ॥१।१९।४१ न चिन्तयति को राज्यं को धनं नाभिवाञ्छति । तथापि \*भाव्यमेवैतदुभयं प्राप्यते नरैः ॥१।१९।४३ सर्व एव महाभाग महत्त्वं प्रति सोद्यमाः। तथापि पुंसां भाग्यानि नोद्यमा भूतिहेतवः ॥१।१९।४४ जडानामविवेकानामशूराणामपि प्रभो । भागभोज्यानि राज्यानि सन्त्यनीतिमतामपि ॥१।१९।४५ तस्माद्यतेत पुण्येषु य इच्छेन्महतीं श्रियम् । यतितव्यं समत्वे च निर्वाणमिष चेच्छता ॥१।१९।४६

—मध्वाचार्य आद्य

<sup>\*</sup> जीवानन्दसंकरणे 'भाव्यम' इति पाठः, स एव समीचोन इति प्रदत्तः । श्रीधरा-चार्या अप्यमुमेव पाठमनुसरन्ति । गी० प्रे० संस्करणे तु 'भावम्' इति पाठः ।

# ACTIVITIES OF THE ALL-INDIA KASHIRAJ TRUST (July—December, 1965)

#### (1) CRITICAL EDITIONS OF THE PURANAS

#### (a) Matsya Purāṇa:

Critical edition of the Matsya Purāṇa is being prepared by Dr. V. Raghavan at Madras, as already reported in the previous reviews. Work is progressing on the extra chapters in Grantha Manuscript and also in the preliminary editorial work of the main Matsya. Collations of Bhuvanakośa chapters of Matsya were done at the instance of the Head Office and a part of the collation sent to Banaras.

#### (b) Vāmana-Purāna:

Twenty manuscripts of the Vāmana-Purāṇa have been collated so far—13 Devanāgarī Manuscripts, 1 Śāradā Ms., 1 Kashmiri Ms., 3 Bengālī Ms., 1 Telugu Ms. and 1 Nandi Nāgarī Ms. Of these, the eighteen Mss. have been collated previously as stated in the previous review. One Nandi Nāgarī Palm-leaf Ms. from the Śringerī Mutt, Mysore, and one Devanāgarī Ms. (microfilm) from the Oxford University Library have been collated during this period.

The Nandi Nāgarī Ms. has been procured from the Jagadguru Śrī Śaṅkarācārya of the Śringerī Mutt through Pt. Rama-Chandra Sastri, Principal of the Sanskrit College of the Banaras Hindu University. We are thankful for the kind co-operation received.

Efforts are also being made to procure a Telugu Ms. from Mysore, so that some definite idea may be had about the nature of the South Indian version of the Vāmana Purāṇa.

The critical text of the Vāmana Purāṇa is also being constituted, and simultaneously critical apparatus is also being prepared.

## काशिराजन्यासस्य कार्यविवरणम्

( जुलाई १९६५—दिसम्बर १९६५ )

## १. पुराणानां पाठसमीक्षात्मकानि संस्करणानि

## (अ) मत्स्यपुराणकार्यम्

यथा पूर्वकार्यविवरणे सूचितं मत्स्यपुराणस्य समीक्षात्मकं संस्करणं मद्रासनगरे डा० वे० राघवन्महोदयैः सम्पाद्यमानं वर्तते । मत्स्यपुराणस्य प्रंथिलिपिलेखस्या-तिरिक्ताध्यायानां सम्बन्धे कार्यं प्रचलित तथा मत्स्यपुराणस्य मुख्यभागस्य संपादने अपि कार्यं प्रचलित । मत्स्यपुराणस्य भुवनकोशाध्यायानां रामनगरकेन्द्रस्य निदेशात् संवादः कृतः । संवादश्च तत्र प्रेषितः ।

## (आ) वामनपुराणकार्यम्

अद्याविष वामनपुराणस्य विश्वतिसंख्यकानि हस्तिलिखितमानृकापुस्तकानि संवादितानि—देवनागरीलिपिपुस्तकानि १३, शारदापुस्तकं १, काश्मीरी-पुस्तकम् १, वङ्गलिपिपुस्तकानि ३, तेलगुलिपिपुस्तकम् १, तथा नन्दिनागरी-लिपिपुस्तकम् १। विश्वतिहस्तिलिखितमानृकापुस्तकानाम् अष्टादशहस्तलेखानां विवरणं पूर्वं पदत्तम् । प्रस्तुतकाले तु शृंगेरीमठस्य एकः नन्दिनागरीहस्तलेखः अपरश्च आक्सफोर्डविश्वविद्यालयपुस्तकालयस्य हस्तलेखः (माइकोफिल्म) संवादितः।

निद्नागरी हस्तलेखः काशी हिन्द्विश्वविद्यालयीय-संस्कृतमहाविद्यालयस्य प्राचार्यैः पं० रामचन्द्रशास्त्रिमहोद्यैः शृङ्गेरीमठस्य जगद्गुणां श्रीशंकराचार्य-पूज्यपादानां सकाशाद् आनीतः । अस्मै सहयोगाय वयं परं कृतज्ञाः स्मः ।

मैसूरतः तेलगुलिषिहस्तलेखस्याप्तयेऽपि प्रयत्नः वर्तते येन वामनपुराणस्य दक्षिणीयपाठविषये निश्चितो विचारः संभवेत् ।

वामनपुराणस्य समीक्षात्मकः पाठः निर्मायमाणो वर्तते तथा पाठविवरणमपि समकारुमेव रिख्यते ।

The Vāmana Purāṇa is being translated into Hindi by Pt. Gopalchandra Sastri of Varanasi; it is also to be translated into English. The translation is proposed to be published along with the critical text.

#### (2) OTHER WORK ON THE PURANAS

(a) At Madras Centre, Adhyāyas 5 to 11 of the Svalpa Matsya Purāṇa have been edited by Dr. Raghavan. The first four Adhyāyas were published in 'Purāṇa' VI. 1; and the next six Adhyāyas (5 to 10) are being published in the present issue. Further chapters are being edited. The Dāna Chapters there of are being collated with Matsya quotations in Nibandhas.

Two articles of Dr. Raghavan, the one on the *Purāṇārtha Saṅgraha* and the other on its *Nīti-Adhyāya* (XI), which were published in the 'Purāṇa' have now been republished together in a book-form for the use of scholars.

(b) Pāda-Indexes: The Pāda indexes of the Linga and the Garuḍa Purāṇas have been completed. Further work on the Pāda-indexes has been discontinued for the present on account of the work on the Vāmana-Purāṇa.

#### (c) Collection of Purāṇa-quotations from the Nibandhas:

Purāṇa quotations from 4 more Khanṇḍas of the Kṛtya Kalpataru have further been collected. Further collection has been stopped for the time being on account of the exclusive work on the Vāmana Purāṇa being done at present.

#### (d) Writing of the Adhara-patha:

The Ādhāra pāṭha of the Agni Purāṇa has been completed and checked. Up till now the Ādhāra-pāṭhas of the ten Mahāpurānas, viz., Matsya, Vāmana, Kūrma, Brahma, Viṣṇu Mārkaṇdeya, Agni, Liṅga, Garuḍa and Brahmāṇḍa, has been written. Further writing of the Ādhāra pāṭha has been discontinued.

#### (e) Subject-Indexes of the Puranas:

As already stated before, subject-indexes of the six Purāṇas (viz. Matsya, Vāmana, Kūrma, Linga, Viṣṇu, and वामनपुराणस्य हिन्दीभाषायामनुवादः वाराणसीनिवासिना पं० गोपाळचन्द्र-शास्त्रिणा क्रियते । इदं पुराणम् आंग्लभाषायामपि अनूदितं भविष्यति । अनुवादः समीक्षात्मकपाठेन सहैव प्रकाशितो भविष्यति ।

## २. पुराणसम्बन्धीनि अन्यकार्याण

(अ) मद्रासनगरे स्वल्पमस्यपुराणस्य केचित् अन्येऽपि अध्यायाः डा० राघवनमहोदयैः सम्पादिताः। चत्वारोऽध्यायाः 'पुराण' पित्रकायाः ६ भागे, १ अङ्के प्रकाशिताः। षडध्यायाः (५-१०) अस्मिन्नङ्के प्रकाश्यन्ते। अप्रेपि अध्यायाः संपाद्यमाना वर्त्तन्ते। डा० राघवन्महोदयानां पुराणपित्रकायां प्रकाशितौ द्वौ निबन्धौ—एकः पुराणार्थसंग्रहविषयको अपरश्च पुराणार्थसंग्रहस्य नीति-अध्यायः (एकादशोऽध्यायः) एकत्र पुस्तकरूपेण प्रकाशितौ विदुषामुपयोगाय। अग्रिमाध्यायानां संपादनं प्रचलति। तस्य दानाध्यायानामि निबन्धग्रंथेषु उपलब्धानां दानवचनानां साहाय्येन संवादः क्रियते।

(आ) पादसूची—लिङ्गगरुडपुराणयोः पादसूची पूर्णा जाता। वामनपुराणस्य सम्पादनकार्यानुरोधेन साम्प्रतं पादसूचीकार्यं स्थगितं वर्त्तते।

## (इ) निबन्धेभ्यः पुराणोद्धरणानां संग्रहः

ऋत्यकरुपतरुमन्थस्य अन्येषां चतुर्णां खण्डानामुद्धरणानि संगृहीतानि । वामनपुराणकार्यानुरोधेन इदमपि कार्यं सम्प्रति स्थगितम् ।

## (ई) आधारपाढस्य लेखनम्

अग्निपुराणस्य आधारपाठलेखनम् समाप्तम् । तस्य मूलपाठेन तुलनाऽिष कृता । अद्य यावत् दशमहापुराणानाम्—मत्स्य-वामन-कूर्म-ब्रह्म-विष्णु-मार्कण्डेय-अग्नि-लिङ्ग-गरुड-ब्रह्माण्ड—इत्येतेषाम् आधारपाठस्य लेखनं संपूर्णम् । अन्य-पुराणानामाधारपाठलेखनकार्यं सम्पति स्थगितम् ।

## ( उ ) पुराण-विषयसूची

यथा पूर्वविवरणे सूचितं षण्णां महापुराणानाम्—मत्स्य-वामन-कूर्म-लिङ्ग-विष्णु-मार्कण्डेय-इत्येतेषां—विषयसूची पूर्णा वर्तते । आसां विषयसूचीनां Markandeya) have been prepared. Out of which those of the Vamana and the Kurma have already been published in the 'Purāna' Vol. III. The subject-index of the Visnu Purāna is being published in the present issue of the Bulletin. A brief summary of this Sanskrit subject-index is also being given in English along with it. As the English translation of this Purana by such eminent scholar as Wilson, is available, it is hoped that the scholars will find it convenient to go through this subjectindex of the Visnu Purana, and will kindly send their suggestions.

#### (3) 'PURĀNA' BULLETIN

Up till now seven annual volumes consiting of 14 issues and about 3000 pages containing articles on almost all the Mahāpurānas and some of the Upa-puranas have been published. With the present issue it starts its eighth Volume. The demand from the scholars and institutions for this Bulletin has been increasing. Besides the eight foreign Journals which are being received in exchange for the 'Purāṇa' as reported in Purāṇa VI 1., we have now also received in exchange the following three important Journals from the Asian countries:-

- 1. Journal of the Siam Society, Bangkok;
- 2. Journal of the South Seas Society, Singapore,
- 3. Bulletin of Tibetology from the Namgyal Institute of Tibetology, Gangtok, Sikkim.

We are thankful to these institutions for this exchange.

#### (4) THE LIBRARY OF THE PURANA DEPARTMENT.

The Library of the Purana Department has been re-organised on the modern colon-system by Shri R. R. De, B. Sc., Lib.Dip., the Special Officer of the Saraswatī Bhandara of the Ramnagar Fort. We are thankful to him, and also to the Maharaja Banaras Vidyā Mandir Trust for lending his services to our Purana Department for this purpose.

This Library contains books mostly on the Puranas, besides books on other branches of Indology, such as Epics, Veda, Dharmaśāstra etc. It also contains several good Indological publications in German, French and Tibetan. The Hebrew University, Jerusalem, has presented to the library of the Kashiraj Trust a set of valuable works on the Jewish culture.

वामनकूर्मपुराणयोर्विषयसूच्यौ पुराणपत्रिकायास्तृतीयमागे प्रकाशिते । 'पुराण' पत्रिकाया अस्मिन् अङ्के विष्णुपुराणस्य विषयानुक्रमणी प्रकाशिता वर्तते । संस्कृतमाषायां प्रस्तुताया अस्या विषयसूच्या आङ्ग्लभाषायामपि संक्षेपोऽत्र पदीयते । विष्णुपुराणस्य डा० विरुसनमहोदयेन कृत आंग्लानुवादः सुलभः वर्तते, अतः अस्याः सुच्या उपयोगे विद्वद्भ्यः सौकर्यं भविष्यति । तेषां सम्मतिः प्रार्थिताऽस्ति ।

## (३) 'पुराणम्' पत्रिका

अद्याविष पुराणपत्रिकायाः चतुर्दशखण्डात्मकाः सप्त अङ्काः प्रकाशिताः, येषु समस्तानि महापुराणानि कानिचित् उपपुराणानि चाधारीकृत्य ठेखा वर्तन्ते । वर्त्तमानादङ्कात् पत्रिकाया अस्याः अष्टमो वर्षः प्रारब्धः । विश्वविद्यालयानां शोध-संस्थानां भारतीविद्याविदां च अस्याः पत्रिकायाः भेष्सा उत्तरोत्तरं वर्द्धमानाऽस्ति । पुराणपत्रिकायाः VI 1 अङ्के सूचितं यदस्याः पत्रिकाया विनिमयार्थम् अष्टौ विदेशीयपत्रिका अप्यत्र प्राप्यन्ते । इदानोमधोनिर्दिष्टा पत्रिका अपि एशियादेशेभ्यः प्राप्यन्ते —

- १. इयाम सोसाइटी, बैंकाक इत्यस्य पत्रिका
- २. साउथ सीज् सोसाइटी सिंगापुर, इत्यस्य पत्रिका
- ३. नांग्याल इन्स्टीट्यूट आव टिवेटोलाजी, गंगटोक, 'सिकिम' इत्यस्य बुलेटिन आव टिवेटोलाजी इत्याख्या पत्रिका। वयमेतद्र्थम् आभ्यः संस्थाभ्यः परं कृतज्ञाः स्मः।

### (४) पुराणविभागस्य पुस्तकालयम्

पुराणविभागस्य पुस्तकालयं रामनगरदुर्गस्थसरस्वतीभण्डारस्य पुस्तकालयस्य विशेषाधिकारिषदं भजता श्री आर. आर. देव, बी. एस-सी., महोदयेन आधुनिक 'कोलन' पद्धत्या पुनस्संघटितम् । वयं तस्मै तथा च महाराजबनारस-विद्यामन्दिरन्यासाय च कृतज्ञाः स्मः ।

अस्मिन् पुस्तकालये भारतीविद्यायाः वेद-धर्मशास्त्र-कान्यादिविषयैस्सह मुख्यतः पौराणिकग्रंथा एव वर्तन्ते । जर्मन-फ्रेञ्च-टिबेटनभाषासु लिखिताः अपि प्राच्यविद्या-सम्बन्धिनः बहुवः ग्रन्था सन्ति अस्मिन् पुस्तकालये । जेरुसेलमस्थ-हिज्जूविश्वविद्या-लयेन काशिराजन्यासाय यहूदीसंस्कृति विषयकाणि पुस्तकान्यप्युपहारीकृतानि ।

#### (5) VEDA PĀRĀYAŅA

The Pārāyaṇa (recitation of the whole text) of the Kāṇva Śākhā of the Śukla Yajurveda from memory with its Saṁhitā. Pada and Krama pātḥas was done in the Trust temple of Sivala Palace during the Bright-half of the month of Āṣāḍha, from June 30 to July 13, 1965. The reciter was Pt. Laksmi Kanta Ghanapathi of Varanasi.

There are very few reciters of the Atharvaveda from memory in India. So the Maharaja Dharmakārya Nidhi Trust has undertaken to encourage the memorising of the Atharvaveda. The work of memorising the whole of the Atharvaveda Samhitā together with its Brāhmaṇas, Āraṇyakas and Upaniṣads has been entrusted to Pt. Jagannatha Sastri Pathaka of Varanasi who is being paid a monthly stipend of Rs. 100/- for this purpose.

His Highness the Maharaja of Banaras, Dr. Vibhuti Narain Singh, has donated to the Maharaja Banaras Vidyāmandir Trust a sum of Rs. 20,500/- to be utilised as corpus for awarding stipend to the family of a Vedic scholar which for three generations at least, carries on memorising the Sāmaveda, its Brāhmaṇas and Upaniṣads.

#### (6) VYASA UTSAVA

The Vyāsa Utsava, comprising (1) the Veda Pārāyaṇa and (2) the Purāṇa Goṣṭhī was celebrated in the Sivala Palace at Varanasi from June 30 to July 13, 1965 during the whole of the bright half (Sukla pakṣa) of Āṣāḍha. The Purāṇa goṣṭhī was organised on the 11th of July on the occasion of the Vyāsa Pūjā.

The Purāṇa Goṣhṭhī was presided by His Highness Maharaja Dr. Vibhuti Narain Singh and was attended by a number of the local scholars and Pandits, such as Pt. Rajeswar Sastri Dravid, Principal of the Sānga-Veda Vidyālaya Varanasi, Dr. V. S. Agrawala and Dr. S. Bhattacharya, both Professors of the Indology College, Banaras Hindu University, Major S. L. Dar, Registrar of the Banaras Hindu University, Professor Baldeva Upadhyaya, the present Director of the Research Deptt. of the Vārāṇaseya Sanskrit University and others. Prof. J. H. Dave, Hon. General

### (५) वेदपारायणम्

आषाद्रशुक्कपक्षे (३० जून—१३ जुलाई १९६५) शुक्कयजुर्वेदस्य काण्यशाखायाः संहिता-पद-कमसहितं सम्पूर्णमन्थस्य कण्ठस्थं पारायणं शिवाला-प्रासादे कारितम् । इदं पारायणं वाराणसीनिवासिना पं० लक्ष्मीकान्तघनपाठि-महोदयेन कृतम् ।

भारतवर्षे अथर्ववेदस्य कण्ठाग्रपारायणकर्तारो विरला एव सन्ति । महाराजधर्मकार्यनिधिन्यासेन अथर्ववेदस्य कण्ठाग्रीकरणाय प्रेरणा प्रदीयते । ब्राह्मण-आरण्यक उपनिषदैः सह समग्राथर्वसंहितायाः कण्ठाग्रीकरणस्य भारः वाराणसीनिवासिना पं० नगन्नाथशास्त्रीफटकमहोदयेन स्वीकृतः । तस्मै १०० रूप्यकाणां मासिकी वृत्तिरिष दीयते ।

काशिनरेशौः तत्रभवद्भिः डा० विभृतिनारायणसिंहमहोदयैः महाराजबनारस-विद्यामन्दिरन्यासाय २०५०० रुप्यकाणि समर्पितानि । अस्य विनियोगः तादृशस्य वैदिकविदुषः परिवाराय वृत्तिप्रदाने भविष्यति यस्य वंशो न्यूनतः अन्वयत्रये ब्राह्मणोपनिषदैः सह सामवेदस्य कण्ठाग्रीकरणं निरन्तरं प्रचलति ।

## (६) व्यासोत्सवः

व्यासोत्सवे वेदपारायणं पुराणगोष्ठी च संयोज्येते । अयमुत्सवो वाराणस्यां शिवालापासादे आषादमासस्य सम्पूर्णे शुक्कपक्षे (३० जूनतः १३ जुलाई १९६५ यावत् ) कृतः । पुराणगोष्ठी ११ जुलाई दिवसे व्यासपूजाया अवसरे संवृत्ता ।

पुराणगोष्ट्याः आध्यक्ष्यं तत्रभवद्धिः काशिनरेशैः डा० विभृतिनारायणसिंह-महोदयैः कृतम्। गोष्ट्यां बहवः विद्धांसः उपस्थिता आसन्, यथा—वाराणसीस्थ-साङ्गवेदविद्यालयस्य प्राचार्यः पं० राजेश्वरशास्त्री द्रविडः, हिन्दुविश्वविद्या-लयस्य प्राध्यापकौ डा० वासुदेवशरण अम्रवालः डा० सिद्धेश्वरभद्दाचार्यश्च, हिन्दुविश्वविद्यालयस्य कुलसचिवः मेजर एस. एल. दरः, वाराणसेयसंस्कृत-विश्वविद्यालयस्य अनुसंधाननिदेशकः प्रो० बलदेव उपाध्यायः। मुम्बय्याः भारतीयविद्यामवनस्य नियामकः संस्कृतविश्वपरिषदो मन्त्री श्री जे. एच. दवे Secretary of the Sanskrit Vishva Parishad, and Acharya T. A. V. Dikshitar, Joint General Secretary of the Parishad, both of the Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay, were good enough to attend the function.

The report of the activities of the Kashiraj Trust was read in the beginning, and then important discussions were held on the various aspects of the work, and useful suggestions were given by the scholars. Dr. V. S. Agrawala proposed that the University Grants Commission be approached for granting stipends to the scholars memorising Vedas, and the proposal was accepted unanimously. One young scholar Sri Vinayak Ramachandra Ratate also placed a chart on Purāṇas, prepared by him, before the scholars present in the meeting. The chart was much appreciated.

### (7) PURĀŅA PĀŢHA AND PRAVACANA

In the month of the last Āṣāḍha from July 1 to 8, the Saundaryalaharī of Śrī Śaṅkarācārya was recited and discourses on it were given by Pt. Thakur Prasad Dvivedi of our Purāṇa Department. In the month of the last Kārtika (Oct.-Nov.) the Nāradīya-Purāṇa was recited and the discourses on it were given by Pt. Anant Sastri Phadake, the retired Purāṇa Professor of the Vārāṇaseya Sanskrit University.

## (8) MAHĀRĀNĪ RAM RATNA KUNVARI SANSKRIT PĀŢHAŚĀLĀ

The Mahārānī Ram Ratna Kunvari Sanskrit Pāṭhaśālā, working under the supervision of the Kashiraj Trust, is preparing students for the Prathamā and the Madhyamā examinations of the Vārāṇaseya Sanskrit University. Students are given a monthly stipend of Rs. 15/. The teachers and the students of the Pāṭhaśālā also work in the Purāṇa Deptt. in their leisure time. This increases their knowledge and also gives them some monitory help.

#### (9) THE PURĀŅA-GOŞŢHĪ OF THE VĀRĀŅSEYA SANSKRIT UNIVERSITY

Two scholars of our Purāṇa Department, Sri Anand Swarup Gupta and Pt. Madhvacharya Adya, read their papers in Sanskrit महोदयः, एवं संस्कृतविश्वपरिषदः सहमन्त्री आचार्य टी. ए. वी. दीक्षितार महोदयः इत्युभाविप विद्वांसी समारोहे उपस्थिती आस्ताम् ।

प्रारम्भे न्यासस्य कार्यविवरणं पठितम् । तदनन्तरंकार्यस्य विभिन्नाङ्गानां विद्वद्भिः विमर्शः कृतः । डा० वी. एस. अग्रवाल महोदयैः प्रस्तावितं यद् वेदानां कण्ठाग्रकरणे प्रवर्त्तमानेभ्यो विद्वद्भग्यः मासिकवृत्तिप्रदानाय 'विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग' नाम्नी संस्था प्रार्थनीयेति, प्रस्तावः सर्वसम्मत्या स्वीकृतः । विनायक रामचन्द्र रटाटे नाम्ना युवकेन पुराणविषये रचितम् एकं चित्रमिप प्रदर्शितं तत्र । इदं चित्रं उपस्थितैः जनैः प्रशंसितम् ।

### (७) पुराणपाठः प्रवचनश्च

आषाद्रमासे ( जुलाई १ तः ८ यावत् ) श्रीशङ्कराचार्यस्य सौन्दर्यलहर्याः पारायणं कृतम् तथा तद्विषये पुराणविभागीयेन पं० ठाकुरप्रसादद्विवेदिना प्रवचनं कृतम् । गतकार्तिकमासे (अक्टूबर-नवम्बर) नारदीयपुराणस्य पारायणं जातम् तद्विषये च वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य अवकाशप्राप्तपुराणप्रधानाध्यापकेन पं० अनन्तशास्त्रिफडकेमहोदयेन प्रवचनं कृतम् ।

## (८) 'महारानी रामरत्नकुँवरि' संस्कृतपाठशाला

काशिराजन्यासस्य निरीक्षणे 'महारानी रामरत्नकुँवरि' संस्कृतपाठशाला प्रचलति या वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य प्रथमापरीक्षार्थं मध्यमापरीक्षार्थं च छात्रान् शिक्षयति । छात्रेभ्यः १५ रूप्यकाणां मासिकछात्रवृत्तिः दीयते । पाठशालायाः शिक्षकः छात्राश्च अवकाशसमये पुराणविभागेऽपि कार्यं कुर्वन्ति । अनेन तेषां ज्ञानवृद्धिः आयवृद्धिश्च भवति ।

## (९) वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य पुराणगोष्ठी

संस्कृतविश्वविद्यालये गत-सितम्बरमासस्य प्रथमे सप्ताहे संयोजितायां पुराण-गोष्ठ्यां पुराणविभागस्य श्री आनन्दस्वरूपगुप्तः, श्री माध्वाचार्य आद्यश्च सिद्धि- on 'Siddhis' in the Purānas in a Purāna-Gosthī organised by the Vārānaseya Sanskrit University in the first week of September last. Some of the scholars who had come from different places of India to participate in this Purana-Gostha also visited our Purāņa Department at Ramnagar, and highly appreciated its work.

### (10) RĀMALĪLĀ

The religious and cultural importance of the Rāmalīlā organised every year in September-October at Ramnagar by His Highness Kashinaresha is well recognised. Apart from the huge congregation, scholars and other distinguished persons who come to Varanasi make it a point to visit this famous Rāmalīlā of Ramnagar. This year Mr. Chester Bowles, the U.S. Ambassador in India, and Mrs. Bowles, came to Ramnagar to visit the Rāmalīlā celebrations and were very much pleased to witness the spectacle. Mr. Nessim Shallon of the Technical Assistance Board, United Nations, New Delhi, and his family also visited the Ramnagar Rāmalīlā this year. He writes to His Highness in his letter of the 12th October, 1965 as follows:-

"My wife and children as well as myself enjoyed tremendously our experience in being present as your guests at the Rāmalīlā celebrations in Ramnagar. This admirable spectacle, deeply rooted as it is in ancient traditions, enlightened us about the Ramayana and what it means to India. In recent visits to Thailand and Malaysia my wife and I had seen how widely the Rāmāyana is spread beyond the borders of India; to be able to see it enacted in its original form here, where it was born, was most exciting."

We are thankful to these distinguished visitors for their interest in Indian culture and specially in the Ramalila.

### DISTINGUISHED VISITORS

Sri K. M. Munshi, the Chairman of the Bharatiya Vidya Bhavan Bombay, was the guest of His Highness in the Nadesar Palace, when he came to Varanasi to deliver a series of lectures in Banaras Hindu University on the Gandhian Philosophy. As usual, he took keen interest in the work of the All-India Kashiraj Trust.

विषये निबन्धं पठितवन्तौ । भारतवर्षस्य विभिन्नस्थानेभ्यः गोष्ठ्याम् आगताः केचिद् विद्वांसः रामनगरस्य पुराणविभागेऽपि आगताः, तस्य कार्यं च प्रशंसितवन्तः ।

## (१०) रामलीला

प्रतिवर्षे सितम्बर-अक्टूबरमासयोः रामनगरे तत्रभवता काशिराजेन आयोजितायाः रामलीलाया धार्मिकं सांस्कृतिकं च महत्त्वं सुप्रतिष्ठितमेव। अन्ये ऽपि ये विद्वांसः विशिष्टाः सज्जनाश्च वाराणसीमागच्छन्ति ते अस्याः प्रसिद्ध-रामलीलायाः दर्शनार्थमप्यागच्छन्ति । अस्मिन् वर्षे अमेरिकादेशस्य भारतस्थो राजदृतः श्री बावेल्स महोदयः सब्दनीकः रामलीलादर्शनार्थं रामनगरमागतः, दर्शनेन प्रीतश्च जातः । 'यूनाइटेडनेशन्स' इत्यस्य 'टेक्निकल असिस्टैन्स बोर्ड' संस्थायाः श्री नेसीम सैलोन (Mr. Nessim Shallon) अपि रामलीलां दृष्टवान्। तेन १२ अक्टूबर १९६५ दिनाङ्किते महाराजं प्रति प्रेषिते पत्रे इत्थं लिखितम्—

'रामनगरस्य रामछीछायाः उत्सवे भवतः अतिथिख्रपेण वर्तमानाः मम पत्नी, बालकाः अहम् च अतीव प्रसन्नतामनुभ्तवन्तः । भारतीयपरम्परायां बद्धमूलम् इदं प्रशस्तं दृश्यम् अस्माकं 'मलाएशिया' 'थाइछैण्ड' इत्यनयोर्देशयोः भ्रमणे अहं मम पत्नी च दृष्टवन्तौ अनुभूतवन्तौ च यत् रामायणं भारतदेशस्य सीमायाः पारेऽषि व्याप्तम् वर्तते । रामछोछाया उद्भवस्थाने भारतवर्षे अस्य रामछीछा-समारोहस्य दर्शनमतीवाह्णादकरमासीदस्माकिमिति ।

वयं एतेभ्यः विशिष्टदर्शकेभ्यः तेषां भारतीयसंस्कृतौ विशेषतः रामलीलायां च रुचिपदर्शनाय कृतज्ञाः स्मः ।

### विशिष्टा अतिथयः

यदा काशिहिन्दुविश्वविद्यालये 'गान्धीदर्शन' विषये व्याख्यानं दातुं श्री के. एम्. मुन्शीमहाशयः आगतः तदा सः महाराजकाशिनरेशस्य नदेसरपासादे अतिथिः आसीत्। पूर्ववत् सः काशिराजन्यासस्य कार्यविषये स्वरुचिं प्रदर्शितवान्।

On November 21 the President of India, Dr. Radhakrishnan, came to Varanasi to deliver the convocation address in the Vārāṇaseya Sanskrit University, and was the guest of His Highness in the Nadesar Palace. Immediately after alighting from his plane the President was pleased to enquire of His Highness, who was there to receive him, about the progress of the work of the Matsya Purāṇa edition by Dr. V. Raghavan. The publications of the Kashiraj Trust were presented to him.

The Vāṛāṇaseya Sanskrit University in a special Convocation conferred the degree of Vācaspatī on his Excellency Mr. Andre Malraun, Minister of State for Cultural Affairs, French Republic. His Excellency took keen interest in the Purāṇa work of the Kashiraj Trust in his talks with His Highness Dr. Vibhūti Naraina Singh. His Excellency was presented publications of the Trust by His Highness.

His Excellency the Ambassador of France in India, during his short visit to Varanasi a few months back, took very keen interest in the Purāṇa work of the Kashiraj Trust. In his two letters dated September 7th and 16th to His Highness His Excellency has been good enough to give the valuable information about the names and addresses of some Indological institutions and scholars in France to whom the Purāṇa Bulletin should be sent. We are much thankful to His Excellency for this useful information.

In the last week of November a breakfast was given by His Highness in Ramnagar Fort to the Mayors of India who came to Varanasi to participate in the All-India Mayors' Conference. They were made acquainted with the Purāṇa work of the Trust and publications were presented to them.

Their Majesties, the King and the Queen of Nepal, were the guests of His Highness Maharaja Kashinaresh in the Nadesar Palace during their three days' visit to Varanasi (from 29th November to 1st December, 1965). A welcome address in Hindi was presented to Their Majesties by the All-India Kashiraj Trust on the 29th November. The address was read by Maharaj Kumar

गत २१ नवम्बरितथ्यां भारतगणराज्यस्य राष्ट्रपितः डा० राधाकृष्णन् महोदयः वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालये दीक्षान्तभाषणं कर्जुभागतः । स नदेसरभवने तत्रभवतः महाराजस्यातिथिश्च बभूव । वायुयानात् अवतरणकाले एव स डा० राघवन् महोदयेन सम्पाद्यमानस्य मत्स्यपुराणस्य प्रगतिविषये महाराजं पृष्टवान् । काशिराजन्यासस्य प्रकाशनानि राष्ट्रपितमहोदयेभ्यः उपहारीकृतानि ।

यदा वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य विशेषदीक्षान्तसमारोहे फ्रांसदेश-गणराज्यस्य सांस्कृतिकमंत्रिणे श्री आन्द्रे मालरो महोदयाय 'वाचस्पति' उपाधिः प्रदत्ता आसीत्, तदा स महाराजेन काशिराजेन डा० विभूतिनारायणसिंहेन सह स्ववार्तालापे पुराणकार्यविषये स्वरुचि प्रदर्शितवान् । अस्मै महोदयाय न्यासस्य फ्रकाशनान्यपि प्रदत्तानि ।

फ्रांसदेशस्य भारतिस्थतो राजदूतोऽिष यः कियन्मासपूर्वं वाराणसीमागतः आसीत्, काशिराजन्यासस्य पुराणकार्ये स्वरुचि प्रदर्शितवान् । सितम्बर ७ तथा १६ दिनाङ्कितयोः पत्रयोः राजदूतमहाशयः फ्रांसदेशस्थितानां केषाञ्चित् प्राच्यिवद्याविद्यां संस्थानां च नामस्थानादिविषये सूचनां दत्तवान् । वयं राजदूतमहोदयं प्रति अस्ये सूचनाये कृतज्ञावर्तामहे ।

नवम्बरमासस्यान्तिमे सप्ताहे काश्याम् आयोजिते नगरप्रमुखसम्मेलने आगतेभ्यः नगरप्रमुखेभ्यः तत्रभवता काशिराजेन रामनगरदुर्गे प्रातराश्चगोष्ठी संयोजिता । ते पुराणविभागस्य कार्यैः अवगताः कृताः तेभ्यः काशिराजन्यासस्य प्रकाशनानि च प्रदत्तानि ।

तत्रभवान् नेपालनरेशः तत्र भवती नेपालराज्ञी च काशीयात्रायां तत्रभवतः काशीनरेशस्य नदेसरपासादे अतिथी आस्ताम् (२९ नवम्बर—१ दिसम्बर १९६५ यावत्)। हिन्दीभाषायां स्वागताभिनन्दनं राजदम्पत्योः अपितम् काशिराजन्यासद्वारा २९ नवम्बरतिथ्याम्। स्वागताभिनन्दनं काशिराजन्यासस्य न्यासीपदमलङ्कुर्वता महाराजकुमार डा० रघुवीरसिंहेन पठितम्।

Dr. Raghubir Singh, a trustee of the All-India Kashiraj Trust. Panditaraj Sri Rajeswar Sastri Dravid, Padmabhushan, read a *Praŝasti* (praise) of Their Majesties in ten ślokas composed by the learned Panditaraj himself. This welcome address and the 'Praŝasti' are being published elsewhere in this issue of the 'Purāṇa' bulletin.

On behalf of Their Majesties Hon'ble Sri Kirtinidhi Vista, the Vice Chairman of the Council of Ministers and the Foreign Minister of Nepal, in reply thanked His Highness and the All-India Kashiraj Trust and laid emphasis on the cultural relation between India and Nepal coming down from the ancient time. A tea party was organised by His Highness in honour of their Majesties on the same evening, in which more than 200 persons of the City were entertained. His Highness Maharaja Kashinaresh presented the welcome address and the prasasti in an ivory casket in the form of the model of the Ghurdaur (Maharaja's ceremonial barge). Their Majesties were also presented the publications of the Trust.

In the morning of the next day, their Majesties came to the Ramnagar Fort to pay a visit to His Highness. A breakfast to Their Majesties was arranged on this occasion. Their Majesties also visited the paintings and the manuscripts-collections of the Maharaja's Sarasvatī Bhaṇḍāra and were pleased to see them.

In December, Sri Chandra Bhanu Gupta, the former Chief Minister of U. P. and Sri Raja Rao were the guests of His Highness in the Nadesar Palace. They also took keen interest in the Purāṇa work of the Trust.

The following scholars visited the Purāṇa Department of the Kashiraj Trust and saw its Purāṇa Work:—

- (1) Dr. A. D. Pusalker, director of the Research Department of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, and a distinguished Purāṇa scholar, who is also a contributor to our 'Purāṇa' bulletin. (July 12)
- (2) Prof. J. H. Dave, Director of the Bharatiya Vidya Bhawan Bombay. (July 12)

पिण्डितराजश्रीराजेश्वरशास्त्रिद्वविड्महोदयः स्वरिचतिर्दशप्रशस्तिश्चोकैः अभिनन्दनं च कृतवान् । इदं स्वागताभिनन्दनं एषा प्रशस्तिश्च पत्रिकाया अस्मिन्नेव अङ्के प्रकाशिते वर्तेते ।

माननीयः श्रीकीर्तिनिधिविष्टमहोदयः, यः नेपालदेशस्य मंत्रिपरिषदः उपाध्यक्षः विदेशमंत्री चास्ति, महाराजाय काशिनरेशाय काशिराजन्यासाय च धन्यवादं प्रदर्शितवान् । तथा च भारतनेपालदेशयोः प्राचीनकालतः आगतस्य सांस्कृतिक-सम्बन्धस्य स्मरणं कारितवान् ।

तत्रभवता काशिराजेन तस्यामेव सन्ध्यायां राजदम्पत्योः सम्माने उपाहार-गोष्ठी आयोजिता यस्यां शतद्वयाधिकाः प्रतिष्ठिता नागरिकाः सम्मिलिताः आसन् । तत्रभवान् महाराजकाशिराजः अभिनन्दनपत्रं प्रशस्तिञ्च नेपालाधिपतये हस्तिदन्त-निर्मिते स्व 'घुड़दौड़' इति नाम्न्या नौकायाः आकारवित पिटके समर्पितवान् । राजदम्पतीभ्यां न्यासस्य प्रकाशनानि अपि अपितानि ।

अपरदिवसे प्रातःकाले राजदम्पती रामनगरदुर्गे आगतवन्तौ । अस्मिन्नवसरे प्रातराशगोष्टी तयोः सम्माने आयोजिता आसीत् । राजदम्पती महाराजस्य सरस्वतीभण्डारस्य हस्तलेखान् चित्राण्यपि च दृष्टवन्तौ हृष्टौ च सञ्जातौ ।

दिसम्बरमासे उत्तरप्रदेशस्य पूर्वमुख्यमंत्री श्रीचन्द्रभानु गुप्तः तथा श्रीराजारावः नदेसरभवने महाराजस्य अतिथी आस्ताम् । तौ अपि पुराणकार्ये स्वरुचिं प्रदर्शितवन्तौ ।

अधोनिर्दिष्टा विद्वांसः अपि न्यासस्य पुराणविभागं दृष्टवन्तः तत्कार्यञ्च प्रशंसितवन्तः—

- १. डा॰ ए. डी. पुसालकर:—भण्डारकरमाच्यशोधसंस्थानस्य निदेशकः पुराणनिशोषज्ञश्च
- २. श्री जे. एच. दवे—भारतीयविद्याभवनस्य निदेशकः 24

- (3) Sri Nauharia Ram, Deputy Adviser to the Ministry of Education, Govt. of India. (Aug. 26-27).
- (4) Pt. Dinanath Shastri, Principal, Ramadala Sanskrit Mahavidyalaya, Delhi. (Sept. 2).
- (5) Dr. A. N. Jani, Head of the Sanskrit Deptt., M. S. University, Baroda. (September 2).
- (6) Sri V. V. Paranjape of the Deccan College, Poona. (September 2).
- (7) Prof. V. Venkatachalam, Head of the Sanskrit Deptt., Vikrama University, Ujjain. (September 2).
- (8) Dr. Niraja Kanta Chaudhari, M.A., LL.D, Ph.D., I.P. (Retired). (September 8).
- (9) Prof. K. V. Sarma, Curator of the Vishweshwaranand Vedic Recearch Institute, Hoshiarpur (Punjab). (Nov. 23).

These scholars appreciated the work of the Purana Department. We are thankful to all these scholars for their interest in our work.

- ३. श्री नौहरियाराम-भारत सरकारस्य शिक्षाविभागस्य उपपरामर्शदाता
- ४. पं० दीनानाथशास्त्री—दिल्लीस्थरामदलसंस्कृतमहाविद्यालयस्य प्राचार्यः
- ५. डा० ए. एन. जानी— बड़ौदा विश्वविद्यालयीयसंस्कृतविभागाध्यक्षः
- ६. श्री वी. वी. परांजपे—दक्तनकालेज, पूना
- ७. प्रो० वी. वेङ्कटाचलम्—उज्जैन विश्वविद्यालयीयसंस्कृतविभागाध्यक्षः
- ८. डा० नीरजकान्त चौधरी
- प्रो० के. वी. शर्मा—विश्वेश्वरानन्द्वैदिकशोधसंस्थानस्य क्यूरैटर्-पद्धारकः
- इमे विद्वांसः पुराणकार्यं प्रशंसितवन्तः । वयम् एतेभ्यः कृतज्ञाः स्मः ।

#### BOOK-REVIEW

সহ-নহার (Planets and Stars).—In Hindi. By (Dr.) Sampuranand. Published by the Hindustani Academy, Allahabad. First edition, 1965. Pages 8 + 35. Plus 34 plates on good art paper. Price Rs. 15.25.

The present work is a revised and amplified version of the four Radio-talks by the author, which were broadcast in Hindi in 1960 from the Lucknow-station of Akashbani. Its author, Dr. Sampurnanand, besides being a recognised politician and administrator, is also a versatile scholar, a well-known astronomer and a great thinker. His present work, though dealing with an astronomical subject, has a Vedic and Philosophical background, and also a Purāṇic touch.

The author has developed a technique to present a highly technical and scientific subject, such as astronomy, in simple and lucid Hindi for the benefit of the common reader. His famous work 'पृथ्वी से सर्वाप-मण्डल तक', dealing with space-travelling, is a kind of novel which presents scientific truths in the garb of a highly interesting and imaginary plot. His present work 'मह-नश्चन', though dealing with the facts and principles of astronomy regarding this subject in a factual style, also keeps the reader interested throughout.

The first talk on 'ग्रह और उनकी उत्पत्ति' covers pages 1-10 of this book. It deals, in a very interesting manner, with the birth of the planets. He draws a distinction between planets and grahas, and explains how Rāhu and Ketu, which are really two nodes formed by the intersection of the sun's ecliptic and the moon's orbit at two points, are rightly recognised as the grahas in Indian astronomy, and the worship of the nine grahas (नवप्रदेश्चा), therefore, includes the worship of Rāhu and Ketu also. In this connection he also refers to the Purāṇic legend of Amṛta-manthana which connects Purāṇic mythology with an astronomical pheno-

mena. The author is aware of the fact that in the Purāṇas mythology is intimately connected with almost every branch of human knowledge, and so even a scientific truth has a mythological explanation.

For explaining the relation of the sun with the planets and of the planets with their satellites the author has mentioned and explained the three theories, vis. (1) of Laplase, (2) of Jeans and (3) of the Russian astronomer Schmidt. He has also discussed the possibility of life on the planets.

The second talk—'तारे उनको उत्पत्ति, भेद तथा गतियाँ'—(pages 11-18) discusses the stars or nakṣatras and the star-clusters in their various aspects. He has also dealt with the position of the stars and the sun on the Ākāśa·Gaṅgā or the Milky way.

The third talk on 'नीहारिकाएं और उनकी उत्पत्ति' covers pages 19-26. The Nīhārikās or galaxies were not mentioned in astronomical works of ancient times; but in modern astronomy they have acquired much importance. The galaxy known as the Akāśa-Gāṅgā or the Milky way is familiar to us. But the vast firmament contains millions of such galaxies; and even beyond these galaxies of stars there is no empty space, but it is filled with gases and stardusts, and hence is called as 'रजसो विमान' in the language of the Vedas. The universe is sustained by the energy radiated form the sun (which is also a star), hence in the Vedas the sun is called the soul of the universe, animate and inanimate, ( सूर्य आत्मा जगतस्तर्थुषश्च ). It is in fact the life of all the created beings ('प्राण: प्रजानामुदयत्येष स्थै')

The author has discussed the formation of stars and galaxies from these gases and star-dusts. These galaxies are receding away from each other, showing that the universe is continuously expanding. Here the learned author poses a very relevant question—Universe expanding in what? In Space? But the space is itself a part of the universe. Then it may be expanding in Time which is both begenningless and endless! On account of the continuous radiation of energy from the luminaries a time may come when the universe will become static and

Dissolution will follow. And here again the learned author proses a very important metaphysical question—Will some unknown Power again put the Wheel of Creation in motion? In his opinion the process of Creation and Dissolution may go on incessantly in the womb of the Infinite Time; and this reminds us the following statement of the Visnu-Purāṇa:—

## अनादिर्भगवान् कालो नान्तोऽस्य द्विज विद्यते । अन्युच्छित्रास्ततस्त्वेते सर्गस्थित्यन्तसंयमाः ॥ (1. 2. 26).

In his fourth talk—ज्योतिष और दर्शन—(pp. 27-35) the author comes before us as a unique combination of a scientist-astronomer and a philosopher-thinker. He peeps beyond the empirical world of matter and goes to the very bottom of the problem-Whence this wonderful world? Whither does it go with all its grandeur and incessant motion? He enquires into the ultimate source of this universe—a point where both science and philosophy, physics and metaphysics, are bound to meet. Does this universe really come out of the non-existent (asat) as the scientists would have us believe? But how can existence come out of non-existence - कथमसतः सजायेत, सन्तेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' (Chā. Up. VI. 2, 2). So the universe must have sprung from Sat, the undistinguished and unmanifest non-material eternal Principle of Existence. The author, however, rises above the relative notions of sat and asat, for according to him the question of sat or asat, as the source of the universe, pertains only to the lower strata of thinking, but in the higher sphere of thought there is no such thing as sat or asat, and therefore the reasoning that 'existence cannot come out of non-existence' is not applicable there. In the words of the author 'भले ही यह कहा जाय कि कुछ नहीं से कुछ की उत्पत्ति नहीं होती, परन्त यह तर्क तो नोचे के स्तर के लिये है। जिस ऊंचे स्तर पर सर्जन और विलय की बात होती है वहां यह तर्क नहीं लगता।' (p. 31). The Vedic seer also refers to this higher level of thought, when he remarks:

'नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं, नासीद् रजी नो व्योमा परी यत् (RV. X. 129.1). In the end, the learned author appeals for the study of astronomy even by the common man, for which the vast firmament with its sparkling stars is the right and free observatory which may be studied even with the naked eyes. He advocates the use of cheap instruments such as the vamsa-nalikā (bamboo-pipe) which was used in their study by our ancient Indian astronomers also, and with the help of which some 50 years ago the great astronomer of India, Sri Chandrasekhara Sāmanta, arrived at certain astronomical calculations which surprised even the Western astronomers.

More than thirty interesting plates illustrating the formation and the position of planets and stars are added at the end, which has greatly enhanced the value of the book.

-ANAND SWARUP GUPTA

### स्वल्पमत्स्यपुराणम्

संपादकः वे॰ राघवः ( '9ुराणम्' VI. 1, तोऽनुवृत्तम् )

(4)

### श्रीभगवानुवाच-

'कश्यपस्य प्रवक्ष्यामि पत्नीभ्यः पुत्रपौत्रकान् ।
दित्यदितिः (ती ?) दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा तथा ॥१॥
सुरिमिर्विनता तद्वचाम्रा कोधवशा इरा ।
कद्भः खेग (खसा ?) मुनिस्तद्वचासु पुत्रान्निबोधत ॥२॥
तुषिता नाम ये देवाश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।
वैवस्वतेऽन्तरे ते वै आदित्या द्वादश स्मृताः ॥३॥
इन्द्रो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा ।
विवस्वान् सविता पूषा अंशुमान् विष्णुरेव च ॥४॥
उत्पद्यन्ते मलीयन्ते कल्पे कल्पे तथैव च ।
दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥५॥
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षस्तथापरः ।
हिरण्यकशिपोस्तद्वज्ञातं पुत्रचतुष्ट्यम् ॥६॥
प्रह्वादोऽनुह्वादश्चैव संह्वादो ह्वाद एव च ।
प्रह्वादपुत्र आयुष्मान् शिविबोष्कल एव च ॥७॥

१. स्व. म. ५. १-१८३ = आ. म. ६. १-४, ७-२०३ ,, १८४-४४ = ,, ,, ,, २२३-४७

२. विष्णौ पद्मे च खग इति, आ. म. विश्वा इति च पाठः।

आ. म. यम इति अपपाठः, यतः द्वादशादित्येषु यमो न गणितः ।
 मत्स्यमातृकासु च अर्थमा इत्येव दृश्यते ।

विरोचनश्चे यः पुत्रः बर्लि स पुत्रमासवान् । बलेः पुत्रशतं त्वासीत् बाणज्येष्ठं ततः र्प्रजाः ॥८॥ घतराष्ट्रस्ततस्सर्यः चन्द्रश्चन्द्रांश्चतापनः । निकुम्भनाभी गुर्वेक्ष: कुक्षिर्भीमी ऽथ भीषणः ॥९॥ एवमाद्यास्तु बहवो बाणो ज्येष्ठो गुणाधिकः। बाणः सहस्रबाहुः स्यात् सर्वास्त्रगुणसंयुतः ॥१०॥ तपसा तोषितो यस्य पुरे वसति शूलघृक्। महाकालत्वमगमन्मान्यं यच पिनाकिनः ॥११॥ हिरण्याक्षस्य पुत्रोऽभृदुद्रः शकुनिस्तथा । मृतसन्तापनश्चेव महानाभस्तथेव च ॥१२॥ एतेभ्यः पुत्रपौत्राणां कोटयस्तु त्रिसप्ततिः । महाबला महाकाया नानारूपा महोजसः ॥१३॥ द्नुः पुत्रशतं लेभे कश्यपाद्वलद्पितम् । विप्रचित्तिः प्रधानो ८ भूद्येषां मध्ये महाबलः ॥१४॥ द्विमूर्घा शकुनिश्चैव तथा शङ्कु[:]शिरोधरः । अयोमुखः सम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा ॥१५॥ मरीचिर्मघवांश्चेव इरा वाजिशिरास्तथा। चित्रावरुण (विद्रावणश्च ?) केतुश्च केतुवीर्यः शतकतुः ॥१६॥ इन्द्रजित सत्यजिचेव वज्रनाभस्तथैव च । एकवं कत्रो महाबाहुर्वजाक्षस्तारकस्तथा ॥१७॥

४. प्रह्लादस्येति शेषः।

५. बाणानुजभूता इत्यर्थः।

६. आ. म. विभीषणः, मत्त्यमातृकासु पद्में च 'अथ भीषणः' इति ।

७. आ मत्स्ये पद्मे च साम्यं इति । मत्स्यमातृकासु च साम्योपोद्धलका एव पाठा उपलम्यन्ते ।

मागवते. °भृदुत्कचः। मत्स्ये पद्मे च '॰भृदुळ्कः' इति।

मस्यमातृकाः 'विद्रावण' इति पाठमेवीपोद्रलयन्ति ।

१०. आ. म. ॰चको ।

असिलोमा सलोमा च विद्धवालो महाधुरः। स्वर्भानुर्वृषपर्वा च र ... ।। १८॥ . . . चन्द्रा च वृषपर्वणः । पुलोमा कालकश्चैव (का चैव) जितधन्वा सुलोचनः ।।२०॥ बह्वपत्यो (त्ये ) महासत्त्वो (त्त्वे ) मारीचस्य परिग्रहः (हे )। तयोः सृ( ष )ष्टिसहस्राणि दानवानामम्त्पुरा ।। २१ ॥ पौलोमान् कालकेयांश्च मारीचो ऽजनयतपुरा। अवध्या येने वालाहे हिरण्यपुरवासिनः ॥ २२ ॥ चतर्मखाल्रब्धवरास्ते हता विजयेन तु । विप्रचित्तिः सैंहिकेयं ( यान् ) सिंहिकायामजीजनत् ॥ २३ ॥ हिरण्यकशिषोर्ये वै भागिनेयास्रयोदश । <sup>१४</sup>कालकस्य (?) च राजेन्द्र नलो वातापिरेव च ॥ २४ ॥ इल्वलो नमुचिरचैव <sup>१४</sup>खलुपश्चाञ्जनस्तथा । नरकः क ( का ? ) लनाभध सरमाणस्तथैव च ॥ २५ ॥ कल्पवीर्यश्च विरुयातो दनुवंशविवर्धनः (नाः)। संह्रादस्य तु दैत्यानां (स्य ) निवातकवचाः सुताः ॥ २६ ॥ अवध्याः सर्वदेवानां गन्धर्वोरगरक्षसाम् । ये हता बलमाश्रित्य अर्जुनेन रणाजिरे ॥ २७ ॥

ग्रन्थपातः । स्त्रीप्रजानां निर्देशस्य उपक्रमभागः सार्घश्लोकमितः लुप्तः । 28. दृश्यताम् आ. म.।

अत्र पुंसीर्नामनिर्देशस्यावकाशो नास्ति । आ. म. पाठानुसारमत्र 22. 'वैश्वानरसुते हि ते' इति पाठः भवितुमुचितः । तादृश एव भागवते च

आ. म. 'येऽमराणां वै' ; हरिवंशे 'देवतानां च'; पद्मे 'ये नराणां वै' इति ।

१४. आ. म. व्यंसः कल्पश्च । मत्स्यमातृकासु विविधः पाठो दृश्यते ।

१५. आ. म., मत्स्यमातृकासु, पद्मे च विविधः पाठः।

षट्कन्या जनयामास तासां ( म्रा ) मारीचवीर्यतः । शुकी रयेनी च भासी च सुग्रीवी गृष्ठ( ध्रि )का शुचिः ॥ २८ ॥ शुकी शुकानन्धकांश्च ( उल्ल्कांश्च ) जनयामास धर्मवित् । इयेनी इयेनान तथा भासी कुररानप्यजीजनत् ॥ २९ ॥ गृधी गृधान् कपोतांश्च पारावतविहङ्गमान् । हंससारसकारण्डप्लवान् शुचिरजीजनत् ॥ ३०॥ अजाश्वमेषोष्ट्रखरान् सुग्रीवी चाप्यजीजनत् । एष भासानुजः ( ताम्रान्वयः ) प्रोक्तो विनताया निबोधत ॥ ३१ ॥ गरुडः पततां नाथो अरुणस्स ( णश्च ) पतत्रिणाम् । सौदामिनी तथा कन्या येयं नभिस विश्रता ॥ ३२ ॥ सम्पातिश्व जटायुश्च गरुडस्य (अरुणस्य) सुतावुभौ । सम्पातिपुत्रो बभुश्च शीघ्रगश्चापि विश्रुतः ॥ ३३ ॥ जटायोश्च कर्णिकारः शतगामी च विश्रुतौ । सारसो रज्ज्वाण ( ल ) श्च भेरुण्डश्चापि तत्सुताः ॥ ३४ ॥ तेषामनन्तमभवत् पक्षिणां पुत्रपौत्रकम् । स्रायां सहसं तु सर्पाणामभवतपुरा ॥ ३५ ॥ सहस्रशिरसां कद्रः सहस्रमाप यत् सुतान् । प्रधानास्तेषु विख्याताः षड्विंशतिररिन्दमाः ॥ ३६ ॥ रोषवासुकिककीटशङ्खेरावतकम्बलाः। धनञ्जयमहानीलपद्माधतरतक्षकाः ॥ ३७ ॥ एलापत्रमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः । शङ्खपालमहाशङ्खपुष्पदंष्ट्युभाननाः ॥ ३८॥ शङ्करोमा च वहणो ( नहुषो ) वामनः फणिनः (पाणिनिः?) र तथा । किपलो दुर्मुखश्चापि पुत्रोऽञ्जलि पतञ्जलि ) रे रिति स्मृताः ॥ ३९ ॥ एषामनन्तमभवत् सर्वेषां पुत्रपौत्रकम् । प्रायशो यतपुरा दग्धं जनमेजय [ स्य ] मन्दिरे ॥ ४० ॥

१६. पद्मे ६. ७३ ; आ. म. पाणिनः । १७. आ. मा. ; मातृकाश्च ।

रक्षोऽपि सं ( रक्षोगणं ) कोधवशा सुनामाया(स्वनामान) विजनत् । दृष्ट्रणं ( णां ) निय (यु) तं तेषां भीमसेनादशाक्ष (दगात्क्ष) यम् ॥४१॥ रुद्राणां च गणं तद्वत् गोमहिष्या वराङ्गना(?) १६ । सुरभिर्जनयामास कर्यपाद्धत(व्रत)संयता ॥ ४२ ॥ मुनिर्मुनीनां तु गणं गणमप्सरसां तथा। तथा किन्नरगन्धर्वानरिष्टाजनयद्वहून् ॥ ४३ ॥ तृणवृक्षरुतागुल्मं शिवा (इरा) सर्वमजीजनत् । खगा (खसा?) तु यक्षरक्षांसि जनयामास कोटिशः ॥ ४४ ॥ २° एते कश्यवदायादाः शतशोऽथ सहस्रशः । एवं मन्वन्तरे विप्राः सर्गाः स्वारोचिषे स्मृताः ॥ ४५ ॥ तत एकोनपञ्चाशन्मरुतः कश्यपादितिः। जनयामास धर्मज्ञान् सर्वानमरवल्लभान् ॥ ४६ ॥

> इति स्वल्पमत्स्यपुराणे षट्पादकार्यासाहस्रे ( ? ) कञ्यपान्वयो नाम पञ्चमोऽध्यायः।

हरिवंशे १. ३. १६. गणं क्रोधवशं। 25.

<sup>&#</sup>x27;॰महिष्यो वराङ्गनाः' इति मूलमत्स्ये। 29.

अयं इलोकः आ. मस्त्ये अधिकपाठत्वेन दत्तः। 20. पद्मे ६. ७९.

मनुरुवाच-

'अतः परं प्रवक्ष्यामि दानधर्ममशेषतः ।

व्रतोषवाससंयुक्तान् यथा मत्स्योदितानिह ॥१॥

दशधेनुविधानस्य यद्रूपमिह यत्फलम् ।

तदिदानीं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ॥२॥

प्रथमा गुडधेनुः स्याद् वृतधेनुरथापरा ।

तिलघेनुस्तृतीया च चतुर्थीह जलात्मिका ॥३॥

क्षीरधेनुश्च विख्याता मधुधेनुस्तथापरा ।

सप्तमी शर्वराधेनुरष्टमी लवणस्य तु ॥४॥

रसधेनुश्च नवमी दशमी स्यात् स्वरूपतः ।

कुम्भधेनुः स्वर्णधेनुः स्त्रधेनुस्तथेव च ॥५॥

दिध्येनुवृतश्चेव परं स्याद्धेनुपञ्चकम् ।

तिलघेनुस्तथा षष्ठी सप्तमो अजिनात्मिका ।

वैश्य(?)धेनुस्ताम्रधेनुर्विधिनुश्च वै दश्चै ॥६॥

चतुर्वहस्तकृतां भूमि दर्भानास्तीर्थ सर्वतः ।

प्राद्धालीं कल्पयेद्धेनुमुदक्पादां सवत्सकाम् ॥७॥

२. मूलमत्स्ये 'दिधिनुस्तथाष्ट्रमी' इति ।

१. स्व. म. ६ २ = आ. म. ८२.२ """ १८,१९ """ १८,१९ """ १४,१९ """ १४,१९ = """ १४,१९ = """ १४,१९ = """ १४,१९ = """ १४,१९

३. कुम्मचेनुरित्यारभ्य अन्यप्रकारेण दश्चेनुवर्णनिमदम्। अत्र कितिचित् चेनवः मूलमत्स्ये पक्षान्तरतया क्रत्यकल्पतर्वादिषु च निंबन्चेषु दृश्यन्ते ; किन्तु अत्र निर्दिष्टया रीत्या दश्चेनुविकल्पो न कचिदुपलभ्यते।

उत्तमा गुडधेनुः स्यान्मुदाँ भारचत्रष्टयम् । भारद्वये मध्यमा स्यात् कनिष्ठा भारकेण तु ॥८॥ र्ववशतोलप्रमाणेन पल इत्यभिधीयते । पळानां विंशतेर्भारः तुर्यहीनः कली युगे ॥९॥ चन्द्नेन लिखेद्धेनुं क्षीमेणैव प्रयत्तः। हस्तत्रयान्तरं कृत्वा रौप्यकुम्मेषु पाणिकम् ॥१०॥ घेन्वाकृति च संस्थाप्य क्रमेण द्विजसत्तमाः । पलद्वये ललाटं च द्विगुणेनापि मस्तकम् ॥११॥ त्रिगुणेन भवेन्नासा चक्षुषी पलपञ्चकै: । तुर्यं तुर्यं बाहुपादी उदरं च पलाष्टकैः ॥१२॥ परुकेन भवेत्पुच्छं वत्सं चैव पराष्ट्रकम् । यद्धिकं भवेद्रोमकूपरोमाणि कल्पयेत ॥१३॥ घेनुवत्सौ गुणस्यतौ सितसृक्ष्माम्बरावुभौ । ग्रुक्तिकर्णावश्रपादी शुक्तिमुक्ताफलेक्षणी ॥१४॥ सितसूत्राणि बालो भी (१) सितकम्बलकम्बली । ताम्रगण्डकपृष्ठी ती सितचामररोमकी ॥१५॥ विद्रमभ्युगावेतौ नवनीतस्तनान्वितौ । क्षौमपुच्छौ कांस्यद्घौ इन्द्रनीलकभासकौ ॥१६॥ नानादुर्में समायुक्ती प्राणगन्तार(१)कर्णकी "। इत्येवं रचयित्वा तु गन्धपुष्पेस्तथार्चयेत् ॥१७॥ या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता । घेन्रूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहत ॥१८॥

४. मूलमत्स्ये 'सदा'

५. प्रमाणपरिपाटीवर्णनपरः क्लोकोऽयम्।

६. आ. म. 'घृतास्यो तो' इति समीचीनः पाठः।

७. आ. म. 'इक्षु' इति समीचीनः पाठः।

द. आ. म. 'सितस्त्रसिरालो तौ'। E. आ. म. 'तारको'।

१०. आ, म. 'फल'। ११. आ. म. 'ब्राणगन्धकरण्डकी'।

विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः । चन्द्रार्कशकशक्तिर्या धेनुरूपास्त सा श्रिये ॥१९॥ चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीः या लक्ष्मीर्धनदस्य तु । या लक्ष्मीर्लोकपालानां सा घेनुवरदास्त मे ॥२०॥ स्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां यतः । सर्वपाषहरा घेनुस्तस्माच्छान्ति प्रयच्छ मे ॥२१॥ एवमामन्त्र्य तां घेनुं ब्राह्मणाय निवेद्येत् । विधानमेतद्धेनुनां सर्वासामपि पठ्यते ॥ २२॥ यास्त पापविनाशिन्यः पठ्यन्ते विंशधेनवः । रैं घृतस्य तर्यकर्षेण पलमेकं विधीयते । तोलैकेन भवेत्कर्षं तिलस्यापि शृणु द्विज ॥२३॥ द्रोणषोडशकं माषं कृषस्य ( जलस्य ? ) कुम्भषोडश (?)। क्षीरस्य शक्तिमानं स्यात् तद्र्धमधमं (तद्र्धं च मधु ?) स्मृतम् ॥२४॥ शकरायाः कर्षमात्रं प्रसृतिर्रुवणस्य च । पलं पलं वृष(रस)स्यापि षड्दशैरेकपञ्च वा (१) ॥२५॥ शक्तिप्रमाणं स्वर्णस्य रत्नस्य खण्डखण्डशः । क्षीरमानं त तैलस्य क्षीरस्य दिधर ( ? ) च्यते ॥ २६ ॥ <sup>१३</sup>मुष्टिरष्टौ भवेत् खुञ्जः<sup>१४</sup> द्रोणं स्यात्खुञ्चिषोडश(१) । पञ्चकर्षेभवेन्सृष्टिः सप्तकर्षेश्च प्रसृतिः ॥ तुर्यं स्वर्णे पलं ज्ञेयं लवणस्य विदुर्बुधाः ।। २७ ॥ इति पठित समन्तादु यः शृणोतीह सम्यङ्-मधुस्(म १)रनरकारेरर्चनं चाथ पश्येत । मतिमति च जनानां यो ददातीन्द्रलोके स वसित विबुधाद्यैः पुज्यते कल्पमेकम् ॥ २८ ॥ इति स्वल्पमत्स्ये षष्ठोऽध्यायः ॥

१२. इत आरभ्य द्वितीयतृतीयादीनां घृततिलादिधेन्नां वर्णनम्।

१३. पुनश्च प्रमाणपरिपाटीवर्णनम् १४. अन्यत्र 'कुञ्चि' इति

## मनुरुवाच :---

<sup>१</sup>भगवन् श्रोतुमिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम् । यदक्षयं परे होके देवर्षिगणपूजितम् ॥ १ ॥

## श्रीमत्स्य उवाच-

मेरुप्रमाणं वक्ष्यामि दश्या द्विजसत्तमाः ।

यस्प्रदानान्नरो लोकानाप्नोति सुरपूजितान् ॥ २ ॥

पुराणेषु च वेदेषु यज्ञेष्वायतनेषु च ।

न तत्फलमधीतेषु क्रतेष्वह यद्दरनुते ॥ ३ ॥

तस्माद्दानं प्रवक्ष्यामि पर्वतानामनुकमात् ।

प्रथमं धान्यशैलः स्यात् द्वितीयो लवणाचलः ॥ ४ ॥

गुडाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थो हेमपर्वतः ।

पञ्चमो (मः) तैलशैलः स्यात् षष्ठः कार्पास एव च ॥ ५ ॥

सप्तमो धृतशैलश्च रत्नशैलस्तथाष्टमः ।

राजतो नवमस्तद्वत् दशमः शर्कराचलः ॥ ६ ॥

अयने विषुवे पुण्ये व्यतिपाते दिनक्षये ।

शुक्कपक्षे तृतीयायामुपरागे शशिक्षये ॥ ७ ॥

आ. म. ८३, १-६ ७. १-६ 193-83 a ッ 19-2日日 " १३3,8 243.8 " १६-२७= 33 88-84 25-350 " २६-३६ " ३८१.२ 353,8 36 35 883-868 80-88

उत्सवेषु च यज्ञान्ते लक्षहोमान्तरेऽपि च। शुक्कायां पञ्चदश्यां वा पुण्यर्क्षे वा विधानतः ॥ ८ ॥ धान्यशैलादयो देयाः कार्तिक्यां तीर्थसङ्गमे । तीर्थेष्वायतने वापि गोष्ठे वा भवनाङ्गणे ॥ ९ ॥ मण्डलं कारयेद्भवत्या चतुरश्रमुदङमुखः । प्रागुद्कप्रवणे शुद्धे पाङ्मुखो वा विधानतः ॥ १० ॥ गोमयेन त लिप्तायां भूमावास्तीर्य वै कुशम्। तन्मध्ये पर्वतं कुर्यात् द्विकुम्भ ( विष्कम्भ ) पर्वतान्वितः ( तम् ) ॥११॥ धान्यद्रोणसहस्रेण भवेद्रै विधिरुत्तमः ।

मध्यमः पञ्चशतिकः किनष्टः स्यास्त्रिभः शतैः ॥ १२ ॥

मेरुमहावृद्धिमतस्तू मध्ये

सुवर्णवृक्षत्रयसंयुतः स्यात् ।

मूर्धन्यधस्तान्नवमरमरेण

कार्यस्त्वमेकत्र पुनर्द्धिजाद्याः ( १ ) ॥ १३ ॥

चत्वारि शृङ्गाणि च राजतानि

नितम्बभागेष्वपि राजतं स्यात्।

तथेक्षवंशावृतकन्दरस्थं

घृतोदनपस्रवणश्च दिस्र ॥ १४ ॥

शुक्लाम्बराण्यम्बुधवारिणि<sup>\*</sup> ( ? ) स्यात्

<sup>६</sup> एळवेन पातानिव ( ? ) दक्षिणेन ।

वासांसि पश्चादथ कन्दराणि

रत्नानि चैवोत्तरतो घनानि ॥ १५ ॥

२. मेरोः परितः चत्वारो विष्कम्भपर्वताः ; विष्णौ २. २. १६: विष्कम्भा रचिता मेरोः।

३. आ म '-ब्रोहिमयस्तु' इति समीचीनः पाठः ।

४. आ. म. 'मूर्धन्यवस्थानममत्सरेण कार्यं त्वनेकैश्च पुनर्द्विजाद्यैः' इति समीचीनः पाठः।

५. आ म 'अम्बुघरावली' ६. आ म 'पूर्वेण पीतानि च' ७. आ म 'कर्बुराणि' ५. आ म 'रकानि'

७. आ. म. 'कर्बुराणि'

रौप्यान् महेन्द्रप्रभृतीन् तथाष्टौ संस्थाप्य लोकाधिपतीन् क्रमेण । नानाफलानां वसतिस्ततः स्यात्

मनोज्ञमाल्यानि विलेपनं च ॥ १६ ॥

वितानमद्युपरि पश्चवर्ण-मम्लानपुष्पाभरणं सितं वा ।

इत्थं निशम्यापरशैलमध्य-मतस्तु विष्कु( ष्क )म्भगिरिकमेण ॥ १७॥

तुरीयभागेन चतुर्द्( दिं )शं च संस्थापयेत् पुष्पविलेपनं च ।

पूर्वेण मन्दा(न्द )रमनेकफलेन वाषी (वाऽषि) युक्तैर्यवै: कनक तत्र(भद्र १)कदम्बचिह्नम् ॥ १८॥

कायेन काञ्चनमयेन विराजमान-माकारयेत्कुसुमवस्त्रविलेपनाट्यम् ।

क्षीरारूपेण सहसा धवलेन चैव रोप्येण शुक्तिघटितेन विराजमानम् ॥ १९ ॥

याम्येन येन सदनो ( गन्धमदनो ) भुवि रा(यो ?)जनीयो गोधूमसञ्जयमयं ( यः ) कलधौतजं( जो )वा ।

हो( है )मेन यक्षपितना घृतमानसे च( न ) वस्त्रिश्च राजतध( व )नेन च संयुतः स्यात् ॥ २० ॥

पश्चात्तिलाचलमनेकसुगन्धिपुष्पैः सौवर्णपिप्पलहिरण्मयगुल्मयुक्तम् ।

प्राकारयेद्रजतपुष्परसेन तद्वत् वस्त्रान्वितं दिधिसतोदसरस्तथाग्रे ॥ २१ ॥

श्रा. म. 'क्षीरारुणोदसरसाथ वनेन' इति समीचीनः पाठः । विष्णौ २. २. २५ : अरुणोदं नाम सरोऽत्रोक्तम् ।

संस्थाप्य तं पिप्पल (विपुल ) शैलमथोत्तरेण
शैलं सुपार्श्वमपि चारममयं सवस्नम् ।
पुष्पेश्च हेमघट (वट ) पादपरोखरं च
पाकारयेत्कनकधेनु विराजमानम् ॥ २२ ॥
माक्षीकमाव (भद्र )सर (सरसाथ ) णेन (वनेन) तत्तद् (तद्वद्) ।
रोप्येण भास्वरवता च युतं विधाय ।
होमं च तत्तिथि (चतुर्भिरथ ?) वेदपुराणविद्धि दिनेरतीक्षणविनतागृतिभिर्द्धि जेन्द्रै ।। २३ ॥

पूर्वेण हस्तिमतमत्र विधाय कुण्डं कार्यं तिलैर्युतवृतेन समित्कुशैश्च ।

रात्रौ च जागरमनुत्रतगीततूर्यै-

राराधनं च कथयामि शिवोत्सवा(शिलोचया)नाम् ।। २४॥ त्वं सर्वदेवगणधामनिधे विरुद्ध-

मस्मद्गृहेष्वमरपर्वत नाशयाशु ॥ २५ ॥
त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मा विष्णुर्दिवाकरः ।
मूर्तामूर्तपदं बीजमतः पाहि सनातन ॥ २६ ॥
यस्माच लोकपालानां विश्वमूर्ति( तें )श्च मन्दिरम् ।
रुद्रादित्यवस्नां च तस्माच्छान्ति प्रयच्छ मे ॥ २७ ॥
यस्माचाशून्यममरैर्नारीभिश्च शिरस्तव ।
तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥ २८ ॥
एवमभ्यर्थितं मेरुं मन्दरं चापि पूजयेत् ।
तस्मा (यस्मा) चैत्ररथानन्य (रथेन त्वं?) भद्रासन (श्वेन) विशेषण (तः)॥२९॥

१०. मेरोः पश्चिमपार्श्वस्थः विष्कम्भपर्वतो विपुलो नाम । विष्णौ २. २. १७. पिप्पळस्तु तत्रस्थो वृक्षः । मातृकायामतो विपुलपिप्पलयोमोहः ।

११. वटस्त्वत्रस्थो वृक्षः । विष्णौ २. २. १७.

१२. चतुर्दिस्वत्रत्येषु सरस्सु महाभद्रमित्येकम् । विष्णौ २ २. २५.

श्व. भा. म. 'शिलोचयाना' मिति समीचीनः पाठः । अत्र शिवस्य वा तदुत्सवानां वा नास्ति प्रस्तावः । प्रस्तावस्तु शिलोच्चयानामेव ।

सीभगे (शोभसे) मन्दरक्षिप्रमतः क्षिप्रकरो भव । यस्माच्च्डामणिर्जम्बुद्वीपे त्वं गन्धमादन ॥ ३०॥ गन्धवंवशगस्तावानतः कीर्तिर्देदास्त मे । यस्मात्त्वं केत्रमालेन वैभ्राजेन बलेन (वनेन) वा ॥ ३१ ॥ हिरण्मयश्च ( ण्मयाश्वत्थ ) शिखरः ( शिराः ) तस्मात्पुष्टिईढास्तु मे । उत्तरै: कुरुभिर्यस्मात् सावित्रेण बलेन ( वनेन ) च ॥ ३२ ॥ स्रपार्श्व राजसे नित्यमतः श्रीरक्षयास्तु मे । एवमामन्त्र्य तान् सर्वान् प्रभाते विमले पुनः ॥ ३३ ॥ स्नात्वा तु गुरवे दद्यात् मध्यमं पर्वतोपमम् ( त्तमम् )। विष्कु (ष्क् ) म्भपर्वतान् द्याद्दिवग्भ्यः क्रमशो द्विजाः ॥ ३४ ॥ स्वरो र द्याचतुर्विशमथवा दश द्वादश । शक्तितः पानीयं दद्यात् गां च द्यात् पयस्विनीम् ॥ ३५ ॥ एकां च कपिलां दद्यात् गुरवे च पयस्विनीम् । <sup>१६</sup>नारायणं मण्डलेशं घोडशाचेंः समर्चयेत् ॥ ३६ ॥ आदिमध्यावसानेषु होमं कुर्यात् सहस्रकम् । चरुं कृत्वा विधानेन दिक्पालांश्च तथा महान् ॥३७॥ इक्षुपर्वेश्च श्रीखण्डमिदिकैः पायसैरिप । पर्वतानामशेषाणामेष एव विधिः स्मृतः ॥३८॥ त एव पूजने मन्त्राः त एवोपस्कराः स्मृताः । ग्रहाणां लोकपालानां क्रमशः शृणु सत्तमाः (१) ॥३९॥

दानकालेषु ये मन्त्राः पर्वतेषु यथाकमम्।

अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तम् अन्नं प्राणाः प्रकोर्तिताः ॥ ४०॥

आ. म. 'गाश्र' कृत्यकल्पतरौ 'गाव' 28.

<sup>&#</sup>x27;पञ्च वा' इति स्यात् । आ. म. 'पञ्च दद्यादशक्तिमान्'

इत आरम्य श्लोकद्वयं आ. म. नास्ति

अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्तते । अन्नमेव यतो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः ॥ ४१॥ धान्यपर्वतह्वपेण पाहि तस्मान्नगोत्तम । अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धान्यमयं गिरिम् ॥ ४२॥ मन्वन्तरशतं साग्रं देवलोके महीयते। अप्सरोगणगन्धर्वेराकीर्णेन विराजता ॥ ४३॥ विमानेन च वै स्वर्गमायाति च द्विजोत्तमाः। धर्मक्षये राजराज्यमाप्नोतीह न संशयः ॥ ४४॥

इति स्वल्पमत्स्ये .....दानधर्मे सप्तमोऽध्यायः ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि लवणाचलमुत्तमम् ।

मध्यमं स्यात्तदर्धेन चतुर्भिश्च कनिष्ठकम् ॥१॥

वित्तहीनो यथाभत्तया द्रोणादर्धं तु कारयेत् ।

चतुर्थेन च विष्कु(ष्क)म्भपर्वतान् कारयेत् पृथक् ॥२॥

विधानं पूर्ववत्कुर्यात् ब्रह्मादीनां च सर्वदा ।

तद्वद्धेमतरून् सर्वान् लोकपालनिसेव(वेशः)नम् ॥३॥

सरांसि वनवृक्षाणि कर्ध्ववृत्ते निवेशयेत् ।

कुर्याज्ञागरमत्रापि दानधर्मात्रिवोधत् ॥४॥

सौभाग्येन समुद्भूतो यतोऽयं लवणो वयः (रसःःः) ।

तदात्मकेन(-त्मकत्वेन) च मां पाहि पापान्नगोत्तम ॥५॥

यस्मादन्नरसास्सर्वे लोकाश्च लवणं विना ।

प्रियश्च सेवयेन्नित्यं तस्माच्छान्ति प्रयच्छ मे ॥६॥

विष्णुदेवेंसमुद्भूतं यस्मादारोग्यवर्धनम् ।

तस्मात्पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात् ॥७॥

१. स्व. म. ८. १-७१. आ. म. ८४. १.६,३.२. २३.४. ३-६, ८५.१-३, ४३--७३, ७,६. ८,६ ८६.१, २,४-६,७३-४, ८७.१, २,४-६,७३-४, ६८.१-१० ९०.१.२-१० ६२.१-४,७३-१०. ६२१-३,४३-८,१०-१६३

२. उत्तमस्य प्रमाणं नोक्तम् । आ म ८४ अध्याये द्रष्टव्यम्

३. आ. म. 'उत्कटाः' । अत्र विरसपर्यायः शब्दोऽपेक्षितः

४. आ. म. 'शिवयोर्नित्यम्'

५. आ. म. 'देह'

अनेन विधिना यस्तु दद्यालवणपर्वतम् । उमालोके वसेत्करूपं ततो याति परां गतिम् ॥८॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि गुडपर्वतमुत्तमम् । यत्प्रदानान्नरः स्वर्गं प्राप्नोति सुरपूजितः ॥९॥ उत्तमो द्रशिभर्गरैः मध्यमः पञ्चभिर्मतः। त्रिभिर्भारै: किनष्ठश्च तदर्धेनाल्पवित्तमः (-वान् ?) ॥१०॥ तथैवामन्त्रणं पूजा तेन ब्रह्मसुरार्चनम् । विष्कु (ष्क ) म्भपर्वतस्तद्वत् सरांसि वनदेवताः ॥ ११ ॥ धान्यपर्वतवत्कार्यमिमं मन्त्रमुदीरयन् । यथा देवेषु धर्मात्मा प्रवरोऽयं जनार्दनः ॥ १२ ॥ सामवेदस्त वेदानां महादेवस्त योगिनाम्। प्रणवः सर्वमन्त्राणां तन्त्राणां पार्वती यथा ॥ १३ ॥ तथा रसानां प्रवरस्तथैवेक्षुरसो वरः। मम तस्मात्वरां लक्ष्मीं ददस्व गुडपर्वत ॥ १४॥ निवासं ( सः ) चापि पार्वत्या तस्मान्मां पाहि सर्वेदा । अनेन विधिना यस्तु दद्याद्गुडमयं गिरिम् ॥ १५॥ सम्पुज्यमानो गन्धर्वेगीरीलोके महीयते । पुनः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भनेत् ॥ आयुरारोग्यसंपन्नः शत्रुभिश्चापि पूजितः ॥ १६ ॥ अथ पापहरं वक्ष्ये सुवर्णाचलमुत्तमम्। यस्य प्रसादाद्भवनं वैविन्ध्यं ( वैरिञ्जं ) यान्ति मानवाः ॥ १७ ॥ उत्तमः पलसाहस्रो मध्यमः पञ्चभिदशतैः। तदर्धेनाधमस्तद्वदलपवित्तोऽपि मानवः ॥ द्यादेकपलादूर्ध्वं यथाशक्त्या विमत्सरः ॥ १८ ॥

६. आ. म. 'नारीणां'। अत्र स्वल्पमत्स्यपाठः 'तन्त्रिणां' इति स्यात्।

नमस्ते ब्रह्मबीजाय ब्रह्मगर्भाय वै नमः। यस्माद्ग्नेरपत्यं त्वं यस्माद्ध्वं जगत्पतेः ॥ १९ ॥ हेमपर्वतरूपेण तस्मात्पाहि नगोत्तम । अनेन विधिना यस्तु दद्यात्कनकपर्वतम् ॥ २०॥ स याति परमं ब्रह्मलोकं मानसवत्सरम् ( ? )। तत्र कल्पशतं तिष्ठेत्ततो याति परां गतिम् ।। २१ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि तिल्हरीलं विधानतः । यत्प्रसादान्नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम् ॥ २२ ॥ उत्तमो दश्मिस्तालैः मध्यमः पञ्चभिर्मतः । त्रिभिः कनिष्ठो विषेनद्राः तिलशैलः प्रकीर्तितः ॥ २३ ॥ यस्मानमधुकरान् ( हराद ? ) विष्णोर्देहात्पूर्वं समुद्भवः । तिलाः कुशाश्च स ( श ) म्यर्श्व तस्मात् शन्नो भवत्विह ॥ २४ ॥ हन्ये कन्ये च यस्माच तिला एव हि रक्षणम् । तस्मात्तह्रह शैलेन्द्र तिलाचल नमो ऽस्त ते ॥ २५ ॥ इत्यामन्त्र्य च यो दद्यात्तिलाचलमनुत्तमम् । स वैष्णवपदं याति पुनरावृत्तिदुर्रुभम् ॥ २६ ॥ षित्रभिर्देवगन्धर्वैः पूज्यमानो दिवं त्रजेत् । कार्णासपर्वतः तद्वद्विशामारै रिहोत्तमः ॥ २७ ॥ दशिमर्भध्यमः प्रोक्तः कनिष्ठः पञ्चभिर्मतः । भारेणाल्पधनो दद्यात् वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ २८ ॥ प्रभातायां त शर्वयां द्यादिद्मुदीरयेत् । त्वमेवावरणं सर्वलोकानामिह सर्वदा ॥ २९ ॥ कार्णासाचल नमस्तस्मै अघीघध्वंसनो भव। इति कार्पासरीलेन्द्रं यो दद्यात् पर्वर्सं निधी ॥ "इन्द्रलोके वसेन्नित्यं ततो लोके भवेदिह ॥ ३० ॥

७. आ. म. 'आनन्दकारकम्'। ८. आ. म. 'मधुववे'।

६. आ. म. 'माषाश्च'।

१०. आ. म. 'शर्व'। ११. आ. म. 'रुद्र'।

अथातः संप्रवक्ष्यामि धृताचलमनुत्तमम् । तेजोमयामृतं दिव्यं महापातकनाशनम् ॥ ३१ ॥ विंशत्या घृतकुम्भनामुत्तमः स्याद्घृताचलः । दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः कनिष्ठः पञ्चभिर्मतः ॥ ३२ ॥ अल्पवित्तोऽपि कुर्वीत द्वाभ्यामेव विधानतः। विष्कु ( ष्क ) म्भपर्वतान् तद्वचतुर्भागेन कल्पयेत् ॥ ३३ ॥ कर्षतीलिकमानेन पलं देयं घृतस्य च। पञ्चविशापलैः कुम्भं कार्पासद्विगुणं स्मृतम् ॥ ३४ ॥ षष्टिपलैश्च भारः स्यात् कार्पासस्य द्विजोत्तम । शालितण्डुलपात्राणि कुम्भोपरि निवेशयेत् ॥ ३५ ॥ कारयेत् संहतानुचान् यथाशोभं विधानतः। वेष्टयेच्छुक्कवासोभिरिक्षुदण्डक(फ)लादिकैः ॥३६॥ धान्यपर्वतवत् सम्यक् विधानमिह पठ्यते । अधिवासनपूर्वं हि तद्वद्धोमसुरार्चनम् ॥३७॥ प्रभातायां तु शर्वयाँ गुरवे विनिवेदयेत् । विष्कु(ष्क)म्भपर्वतं तद्वहित्वग्भ्यः शान्तमानसः ॥३८॥ संयोगाद्वृतमुत्पन्नं यस्मादमृततेजसोः। तस्माद्वताद्धि विश्वात्मा प्रीयतामिति शङ्करः ॥३९॥ तस्मात्तेजोमयं ब्रह्म घृते तच्च व्यवस्थितम् । घृतपर्वतरूपेण तदेव पाहि भूधर ॥ ४०॥ अनेन विधिना दद्यात् घृताचलमनुत्तमम् । महापातकयुक्तोऽपि लोकमायाति शाङ्करम् ॥४१॥ हंससारसयुक्तेन किङ्किणीनालमालिना। विमानेनाप्सरोभिश्च सिद्धविद्याधरैर्युतः ॥ विचरेत पितृभिः सार्धं यावदाहु (भू)तसंप्रवम् ॥४२॥

१२. अत्र आ. म. अदृष्टमर्धत्रयं दृश्यते ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि रत्नाचलमनुत्तमम्। मक्ताफलसहस्रेण पर्वतः स्यादथोत्तमः ॥ ४३॥ मध्यमः पञ्चशतिकः त्रिशतेनाधमः स्मृतः । पूर्वे रजतमत्रादी दक्षिणेनेन्द्रनीलकौ ॥ ४४॥ पुष्पदन्त (राग ?)युतः कार्यो विद्वद्भिर्गन्धमादनः । वैद्र्यवज्रमेदस्य संमिश्रो विद्युता(विपुला)चलः ॥४५॥ पद्मरागसमा वर्णेरुत्तरेणापि विन्यसेत् । पुजयेत्पृष्पपानीयैः प्रभाते स्याद्विसर्जनम् ॥ ४६॥ पूर्ववद्गुरुऋत्विग्भ्य इमं मन्त्रमुदीरयेत् । तथा देवगणाः सर्वे सर्वरत्नेष्ववस्थिताः ॥ त्वं च रत्नमयो नित्यमतः पाहि महाचल ॥ ४७॥ यस्माद्रत्नप्रसादेन वृष्टिं (तुष्टिं ?) प्रकुरुते हरिः । सदा रत्नप्रसादेन तस्मान्नः पाहि सर्वतः ॥४८॥ अनेन विधिना यस्तु दद्याद्रत्नमयं गिरिम् । स याति वैष्णवं लोकममरासुरपूजितः ॥ ४९॥ यावत्करूपशतं साम्रमुषित्वेह द्विजोत्तमाः। ह्मपाह्मप्य(रोग्य)गुणोपेतः सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥५०॥ ब्रह्महत्यादिकं किञ्चिदिहामुत्र यथाकृतम्। तत्सर्वं नाशमायाति गिरिर्वे ज्रहतो यथा ॥५१॥ अतः परं प्रवक्षयामि रौप्याचलमनुत्तमम् । यत्प्रदानान्नरो याति सोमलोकं द्विजोत्तमाः ॥५२॥ दशभिः पलसाहस्रैरुत्तमो रजताचलः । पञ्चभिर्मध्यमः प्रोक्तस्तदर्धेनाधमः स्मृतः ॥५३॥ अशक्तो विंशते रूर्वं कारये द्वक्तितः सदा । विष्कु(ष्क)म्भपर्वतस्तद्वतुरीयांशेन कल्पयेत् ॥५४॥ पूर्ववद्राजतान् कुम्भान् मन्दराद्रीन् विधानतः । इमं मन्त्रं पठन् द्यात् दर्भपाणिर्विमत्सरः ॥५५॥

पितृणां वल्लभं यस्माद्धर्भेन्द्रोः शङ्करस्य च । रजतं पाहि तस्मात्रः शोकसंसारसागरात् ॥५६॥ इत्थं नियम्य यो दद्याद्रजताचलमुत्तमम्। गवामयुतदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥५७॥ सोमलोके सगन्धर्विकचराप्सरसां गणैः। प्जयमानो वसेद्धीमान् यावदाह् (भू )तसंप्रवम् । अथातः संप्रवक्ष्यामि शर्कराचलमुत्तमम्। यस्य प्रसादाद्विष्णुर्वे रुद्रास्तुष्यन्ति सर्वदा ॥५९॥ अष्टभिः शर्कराभारैरुत्तमः स्यान्महाचलः। चतुर्भिः मध्यमः प्रोक्तो भारौ द्वावधमः स्मृतः ॥६०॥ भारे तस्यार्धमानेन यः कुर्यात्स्वरुपवित्तवान् । विष्कु(ष्क)म्भपर्वतान् कुर्यात् तुरीयांशेन मानवः ॥६१॥ मेरोरुपरि तद्वच स्थाप्यं हेमतरुत्रयम् । मन्दारः पारिपात्र(जात)श्च तृतीयः करूपपादपः ॥६२॥ तद्वदृश्कत्रयं मूर्धिन सर्वेष्वपि निवेद(श)येत । हरिचन्दनसन्तानौ पूर्वपश्चिमभागयोः ॥६३॥ निवेश्यो सर्वशैलेषु विशेषः शर्कराचले । मन्दा(न्द)रे कामदेवस्तु प्रत्यञ्ज्ञुखः सदा भवेत् ॥६४॥ गन्धमादनशृङ्गे तु धनदः स्यादुद्ब्युखः । शाङ्मखो हेमयुक्तस्तु हंसः स्याद्विपुलाचले ॥६५॥ हैमासु(हैमेषु)पार्थेषु भवेत् सुरमिर्दक्षिणामुखी । सौभाग्यामृतसारोऽयं परमः शर्कराचलः ॥६६॥ तस्मादनन्तकारी त्वं भव शैलेन्द्र सर्वदा । अमृतं पिवतां ये त पतिता भवि शीकराः। देवानां च (तत्-)समुत्थोऽयं पाहि नः शर्कराचल ॥६०॥ मनोभवतनोर्मध्यादुद्धृता शर्करा यतः। तन्मयोऽसि महाशैल पाहि संसारसागरात् ॥६८॥

यो द्द्यात् शर्कराशैलमनेन विधिना नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति ब्रह्ममन्दिरम् ॥६९॥
चन्द्रादित्यार्कसंकाशमधिरुद्यानुजीवितम् (जीविभिः) ।
स हैमयानमुत्तिष्ठेत् स च विष्णुप्रभो(ः)दिवम् ॥७०॥
ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ।
आयुरारोग्यसंपन्नो यावज्जन्मायुतत्रयम् ।
भोजनं शक्तिः कुर्यात् सर्वशैले विमत्सरः ॥७१॥

इति स्वल्पमत्स्यपुराणे षट्पादकार्या(?)साहस्रे दानविधौ अष्टमोऽध्यायः ॥

### मत्स्य उवाच-

रैनोक्तानि यानि गुह्यानि महादानानि षोडरा ।
तानि च संप्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥१॥
महादानानि देयानि संसारभयभीरुणा ।
अनित्यं जीवनं यस्माद्वसुधातीव चञ्चला ॥२॥
केशेष्विव गृहीतेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ।
सुवर्णमेरुतेः(१)कृत्वा पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥३॥
नुलाधृतं चैकतश्च यजमानं सपत्नीकम् ।
अथवाष्टलोहमयम्भयवा रत्नसंम्(मि१)तम् ॥४॥
अथवा रत्नसंयुक्तमथवा वीहिणा युतम् ।
यच भवेत् कलारूपं धान्यँरत्नानि(१)वा युतम् ॥५॥
पुरुषष्टौ (षाष्ट १) महादानं प्रदद्यान्मकरे रवौ ।
विषुवे अयने वापि जन्मक्षे मृत्युसङ्कटे ॥६॥

१. स्त. म. ६. १. = आ. म. २७४.१८ """ २ = """ २३३-२४२ """ ३१३-२३८ = """ ११३-७२२ """ ११३-२३८ = """ ५६३-७२२

२. सुवर्णमेरदानं विवक्षितमिति भाति

३. अष्टधातुयुतदानविषये दानसागरे द्रष्टव्यम् ; तथा दानमयूखे तुलापुरुष-दानप्रयोगप्रकरणे बहुविधद्रव्ययुतिमदं दानं प्रपश्चितं द्रष्टव्यम् ।

४. रत्नैरिति तृतीया अपेक्षिता अत्र ।

प्र. अष्टद्रव्यैः पुरुषेण सह तुलाधृतैः दानं विवक्षितम्। अष्टद्रव्याणि च ताम्रं, सुवर्णं, रत्ततं, तिलः, ब्रीहिः, यवः, यवात्रम्, अष्टमं त न स्पष्टम्; ग्रुद्धान्नमेकं, यवादिधान्यमिश्रमेकमिति स्यात्।

प्रथमं ताम्रपुरुषं सौवर्णमपि राजतम् । तिल्ब्रीहियवं धान्यमन्नं च यवसंभवम् ॥७॥ क्षीरिवृक्षसमं युतं ( समायुक्तं ) चतुर्हस्तप्रमाणतः । रोपयेदण्डयुग्मं च चरकादनकान्वितम्(?) ॥८॥ तुलादण्डं वामहस्तं त्रिहस्तं तस्य मण्डलम् । <sup>°</sup>वेद (दीं?) वज्रान्वितं (तां?) कुर्याद्धातृ(तुः)राजविनिर्मितम् (ताम्ः) ॥९॥ <sup>च</sup>पट्टपट्टमयं चापि लताशाटान्वितं च वा । तुलान्ते कुम्भसंयुक्तं किङ्किण्यन्ता(न्तः) विमृषितम् ॥१०॥ दण्डमध्येऽपि तद्वत् स्यात् पूजामन्त्रं शृणु द्विजाः (१)। नमस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वां च समाश्रिता ॥ साक्षीभूतजगद्धात्रा निर्मिता विश्वयोनिना ॥ ११॥ एकतः सर्वतत्त्वानि तथानृतग (शः) तानि च । धर्माधर्मकृतं ( तां ? ) मध्ये स्थापितानि (सि ?) जगदिद्वजाः ॥ त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणमिह कीर्तिता । मां तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमो ऽस्तु ते ॥ १३ ॥ योऽसी तत्त्वाधिपो देवः पुरुषः पञ्चविंशकः । स एवाधिष्ठितो देवि त्वयि तस्मान्नमो ऽस्त ते ॥ १४ ॥ नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंज्ञक । त्वं हि तारय मामस्मात सर्वकल्मषकर्दमात ॥ १५ ॥ पुण्यकालं समासाद्य त्वयैव ( कृत्वैव )मिषवासनम् । पुनः पदक्षिणं कृत्वा तुलामारोहयेद्बुधः ॥ १६ ॥

६. आ. म. २७४. ३१ १-२. द्वारेषु कार्याणि च तीरणानि चत्वार्यपि **धीरव-**नस्पतीनाम्

७. वेद्यां दश्चविधायुधनिवेशनं चतुर्वर्गचिन्तामणावुष्ट्रतम्; च. चि. दान० पृ. १९४, ५.

८. आ. म. २७४. ३४९.

आ. म. चगद्धिते ; हेमाद्रणुद्धृतमत्स्यपाठे 'चगित्रये' इति ।

खडगचर्मसमायुक्तः सर्वाभरणभृषितः । धर्मराजमथादाय हेमसूर्येण संयुतः ॥ १७ ॥ कराभ्यामूर्ध ( ध्वं ) मुष्टिभ्यामास्ते पश्यन् हरेर्मुखम् । ततो हारतुलाधारो निस्शेष ( न्यसेयुः ) द्विजयुङ्गवाः ॥ १८ ॥ मासा ( समा ) दभ्यधिकं यावत् काञ्चनं चापि निर्मलम् । ें पृष्टिकामुष्टि (?) कुर्वीत पुष्टिकामो नरेश्वर II १९ II क्षणमात्रं ततः स्थित्वा पुनरेवमुदीरयेत् । नमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते सनातनि ॥ २० ॥ वितामहेन देवि त्वं निर्मेले (निर्मिता ) परमेष्ठिना । त्वया घतं जगत्सर्वं बहिः स्थावरजङ्गमम् ॥ २१ ॥ सर्वभूतात्मभूतान्त (न्ते ?) र नमस्ते विश्वधारिणे (णि ?) ततोऽवतीर्य गुरवे पूर्वमर्धं निवेदयेत् ॥ २२ ॥ ऋत्विगभ्यो ऽपरमधं त दद्याद्दकपूर्वकम् । गुरवे प्रामरत्नानि ऋत्विग्भ्यश्च निवेदयेत् ॥ २३ ॥ दीनानाथविशिष्टादीन् पूजयेद्ब्राह्मणैस्सह । न चिरं धारयेद्देहे हेम संप्रोक्षितं बुधः ॥ २४ ॥ स तिष्ठेत परमं स्थानं शोकव्याधिहरं नृणाम् । शीव्रं परस्वीकरणात् श्रियमाप्नोति पुष्कलम् ॥ २५ ॥ अनेन विधिना यस्त तुलापुरुषमाचरेत्। प्रतिलोकाधिपस्थाने प्रतिमन्वन्तरं वसेत् ॥ २६ ॥ विमानेनार्कवर्णेन वर्चंसा गुणशालिना । पुज्यमानो ऽप्सरोभिश्च ततो विष्णुपुरं त्रजेत् ॥ कल्पकोटिशतं यावत् तस्मिन् लोके महीयते ॥ २७ ॥

१०. आ. म. २७४. ६८ १,२. पुष्टिकामस्तु कुर्वीत भूमिसंस्थं नरेश्वरः।

११. आ. म. °भूतस्थे

कर्मक्षयादिति पुनर्भवि राजराजो

भूपालमौलिमणिरञ्जितपादपद्मः ।

श्रद्धान्वितो भवित यज्ञसहस्रयां जी बाहुपतापजितसर्वमहीशलोकः ॥ २८॥

यो दीयमानमपि पश्यति धर्मयुक्तः

कालान्तरे स्मरति वाचयतीह लोके।

यो वा शृणोति पठतीन्द्रसमानरूपः

प्राप्नोति संशमवशं (१) नरदेवयु( जु )ष्टम् ।। २९ ॥

इति स्वल्पमत्स्यपुराणे "तुलापुरुषे नवमो ऽध्यायः।

१२. आ. म. प्राप्नोति धाम स पुरन्दरदेवजुष्टम्।

## श्रीमगवानुवाच—

ें अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।
नाम्ना हिरण्यगर्भाख्यं महापातकनाशनम् ॥१॥
पुण्यं दिनं समासाद्य तुलापुरुषदानवत् ।
ऋत्विङ्मण्डपसंभारम्षणाच्छादनादिकम् ॥२॥
कुर्यादुपोषणं तद्वल्लोकसाधारणं बुधः ।
पुण्याहवाचनं कृत्वा तद्वत्कृता(त्वा १)धिवासनम् ॥३॥
बाह्मणैः खनयेत्कुण्डं तपनीयमयं शुभम् ।
आसप्तत्वगुणोच्छ्रायं वे हेमपङ्कजगर्भवत् ॥४॥
विभागहीनं विस्तार आज्यक्षीरादिपूरितम् ।
दशद्वीण सरत्नानि पात्रं शुचि तथैव च ॥५॥

```
स्व. स. १०. १-८,
                               88--83
          9=- 99
                     " " २७६.१
      " १३१.२
                     " " " ७,१०३. १११९६ १३१.३
         29-28
                     11 11 11 71 7199. 9.
          २६
                    " " " 3318. 8318. 0415
          २७
                    ११ ११ ११ २८०.१
          २८ =
                     11 11 11 4912
           7938 =
                     " " " 43-80
          30-38
                        " 767.8
           34
                     " " २८३.१
          ₹७ =
  आ. म. आनयेत्कुम्मं। २१० आ. म. द्विसतत्यङ्गुलोच्छ्रायं।
28
```

हेममालं सपिटकं रविरादित्यसंयुतम् । तथाप्युपस्करं चैव सोपवीतं सकाञ्चनम् ॥६॥ पार्श्वतः स्थापयेत्तद्वद्धेमकुण्डकमण्डलम् । पद्माकरपिधानं स्यात् समन्तादङ्गुलाधिकम् ॥७॥ मुक्तावलीसमोपेतं पद्मरागद्लान्वितम् । ततो मङ्गलशब्देन ब्रह्मघोषवरेण चैं ॥८॥ पूजापूर्वकमुत्सुज्य मन्त्रमेतदुदीरयेत्। नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च ॥९॥ सर्वलोकसुधा(रा ?)ध्यक्ष जगद्धात्रे नमो नमः । भूर्लीकप्रमुखा लोकास्तव गर्भे व्यवस्थिताः ॥१०॥ नमस्ते भुवनाधार नमस्ते भुवनाश्रय। नमो हिरण्यगर्भाय रत्नगर्भाय वै नमः ॥११॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डविधिमुत्तमम् । यत् श्रेष्ठं सर्वदानानां महापातकनाशनम् ॥१२॥ पुण्यं दिनं समासाद्य वृद्धिश्रोद्धं समाचरेत । मातृणां पूजनं कृत्वा कोष्ठषोडशकं लिखेत् ॥१३॥ तन्मध्ये च त्रिकोणं स्यात् तद्घाद्यं वलयत्रयम् । शुक्कवर्णेन रचयेत् पदेषु कलशः(शं ?) कमात् ॥१४॥ पीठेशानपि तच्छक्तीः गणेशं कलशे ऽर्चयेत् । र्इिकुम्भेषु च दिक्पालान् स्वस्तिकेषु तथा ग्रहान् ॥१५॥ दम्पती पूजयेत्पूर्वं दिगगजांश्च विशेषतः। सुवर्णं रजतं ताम्रमेकैकस्य परुं परुम् ॥१६॥ तद्धेंन तद्धेंन वित्तशाट्यं न कारयेत्। मध्यकुम्मे विनिक्षिप्य पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥१७॥

३. आ म. बहि॰। ४. आ म रवेण च। ५. कुम्भद्रये इत्यर्थः।

शालग्रामं न्यसेत्पूर्वे क्यान ऋचमीरयन् । लिप्यक्षरं तथाग्नेये मधुवातेति संस्मरन् ॥१८॥ याम्ये स्वर्णं स्फटिकं च कुशावल्केति संपठन् । पञ्चत्रीहींश्च नैऋते यज्जायत ऋचा स्मरन् ॥१९॥ आदित्येति च मन्त्रेण ईशाने सैसकं न्यसेत्। र्डशे (इषे ?) त्वेति च संजप्त्वा स्वगृह्योक्तविधानतः ॥२०॥ कोशेयवस्त्रसंवीतं तिलद्रोणेऽपि विन्यसेत् । तथाष्ट्रादश धान्यानि समन्तात्परिकल्पयेत् ॥ २१ ॥ स्थापयेद्वस्नसंवीतान् पूर्णकुम्भान् दशैव तु । दशैव धेनवो देयाः सहेमाम्बरदोहनाः ॥ २२ ॥ पादुकोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणाः ( णैः ? )। भक्ष्यभोज्यान्नदीपेक्षुफलमाल्यानुलेपनैः ॥ २३ ॥ नमो ८स्तु विश्वेश्वर विश्वघाम जगत्सवित्रे भगवन्नमस्ते ॥ २४ ॥ विभज्य सप्तधा दद्याद्दीनेषु कृषणेषु च । भागैकं गुरवे दद्यात् सर्वसंसारमोचनम् ॥ २५ ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि कामधेनुविधि परम् । सर्वकामफलं नॄणां महापातकनाशनम् ॥ २६ ॥ काञ्चनाशीतिशुद्धस्य घेनुरत्नं च कारयेत् । वेद्यां कृष्णाजिनं न्यस्य तिलप्रस्थसमन्वितम् ॥ तथाष्ट्रादश धान्यानि समन्तात् परिकल्पयेत् ॥ २७ ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि हिरण्याश्वविधि परम् । अस्य प्रसादाद्विपेन्द्रा अनन्तं फलमइनुते ॥ २८॥ हेमवाजिमयं कुर्यात् पौलान्त्ये पतिरेव च (?)। शक्तितः त्रिपलाद्ध्वं पलैकेनापि शक्तितः ॥ २९ ॥ पादकोषानहं (ह) छत्रं (त्र) चामरासनभाजनैः। पूर्णकुम्भाष्टकोपेतं मालेक्षुफलसंयुतम् ॥ ३०॥

६. को मन्त्रोऽभिप्रेत इति न ज्ञायते।

शय्यां सोपस्करां तद्वद्धेममार्तण्डसंयुत ( ता ? ) म् । ततः सर्वीषधिजलैः स्नापितैर्देवैपुङ्गवैः ॥ ३१ ॥ इममुदीरयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जिलः । नमस्ते देवदेवेश वेदाभ ( ह ? )रणिलप्सवः( ०प्सुना ) ॥ वाजिरूपेण मामस्मात् पाहि संसारसागरात् ॥ ३२ ॥ त्वमेव सप्तधातणां ( सप्तधा भूत्वा ) छन्दोरूपेण भास्करम् ( र ? )। यस्माद्भामयसे होकान् ततः पाहि सनातन ॥ ३३॥ एवमुचार्य गुरवे सर्वस्वं विनिवेदयेत् । तद्वत्पापक्षयाद्वानोर्लोकमभ्येति शाश्वतम् ॥ ३४ ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि हेमहस्तिमयं शुभम् । यस्य प्रसादाद्भवनं वैष्णवं याति मानवः ॥ ३५ ॥ हेमसिंहमयं चैवं वृषं हेममयं तथा। अष्टनागं सुवर्णस्य लोहाष्टकमयस्य वा ॥ देवेभ्यो वापि विप्रेभ्यः सोऽनन्तं फलमश्नुते ॥ ३६ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि महादानमनु त्तमम् । पञ्चलाङ्गलकं नाम महापातकनाशनम् ॥ ३७॥ स्वर्णह्रप्यमयं कुर्यात् ताम्रस्य च पलाष्टकैः। अथवा दारुघटितं त्रिषु वर्णेषु भूषितम् ॥ ३८॥ विश्वचकं स्वर्णचकं त्रिशूलं शङ्कमेव च । दर्पणं व्यजनं छत्रमत्र श्राद्धं विवर्जयेत् ॥ ३९ ॥ \*द्रिदः खलु यो दद्यात्तिलघेनुं<sup>९०</sup> विधानतः । गोमयेनोपिकप्याथ तत्र घेनुं समालिखेत् ॥ ४० ॥

७. आ. म. ॰वेंद ८. आ. म. °लम्पट ९. आ. म °द्भासयसे

<sup>\*</sup> स्व. म. १०. ४० = कुत्यकल्पतरु पृ. १५२. प. १५, १६

१०. आ. म. तिलघेनुर्नास्ति । अस्ति कृत्यकल्पतरौ ; दान॰ पृ॰ १५२ ; च. चि. पृ० ४०५ ; किन्तु तत्र उभयत्र स्वल्पमत्स्यस्था एव श्लोकाः आदित्यपुराणादित्युद्धृताः ।

तिल्हें: कार्यें च सर्वार्धं तिलघेनुं प्रकल्पयेत् । खुरेषु चैवं शृङ्गेषु देयं कनकमेव च । <sup>१२</sup>सतिलां गां दक्षिणां च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ४१ ॥

एवं धेनुं प्रयच्छेद्यः स्वर्गलोकं स गच्छति । ऋणैः सर्वैः प्रमुच्येत कर्मणा मनसाश्चितैः ॥ ४२ ॥ तिलसंख्या तु यावद्धै तावत्कोटिशतानि च । मोदते तत्र वर्षाणां स्वर्गलोके न संशयः ॥ ४३ ॥ अथ मानुष्यमायाति कदाचित् कालपर्ययात् । धनधान्यसमृद्धिमान् जायते श्रीमतां कुले ॥ ४४ ॥

> <sup>१३</sup>सदक्षिणां काञ्चनचारुश्रङ्गीं कांस्योपदोहां द्रविणान्तरीयाम् । धेनुं तिलानां ददतां द्विजातये तेषां तु लोकाः सुलभा भवन्ति ॥ ४५ ॥

धेन्वाः प्रमाणेन समप्रमाणं धेनुं तिलानामपि च प्रदाय । दीनाय विधाय यमस्य लोकें न यातनां कांचिदुपैति मर्त्यः ॥४६॥

ैयाँवद्वत्सस्य द्वी पादी मुखं योनी प्रदश्यते । तावद्गीः पृथिवी तुल्या यावद्गर्भं न मुञ्जति ॥४०॥

११. कृत्यकल्पतरी 'सर्वाङ्गं'।

१२. स्व. म १०. ४१ = क्रत्यकल्पतरु पृ. १५३, प. १, २, ३.

" " " ४२ = " " " " ४, ५

" " " ४३ = " " " " ८, ९

" " " ४४ = " " " " ११-१४

१३. कृत्यकल्पतरी महाभारतादिति ।

१४. या. स्मृतौ. आचार. दान. २०७। कृत्यकल्पतरौ दान. पृ० १५८

यो ददाति बलीवर्दं युक्तेन विधिना नरः। अन्यङ्गं गोप्रदानान्ते तदेव फलमश्नुते ॥ ४८॥ दशधेनुप्रदानेन तुल्यैका किपला मता। दानं सर्वं वरं दत्वा दशघेनुपदो भवेत् ॥ ४९॥ <sup>१४</sup>हेमशृङ्गी रौप्यखुरां ताम्रकांस्यसमन्विताम् । <sup>१६</sup>गां दत्वा स्वर्गमायाति गृहीत्वा च द्विजर्षभाः ॥५०॥ तावन्नरक(१)मायाति यावदृगोलोमसंख्यया । सवत्सां कपिलां दत्वा दशवंश्यान् समुद्धरेत् ॥५१॥ होमार्थमिशहोत्रस्य यो गां दद्यादयाचिताम् । त्रि(ः) वृत्ता (वित्त) (पूर्णा पृथिवी तेन दत्ता न संशयः ॥५२॥ समानह्यां कपिलां घेनं दद्यात्पयस्विनीम् । स्रवस्रां वस्रसंवीतामिशलोके महीयते ॥५३॥ पाण्डकम्बलकर्णान्तां सवत्सां कांस्यदोहदाम् । प्रदाय वस्त्रसंवीतां साध्यानां लोकमश्नुते ॥५४॥ समानवत्सां श्वेतां च सर्वस्वैरिप संयुताम् । गन्धर्वाप्सरसां लोकान् दददाप्नोति मानवः ॥५५॥

```
या. स्मृतौ. आचार. दान. २०४
१५.
     स्व म. १०.४६ = कृत्यकल्पतरु पृ.१५३. प.१६.१७,पृ.१५४. प. १.२
28.
     77 77 77 89
                            " १46 " 9,90.
      " " " 86
                      " " " १६,१७
                            " " २१, पृ. १५९. प. २.
      " " " " 89
                             " १49 " 8.
      " " " 40 =
     " " 483,8=
                             " १५९ " 4.
                            33 33 33 88, 88.
       33 32 42
                       53
     22 22 22 22
                            " १६३ " १२, १3
                       22
     22 22 22 22 48 =
                             " १६४ " १६ )
                               १६५ भ १ ई
     99 99 99 66
                        3.3
१७. च. चिन्तामणी पृ० ४२०.
```

<sup>९७</sup> भोगसौख्य प्रदा श्वेता धूम्रता (धूम्रामा) तापनाशिनी । कृष्णा स्वर्गप्रदा ज्ञेया गौरी च कुरुवर्धिनी ॥५६॥ रक्ता रक्तपदा ज्ञेया पीता दारिद्रचघातिनी । पत्रप्रदा कृष्णसारी नीला धर्मविवधिनी ॥५७॥ कपिला सर्वपापध्नी नानावर्णा च मोक्षदा । घेतोदकी(पीतोदकां) व च नृणां (जग्धतृणां) भसदेहां न दापयेत् ॥५८॥ उन्मत्तामङ्गहीनां च मृतवत्सामहायनीम्(त्सां महाशनाम्?) <sup>१६</sup>। केशचेळपुरीषास्थिकव्यादीं सन्धिनीं च गाः(गाम्?) । । ५९॥ <sup>२१</sup>सिंहप्रसृतवत्सां च नित्यं प्रगलितस्तनीम् । र्ने दद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्च सदोषं वृषभं तथा ॥६०॥ फालकृष्टां महीं दत्त्वा सबीजां बीजशालिनीम् । यावत्सर्यकृता लोकास्तावत स्वर्गे महीयते ॥६१॥ यस्त गोष्पदमात्रं तु प्रयच्छति वसुन्धराम् । स नन्दनवनं याति विमाने सूर्यवर्चसम् ॥६२॥ अपि गोचर्ममे त्रेण सम्यग्दत्तेन मानवः। धौतपापो विशुद्धात्मा स्वर्गलोके महीयते ॥६३॥

१७३. कृत्यकल्पतरौ पृ० १६८, ब्रह्मपुराणादिति ।

१८. कृत्यकल्पतरी पृ० १६९, ब्रह्मपुराणादिति । १९. च. चिन्तामणी पृ०४४८

२०. च. चिन्तामणौ 'खलाम्' २१. सिंहमास इत्यर्थः।

२२. स्व. म. १०. ५६-६३ = कृत्यकल्पतरु पृ. १६८. १५-१६९.६. " १८७. ५-१०.

२३. गोचर्मशब्दः गोष्पदवत् प्रदीयमानाया भूमेः परिमाणवाची। स च परिमाणविशेष उपरि ६४ क्ष्णोके प्रोक्तः। तथा आ. म. २८३. १४-१६. 'दण्डेन सप्तहस्तेन त्रिंशहण्डं निवर्तनम्। त्रिभागहीनं गोचर्ममानमाह प्रजापतिः॥ मानेनानेन यो दद्यान्त्रवर्तनशतं बुधः। विधिनानेन तस्याग्रु क्षीयते पापसंहतिः॥ तद्धमथवा दद्यादिष गोचर्ममात्रकम्। भवनस्थानमात्रं वा सोऽपि पापैः प्रमुच्यते॥' कृत्यकल्पतरौ च दान. पृ. १६१, आदित्यपुराणवचनम्—यस्तु गोचर्ममात्रां वै प्रयच्छति वसुन्धराम्। वाचस्पत्ये महाभारत (अनुशासन) वचनम्—अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन पूयते। गोचर्मपरिमाणं च बृहस्पत्युक्तं यथा—सप्तहस्तेन दण्डेन त्रिशहण्डेनिवर्तनम्। दश तान्येव गोचर्म ब्राह्मणेम्यो ददावि यः॥ वासिष्ठोक्तं गोचर्मपरिमाणंतु तत्रैवोद्धतम्। यथा—दशहस्तेन वंशेन दशवंशान् समन्ततः। पञ्च चाम्यधिकान् दद्यादेतद्गोचर्म चोच्यते॥

<sup>२४</sup>दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्ण्डानि वर्तुलम्। दश तान्येव विस्तारः तदृगोचर्म निगद्यते ॥६४॥ आदित्यो वरुणो विष्णुर्बह्या सोमो हुतारानः । श्लपाणिश्च भगवानभिनन्दति भूमिदम् ॥६५॥ भमि यः प्रतिगृह्णाति यश्च भूमि प्रयच्छति । उभी ती पुण्यकर्माणी नियतं स्वर्गगामिनी ॥६६॥ यस्त दद्यान्महीं विप्रो ब्राह्मणायाग्निहोत्रिणे । स याति परमं स्थानं गृह्णानश्च न संशयः ॥६७॥ इक्षमिस्सन्ततां भूमि यवगोधूमशालिनीम् । यो ददाति द्विजश्रेष्ठ पुनरावर्तते न च ॥६८॥ सर्वेषां चैव देवानां सप्तजनमानुगं फलम् । हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजनमानुगं फलम् ॥६९॥ आस्फोटयन्ति पितरः प्रवदन्ति पितामहाः । भूमिदो ऽस्मत्कुले जातः सो ऽस्मान् सन्तारयिष्यति ॥७०॥ कृष्णलाः पञ्चमानं त माषैः षोडशभिः स्मृतम् । स्रवर्णमेकं तद्दानं दानात्स्वर्गमवाप्नुयात् ॥७१॥ त्रीणि तुल्यपदानानि त्रीणि तुल्यफलानि च। सर्वकामद्रघा घेनुः गावः पृथ्वी सरस्वती ॥७२॥

```
= कृत्यकल्पतरु पृ. १८७. प. ११, १२
28.
    स्व म. १०. ६४
                              " ? 266 " 3, 8
     " " " 程
                             " १८6. " १२-१७
     " " इह-हट
                              " 990. " 8,4.
     25 11 11 89
                         " " " " " 90,86
     1) 22 99 190
                        » » 868 » c36
     " " " 99
                             11 200 11 3,8.
                         99
     99 99 99 19
```

<sup>२४</sup>मासमेदे दानमेदाः शस्ता एव दिनर्षभाः। माघे मासि तिला(:) शस्ता(:) तिलघेनुस्तथैव च ॥७३॥ इध्माग्निभोजनं चैव दत्वा स्वर्गान हीयते । फाल्गुने बहवो गावो वस्त्रं कृष्णाजिनान्वितम् ॥७४॥ गोविन्दपीणनार्थाय दातव्यं द्विजसत्तमाः। २६ चैत्रे विचित्रवस्त्राणि शयनान्यासनानि च ॥७५॥ विष्णोश्च पीतये तानि देयानि ब्राह्मणेषु च । गन्धमाल्यानि वैशाखे देयानि मण्डितानि च ॥ ७६ ॥ देयानि द्विजमुख्येभ्यो मधुसूदनत्राये। उद्कुम्भानि घेनुं च तालवृन्तं सचन्द्नम् ॥ ७७ ॥ त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थं दातव्यं ज्येष्ठमासके । उपानद्युगरुं छत्रं रुवणामरुकानि च ॥ ७८ ॥ आषाढे माधवपीत्ये दातव्यानि त भक्तितः। श्रावणे मासि विपेन्द्र दद्याक्तनकपङ्कलम् ॥ हृषीकेशप्रीणनार्थं शरणं ( लवणं ? ) सगुडोदनम् ॥ ७९ ॥ मासि भाद्रपदे दद्यात् पायसं मधुसर्पिषी । माधवस्य च पीत्यर्थं तथा सरार्करं दिघ ॥ ८०॥

२५. इतः परं प्रतिमासं भिन्नानि नानादानानि । अत्र दृश्यमानः सन्दर्भः प्रायः कृत्यकल्पतरौ दान° (पृ० २३६) च. चि. दान. पृ० (८८५) उदाहृतवामनपुराणवाक्यजातमनुकरोति ।

२६. स्व. म. १०. ७३<sub>३,४</sub> = क्ट्यकल्पतरु पृ. २३९ प. ६, ७.

" " " ७४<sub>३,४</sub> = " " " " ८

" " १०. ७६ = " " २३९. " ११,१२

" " " ७५,७८<sub>१,२</sub> = " " ११,१२

" " " ७९<sub>५,६</sub> = " " ३४० " ४.

" " " ८०<sub>६,२</sub> = " " १८, १२

२७. अलङ्करणानीति अर्थः स्यात् । उदाद्धतवामनवाक्येषु अस्य पदस्य छाया नास्ति ।

प्रीत्यर्थं पद्मनाभस्य देयमाध्युजेन वै । रजतं कनकं दीपं मणिमुक्ताफलादिकम्<sup>२८</sup> ॥८१॥ दातन्यं केशवपीत्ये कार्तिके मासि भो द्विजाः। शाल्यनं च गुडानं च पिष्टकानं गुडान्वितम् । दातव्यं केशवपीत्ये मार्गशीर्षेण वै सदा ॥८२॥

दासीदासमलङ्कारपट्टवस्त्राणि यानि च। इन्धनानि सुगन्धीनि द्यात्पौष्ये प्रयत्नतः ॥८३॥

> इति स्वल्पमत्स्ये .... दानप्रकरणे दशमोऽध्यायः

२८. स्व. म १०. ८१, ८२,, = कृत्यकल्पतंरु पृ. २४० प. ६, ७, ८.

<sup>&</sup>quot; " " दहेवुन्

## विष्णुपुराणविषयसूची

## मध्वाचार्य आद्य

[This subject-index of the Viṣṇu-Purāṇa is based on the Gītā-Press edition of this Purāṇa. The adhyāya-concordance of this edition with the two other editions—viz. of Jīvānanda and Venkaṭeśvara Press—has also been given here by the author for the facility of reference. According to our scheme of the Subject-Concordance of the Purāṇas, the present Viṣṇu-Purāṇa index has been divided into the ten major sections, called Khaṇḍas, which cover almost all the topics dealt with in this Purāṇa.

Below is given in English a brief Khanda-wise summary of this Sanskrit subject-index of the Viṣṇu-Purāṇa:

### I KHANDA

# Sarga (creation) and Pratisarga (Dissolution of the universe).

## 1. Sarga (Creation)—

Three kinds of creation—(1) Prākṛta (Elemental) by Viṣṇu, (2) Dainandinīya (Ephemeral) by Brahmā at the end of each Pralaya (Brahmā's Night) and (3) Nitya (Constant) by Dakṣa and other Prajāpatis; the definition and details of these three kinds of creation; Viṣṇu as the creator, preserver and destroyer; the rescue of the earth by Viṣṇu-Varāha; mental creation by Brahmā; the creation of Rudra, Asuras, Gandharvas Nāgas, Yakṣas, Rākṣasas, Pitṛs Devas, men, goats, cows, Chandas-s Yajūas etc. from various limbs and bodies (tanu-s) of Brahmā; the nine mind-born sons of Brahmā—Bhṛgu etc., called nine Brahmās,—the creation of eleven Rudras by Rudra; the creation by

Svāyambhuva Manu, by Dakṣa, by Dharma, by Adharma and by Kaśyapa; Soma, Pṛthu etc. anointed in sovereignty by Brahmā and the sages.

## 2. Pratisarga or Pralaya (Dissolution)—

Pralaya also called here as Pratisamcara; four kinds—Prākrta (Elemental), Naimittika (Occessional), Ātyantika (Absolute) and Nitya, (Perpetual); their definitions and detailed description.

### II KHANDA

## Tīrthas, Bhūgola and Bhuvanakośa

## 1. Tīrthas (Places of pilgrimage)—

No separate chapter on tīrthas; only Aśvatīrtha, Piṇḍāraka tīrtha, Puruṣottama tīrtha, and Śālagrāma tīrtha are mentioned.

## 2. Bhūgola (Geography) —

Names of mountains, hills, rivers, forests, places (cities, villages etc.) given alphabetically.

#### 3. Bhuvana-kośa-

Seven Dvīpas (Continents), Seven Samudras (Oceans) surrounding the Dvīpas, Lokāloka mountain, Meru mountain, Aṇḍakaṭāha; the extent of the earth; Varṣas (countries), Varṣa-parvatas (i.e. mountains separating varṣas from each other), Kula-parvatas (mountain ranges) of each Dvīpa; Rivers rising from these Parvatas.

The 9th Dvīpas (or Divisions) of Bhārata Varṣa, mountains, rivers, and Janapadas of Bhārata Varṣa.

Brahmānda, its position, and expanse.

Jyotişa (astronomy) connected with the Bhuvanakośa—Kāla (time), Ayanas, Heavenly Gaṅgā, Dhruva star; Śiśu-māra cakra as a form of Viṣṇu,! Dhruva residing in its tail; Saptaṛṣis; Nine planets, their chariots and horses; Bālakhilyas; all planets and stars tied to Dhruva with the rays of the Pravaha Vāyu.

The battle of the Mandeha Rākṣasas with the sun at the time of its rising, their destruction by  $arghyad\bar{a}na$  and  $sandhyop\bar{a}sana$ .

The rains and its cause.

#### III KHANDA

## Śāstras, Vidyās and Kalās (Various sciences and arts)

Vedas, their Śākhās; the propounders of the Śakhās of the four Vedas, the five divisions of the Atharvaveda, original Purāṇa Saṃhitās, eighteen Purāṇas (Mahā-Purāṇas) and their names, Upapurāṇas mentioned as such without names, Viṣṇu Purāṇa and the tradition of its transmission; Āyurveda, and its divisions into eight aṅgas by Dhanvantari.

## IV KHANDA

## Philosophy, Religion and Religious Sects

The Ārhata (Jain) and the Bauddha religions propagated by Māyāmoha among the Asuras, by which they gave up the Vedic Dharma, and were consequently defeated by the gods; knowledge of the Self, and of the God; the nature of Brahman and the Ātman; Pain, its nature, the means of its destruction; Praṇava (the syllable 'Om'); devotion and the devotee; Yoga, its definition and aṅgas (mentioned in the Khāṇḍikya-Keśidhvaja Saṁvāda), pleasure and bliss, its nature.

## V KHANDA

## Ācāra (Performance of good and enjoined actions), and Karma-Kāṇḍa (Performance of religious rites)

The duties of the four Aśramas and the Varnas; worship, Govardhana worship, Indra-worship by the

Gopas or cow-herds, Viṣṇu-worship; Yajñas, Śrāddhas, Aṣṭakā Śrāddha, Shrāddha performed by Ikṣvāku; fruits of actions.

## VI KHANDA

## Kāla, Yuga, Manvantara, Kalpa

The nature and glorification of  $K\bar{a}la$  (time); the period called the day of Brahmā, and of Viṣṇu;  $K\bar{a}la$  as the form of Viṣṇu.

Divisions of Kāla (Nimeṣa etc.); Kalpa; the period of life of Brahmā called para, half of this period is called parārdha.

Yuga-s—Kṛta etc., Viṣṇu as Kapila in Kṛta, Cakravartin in Tretā, Veda-Vyāsa in Dvāpara, and Kalki at the end of Kali-Yuga. The four Tithis called Yugādyās (i.e. falling in the beginning of the four respective Yugas).

Seven Sages of every Yuga.

Kaliyuga, its nature and its special importance. Manvantaras, the past and future Manus, the Avatāras of Viṣṇu in each Manvantara, Devas, Rṣis and the sons of Manu of each Manvantara; the division of Vedas by Vyāsa in each Dvāpara; the names of 28 past Veda-Vyāsas.

Kalpa, and its period. Pādma Kalpa, Vārāha Kalpa,

Enumeration of the numbers from one to parārdha mentioned in the context of the Prākṛta Pralaya

## VII KHANDA

## Samvadas, Stutis, Nītis, Gathas etc.

1. Sainvāda-s (Conversations or dialogues)—arranged alphabetically according to the names of the speakers.

- 2. Stuti-s (Eulogies of gods)-arranged alphabetically according to the names of gods eulogised, names of the corresponding eulogisers also given.
- 3. Nīti-s (wise sayings, or statements of practical wisdom)—as given in the conversation of Pṛthu and Pṛthivī, of Pṛahlāda and Hiraṇya Kaśipu.
- 4. Gāthā-s—Ślokas sung by Pitṛs, by Pṛthivī and by Yama, respectively called as the Pitṛ-gāthā, Pṛthvī-gāthā and the Yama-gāṭhā.
- 5. Upadeśa-s (Instructions)—by Rbhu to Nidāgha, by Prahlāda to Daityas and to Hiraṇya Kaśipu, by Jaḍa Bharata to King Sauvīra, by Marīci and other sages to Dhruva, by Vasiṣṭha to Parāśara, by Sunīti to her son Dhruva.

#### VIII KHANDA

#### Vamsa and Vamsanucarita

Royal genealogies (arranged alphabetically) — Solar and Lunar dynasties, Ikṣvāku dynasty (Solar), Lunar dynasties of Kuru, Kroṣṭhin, Turvasu, Druhya, Nimi, Pūru, Magadha dynasties, Yadu dynasty, Vaivasvata Manu dynasty.

Carita-s narrated with descriptions of the genealogies: Names of the chief characters alphabetically arranged, e.g. Akrūra, Ajamīḍha, Anuha, Aditi, Anamitra etc.

## IX KHANDA

# Classes and Individuals, and Caritas and Akhyanas belonging to them:

Classes (Names of classes alphabetically arranged)—Apsaras-s, Asuras, Rṣis, Gandharvas, Dānavas, Devas, various classes of the Devas; Devāsura-Yuddha (Wars between the Devas and the Asuras); Daityas, Nāgas, Niṣādas, Piśācas, Manuṣyas, Yakṣas, Rākṣasas, Sarpas.

Individuals—Names (both males and females) of Kings, Gods, Asuras etc., alphabetically arranged.

## X KHANDA

Nirvacanas (Etymologies), Laksanas (Definitions) Gananas (Enumerations) Varnanas (Descriptions) etc.

Etymologies (alphabetically arranged)—of Anakadundubhi, Amāvaśyā, Ārhata, Gandharva, Govinda, Janaka, Dāmodara, Naimittika, Taittirīya, Nārāyana, Putra, Prthivī, Pravaha (a kind of wind), Prācīna-Barhis, Brahmā, Bhagavān, Bharadvāja, Madhuvana, Marut, Mātrā, Rājā, Yoga, Rudra, Vāsudeva, Viṣṇu, Śāntanu, Samkarsana.

Enumerations—Agnis (3), Adityas (12), Osadhis (17), Kula-Parvatas of Bhārata (7), Chandas-s (7), etc.

The references to the Amsas, Adhvavas and the Ślokas where these topics are dealt with in the Purana are given by the author in the Sanskrit-Index].

# विष्णुपुराणस्य मुद्रितसंस्करणानाम् अध्यायादि-संवादः

(Concordance of the Adhyāyas etc. of the Printed Editions of the Viṣṇu-Purāṇa)

गीताप्रेस-संस्करण	वैंकटेश्वरप्रेस-संस्करण	जीवानन्द-संस्करण
(गोरखपुर)	(मुम्बई)	(कलकत्ता)
श्रारा१-१२८	गी. प्रे.वत्	४।२।१-१२८
४।२।१२९-१३३	"	81\$15-8
पाइरा१-३०	,, अत्र गी. प्रे.	<b>इलोकाः</b>
		२०-२१, २७-२९
		२६ उत्तरार्धं, ३०
		पूर्वार्धं च न सन्ति
५।३३।१-५२	7)	पाइइ।१-५०;
		अत्र गी. प्रे. रहोकाः
		४८ उत्तरार्धं, ४९,
		५०, न सन्ति
५।३३।५३	"	नास्ति
	ं ि कंत्र केल गा।	***

# शेषं त्रिषु संस्करणेषु समानम्

## व्यवहृतसंकेतविवरणम्

(Explanation of the symbols and abbreviations used)

- १. अत्र प्रथमः स्थूलः अङ्कः अंशस्य ज्ञापकः, द्वितीयः स्थूलः अङ्कः अध्यायस्य ज्ञापकः, सूक्ष्माः अङ्काः रलोकसंख्याज्ञापकाः ।
- २. () एतादृशे कोष्ठके उपात्तविषयस्य पुराणमनुसृत्य प्रासंगिकं विवरणं दत्तम्।
- ३. [] " " पाठान्तरादिविषयस्य विवेचनं कृतम् ।
- इति 'डैस' चिह्नं विषयानुवृत्तिज्ञापकम् ।
- प्र. = द्रष्टव्यम् ।
   [ अस्यां विषयसूच्यां स्थलिनर्देशाः गीताप्रेस (गोरखपुर) मुद्रित विष्णुपुराणानुसारेण प्रदत्ताः सन्ति ]

# विष्णुपुराणविषयसूची

# प्रथमः खण्डः, सर्ग-प्रतिसर्गौ ( सृष्टिस्थितिप्रलयाः )

# (१) विभागः सर्गः सृष्टिः [ सामान्या ]

—इयं (१) प्राक्तता, (२) दैनन्दिनी, (१३) नित्या चेति	
त्रिविधा, तिविधसृष्टीनां लक्षणानि च	१।७।४४-४५
—प्राकृतसृष्ट्याः हेतुः विष्णुः	११२१२७-७०
—दैनन्दिन्याः सुष्ट्याः हेतुः ब्रह्मा	१।४।५०-७।१६
— नित्यसृष्ट्याः हेतवः प्रजापतयः	शिणाइ७
—प्राकृतवैकृताचाः नव सृष्ट्यो जगतो मूलहेतवः	शिपार्य-२६

# (१) प्राकृता सृष्टिः

—अण्डस्वरूपम्, अण्डस्यावरकाणि	शश्द-६०
—चतुर्भुखब्रह्मसृष्टिः	शिराय४-५७
—विष्णुकृता, अन्यक्तादिक्रमेण ब्रह्माण्डसृष्टिः	शिराश-प्र३
—विष्णुः सृष्टिस्थितिलयकर्तेति विश्वदरूपेण कथनम्	१।२।६१-७०
—सृष्टेर्निमित्तकारणं विष्णुरेव	१।४।५०-५२
्राया के विकास करता के किया के	[इ. ७१४७-४८]
—प्राकृतसर्गः त्रिविधः—महतः सर्गः, भूतसर्गः, ऐंद्रियकश्चेति —वराहकर्तृकपृथिन्युद्धरणभूविभागादयः	११५११९-२१
चराहकतृभ्धायन्तु द्धरणसूचिमागाद्यः	१।४।१-४६

## (२) दैनन्दिनी सृष्टिः

## (क) संक्षेपेण सृष्टिनिरूपणम्

— ब्रह्मकर्तृका, सम्बद्धविषयेण सह [ द्र. १।२।५४-५७	] शशा१-२८
—ब्रह्मकर्तृका मानसी सृष्टिः ( अविद्यादि-कुमारान्ता )	शपाश-रह
—दैनन्दिनसर्गः द्विविधः—वैकृतः, प्राकृतवैकृतश्चेति (तत्र	
वैक्कतः पञ्चविधः — (१) मुख्यसर्गः (२) तिर्थकस्रोताः (३) देवसर्गः (४) मानुषसर्गः (५) अनुप्रदसर्गः,	
प्राकृतवैकृतः (१) कौमारः (ब्रह्मविष्णुकर्तृकः )	श्रादारश-रम

(ख) विस्तारेण सर्गनिरूपणम्	१।४।३०-७।१७
—ब्रह्मकर्तृकः <b>शा</b> रीरः सर्गः (असुर-देव-पितृ-मनुष्याणाम्,	
एषां सृष्टौ पूर्वपूर्वशरीरत्यागः, त्यक्तशरीराणां स्वरूपादि-	
कथनम्	
—अजानामुत्पत्तिः, ब्रह्मणो मुखात्	१।५।३०-४१
—अविद्यानां (पञ्चानां ) प्रादुर्भावो ब्रह्मणस्सकाशात्	शिर्धार
—अवीनासुरुप्तिः, ब्रह्मणो वक्षसः	१।४।४-६
—असुराणामुत्पत्तिः, ब्रह्मणो जघनात् ( एते रात्रौ बलिनः,	शपाष्ट
बलकारणं च )	
—अहीनामुत्पत्तिः, ब्रह्मणः केशानां नीचैः पतनात्	१।५।३१-३२
कामस्योत्पत्ति , ब्रह्मणः क्षुधया	शिश्राहर-४५
—क्षुघाया उत्पत्तिः, ब्रह्मणः रजीमात्रात्मिकया तन्वा	शपाप्रश
- क्षेत्रज्ञानामुत्पत्तिः , ब्रह्मणः गात्त्रभ्यः	शक्षाप्रश
—गन्धर्वाणामुत्पत्तिः, गायतः ब्रह्मणोऽङ्गात् , निर्वचनं च	१।७।१-३
—गवामुत्पत्तिः, ब्रह्मणः उद्रात् पार्श्वाभ्यां च	१।५।४६-४७
	381718
छन्दसामुत्पत्तिः, ब्रह्मणो मुखेभ्यः	र. शक्षा <u>पश</u> —५३]
— पितॄणामुत्पत्तिः, ब्रह्मणश्रारीरात् ( एते संध्यायां बलिनः,	१।५।५४-५७
बलकारणं च )	0)442
to the first of the second	शिक्षाच्य-३६
—प्रजाः ब्रह्मणः मानसाः ( ताः सुराद्याः	शिरशार७-रह]
स्थानरान्ताश्चर्त्वार्वेघाः)	01/410
	शिश्वार – २९
्र —ब्रह्मणस्तनवः, ( आभ्य असुरादीनामुत्पत्तिः, आसां	शिहाश्र-१४]
स्वरूपं, नामानि च )	0141100
	? \ \ \?\\\?\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\
— ब्राह्मणादीनां लोककल्यनम् [ प्राजापत्यं	[द्र. ४१–४५]
ब्राह्मणानाम्, ऐन्द्रं क्षत्रियाणाम्, मारुतं वैश्यानाम्,	
गान्धर्वं शुद्रजातीनामित्यादिरूपेण	01015
— भूतानामुत्पत्तिः कुद्धाद् ब्रह्मणः सकाशात्	११६१३४-४०
( एते कोघात्मानः )	0111
—भुग्वादयः ब्रह्मणो मानसाः पुत्राः ( एते नव ब्रह्माणः, एषां	१।५।४५-४६
पत्न्यः ख्यात्यादयः )	
—मनुः ब्रह्मपुत्रः ( स्वायंभुवः, शतरूपाऽस्य पत्नी, अस्य संतितिश्र	2-8/0/8
2	म) १।७।१६–१ <b>९</b>

( तनुस्वरूपम् , मनुष्याः प्रातःसंध्यायां बळिनः, बळकारणं	व ) श्रादा३७-३९
—यक्षाणासुत्पत्तिः, ब्रह्मणः सकाशात्	
( यक्षाणां स्वरूपम् , निर्वचनं च )	१।४।४२-४३
—यज्ञानामुत्पत्तिः, ब्रह्मणः मुखेभ्यः	१।५।५४-५७
[ द्र.	शक्षित, २७-३१]
राक्षसानामुत्पत्तिः, कुद्धाद् ब्रह्मणः सकाशात्	
( एवां स्वरूपम् , निर्वचनं च )	818188-85
रुद्रस्योत्पत्तिः, कुद्धाद् ब्रह्मणः ललाटात् ( अर्धनारीवपुः,	
ब्रह्मण आदेशेन आत्मानं स्त्रीपुरुषभेदेन द्विधा	
विभजनम्, पुनः पुरुषमेकाद्शाया, स्त्रियं च	
बहुधा विमजनम्)	११७।१८-१५
—नीललोहितचद्रोत्पत्तिः, ब्रह्मणोऽङ्के, ( अस्य सप्त नामानि,	
अष्ट स्त्रियः, अष्ट स्थानानि च	81918-68
—रुद्रोत्पत्तिः, एकादशरुद्रनामानि	१।१५।१२२-१२५
—वयसा [ = पक्षिणा ] मुत्पत्तिः ब्रह्मणो वयसः	813186
वर्णानामुत्पत्तिः, ब्रह्मणो मुखादिभ्यः	शुहा३-६
—वेदानां प्रादुर्भावो ब्रह्मणः पूर्वादिमुखेन्यः	१।५।५४-५७
— सनकादीनामुत्पत्तिः, ब्रह्मणः सकाशात् ( एते लोकसृष्टी	
निर्पेक्षाः, उद्रसृष्टौ निभित्तीभूताः )	21012-28
—सर्पाणामुत्पत्तिः, ब्रह्मणः केशसर्पणात् , निर्वचनं च	१।५।४४-४५
— सुराणामुत्पत्तिः, ब्रह्मणो मुखात् ( एते सत्त्वप्रधानाः,	010155 5
दिवा बलिनः, बलकारणं च )	१।५।३३-३४
(३) नित्यसृष्टिः	
	(अध्यायानुक्रमेण)
( मन्वादयः नित्यसर्गस्य हेतवः )	१।७।३७
रुद्रकृता सृष्टिः	
—एकादश रुद्राणाम्, सौम्यादीनां स्त्रीणां च	१।७।१३-३५
स्वायम्भुवमनुकृता सृष्टिः	
—प्रियव्रतोत्तानपादाकृतिप्रस्तीनाम्	१।७।१६-१९
दक्षकृता सृष्टिः	
—श्रद्धादिचतुर्विश्चतिकन्यानाम्	१।७।२२-२५
- Mail 4-201-401-11 11 1	

१ - नवमखण्डे भग्वादिकर्तृका सृष्टिः भग्वादिनामभिस्सह द्रष्टव्या

धर्मकृता सृष्टिः	
् - कामादीनां पुत्राणाम्	१।७।२८-३१
अधर्मकृता सृष्टिः	
—अद्यादीनां पुत्राणाम्	१।७।३२-३६
प्राचेतसदक्षकृता मानसी सृष्टिः	
—देवादीनाम्	१।१५।८७-८८
प्राचेतसदक्षेण पत्न्यां असिकन्यां कृता सृष्टिः	
— षट्सहस्रपुत्राणाम् , षष्टिकन्यानां च	१1१५1८९-१०३
कश्यपकृता सृष्टिः ( स्वारोचिषमन्वन्तरे )	
— आदित्यानाम्	१।१५।१२६-१३४
—दैत्यानाम्	१।१५।१४१-१४३
—दानवानाम्	१।२१।४-१४
—पौलोमादीनाम्	१12१1७-8
— तिरश्चाम्	११२१११४-१७
—गरुडारुणयोः	शिरशाश्व
— सर्पाणाम्	११२१११८-१६
— नागानाम्	शायशाश्य-रश
— पिशाचादीनाम्	१।२१।२२-२३
— उद्धिदाम्	शिरशास्त्र
—यक्षाणाम्	शिरशास्त्र
—रक्षसाम्	शिरशार्थ
– अप्सरसाम्	शिरशास्त्र
—गन्धर्वाणाम्	शिरशास्प
(२) विभागः—िस्थितिः	
—विष्णुकर्तृका ( सम्बद्धविषयेण सह )	१।२।६१-७०
—मन्वादयो नित्यस्थितिकारिणः	शाजाव
आधिपत्त्याभिषेचनम्	
—सोमादीनाम् ( ब्रह्म-महर्षिकृतम् )	१।२२।१-१५
(३) विभाग :प्रतिसर्गः[= प्रलयः]	
	222
प्रतिसर्गप्रकरणम् [प्रतिसञ्चरोऽयम् ६।३।३ ; नैमित्तिः	भारात्रावध-
प्रलयविवरणमत्र ; मध्ये कलियुगधर्मादिविवरणम् ,	६।१।१-८।१
खाण्डिक्य-केशिध्वजयोयीगविषयकसंवादश्च ]	41416-018

## प्रतिसर्गपर्यायाः

—उपसंहार: ६।१।७

—उपसंहृतिः ६।१।२, ६।२।४१

—प्रतिसञ्चरः ११२१२५, ११३१२२, ६१३११, ६।८११,

— प्रतिसर्गः ६।८।२

—महाप्रलयः ६।१।२

—लयः ६।३।१

[ इ. शरारु-२५, रापारु, राटा९८-६६]

#### प्रतिसञ्चरः

— सः त्रिविधः — नैमित्तिक-प्राकृत-आत्यन्तिकभेदात् ६।३।१

—(१) नैमित्तिकः ( चतुर्युगसहस्रान्ते कल्पे ब्रह्मकर्तृकः, अनादृष्टि-सूर्यातप-संवर्त्तकवायु-संवर्त्तकमेघ-एकार्णवा-वस्थादिविवरणम् ) ६।३।१२-४।११

—(२) प्राकृतः (महदादिविशेषक्षयात्मकः, परार्धद्वितये गते सित भवत्ययम्, पृथिव्यादितस्वानां संहरणम् - प्रकृति — पुरुषयोः परमात्मनि लयः, विष्णोः माहात्म्यम् , अस्य लक्षणम् , कारणञ्च ६।४।१३ )

६।४।११-५०

[ द्र. ६।३।२-३ ]

--(३) आत्यन्तिकः (ज्ञानात् योगिनः आत्मिनि छयः) १।७,४३ (मोक्षाख्यः) ६।३।२ (अस्य ज्ञानवैराग्ये साधने) ६।५।१

(अस्य ज्ञानवराग्य साधन ) (आत्यन्तिकप्रसङ्गे आध्यात्मिकादितापत्रयवर्णनम् , गर्भजादिदुःखकथनम् , तत्कारणविवरणम् , मगवत्प्राप्तिः आध्यात्मिकदुःखनाशहेतुरिति कथनम् )

हापा**र-६९** हाजाश्वर

( विष्ण्याख्ये निर्मेले ब्रह्मणि लयः ) प्र**लयः** 

— नैमित्तिकप्राकृतिकात्यन्तिकनित्यानां चतुर्विधप्रलयानां विवरणम् । । ७।४१-४३

# द्वितीयः खण्डः (तीर्थ-भूगोल-भ्रवनकोशाः)

(१) विभागः—तीर्थम् (तीर्थप्रकरणं पृथक् नास्त्यत्र)

## तीर्थविशेषाः

—अश्वतीर्थम् ( दयामकर्णानामश्वानामुत्पत्तिस्थानम् ) ४।७।१५

Jan., 1966] विष्णुपुराण-विषयसूची	13
—पिण्डारकतीर्थम् ( यादवानां शापप्राप्तिस्थानम् )	४।३७।६-११
पुरुषोत्तमतीर्थम् (विष्णोरायतनम्, कण्डुमुनि-	
तपस्यास्थानम् )	१।१५।५२-५३
—मधुतीर्थम् ( ध्रुवतपस्यास्थानम् )	१।१२-२-५
— शालग्रामतीर्थम् ( प्रियवततपस्यास्थानम् )	२।१।२३-२४
(भरततपस्यादेहत्यागस्थानम्)	२।१।३४
(२) विभागः-भूगोलः (यानि स्थानानि तीर्थत्वेन नोक्तानि, तानि,	
भूसम्बद्धा अन्ये विषयाश्च)	
<b>म्</b> सामान्यम्	
वराइकर्तृकपृथिव्युद्धारः ( सम्बद्धविषयेण सह )	१।४।१-४६
पृथिवीलयः	द्र. प्रलयः
भूविशेषाः	
अयोध्या	
—राक्षसान्विनाश्य, लङ्कातः सीतानयनम्	शशह७
आश्रमः	and district
—और्वस्य	४।३।३१-३४
—कपिलमुनेः	२।१३।५३-५४
—देवापेः	४।२०।२४
—नरनारायणयोः ( बदरी )	५।३७।३४
— बुधस्य	शशाश
—सौभरेः	४।२।९६
इक्षुमती ( नदी )	
—अत्र कपिलाश्रमः	२।१३।५३
कलापप्रामः	
—मरुन्टपस्य योगाभ्यासस्थानम्	3081818
काम्पिल्यः	
— समरोऽस्याधिपतिः	8188180
कालिन्दी (नदी)	
—वृन्दावनस्था, गोपीभिः सह कृष्णस्य अस्याः तीर आगमनम्	पाणा१-२
कालियहदः	
—कालियनागस्य निवासस्थानम्	पाणा३

काशी	
— सान्दीपनेकत्पत्तिस्थानम्	4128188
कुण्डिनपुरम्	
—विदमदेशान्तर्गतम , राज्ञो भीष्मकस्य राजधानी	४।२६।१
कुरुक्षेत्रम्	12100 line
— कुरुन्पतिकत्तृंकम्	8188100
कुशस्थली [ = द्वारका ]	
—रैवतस्य पुरी, पुण्यजनसंज्ञकैः राक्षसैरस्याः विनादाः	४।१।६४, ९१, २।१
कोशलः	17.00
—कोश्राळनगरनिवासिनां साळोक्यमुक्तिमाप्तिः	818180\$
कोशाम्बी	
— <b>पुरो, नि</b> चक्नुनिवासस्थानम्	812910-6
गन्धमादनपर्वतः	
	A books
- मुचकुन्दस्य तपःस्थानम्	4 २४ ४
— नरनारायणस्थानम्	५।३७।३३–३५
गोकुरुः	
—नन्दिनवासस्थानम्	रापार
गोमती (नदी)	
अस्याः तीरे कण्डोः तपश्चरणम्	शश्राश्य
गोवर्धनपर्वतः	
— कृष्णस्य गोवर्धनधारणम्	५।११।१६-२५
	117111
चम्पापुरी	1000
—चम्पनाम्ना राज्ञा संस्थापिता	81१८1२०
द्वारका [ = कुशस्थली ]	
कृष्णबलरामयोः निवासस्थानम्	831818
	[द्र. प्राव्यावह
देशाः	
—अङ्गादयः [ द्र. दीर्घतमाः ]	४।१८।१३-१४
नमंदा	District -
—अस्याः तीरे अ <b>सु</b> राणां तपश्चरणम्	३।१८।१
—अस्याः वरप्राप्तिः, महत्त्वं च	81318-82
aldie alanda acid a	01410-14

—अत्र कार्तवीर्यस्य कीडाकरणम्	8188188
पातालम् अस्ति ।	
—कपिलस्थानम्	818183-50
प्रतिष्ठानगरम्	
—वसिष्ठवचनात् सुद्युम्नाय पित्रार्दृदत्तम्	813184
प्रभासक्षेत्रम्	
— अत्र यादवैः सह श्रीकृष्णगमनादि	४।३७।३०-३८
प्राग्ज्योतिषपुरम्	
— नरकासुरस्य राजधानी	धारशाट, १४, १९
बद्र्याश्रमः	
—गन्धमादनपर्वतस्थः, नरनरायणस्थानम्	4130138
भोजकटः ( राजधानी )	
कुष्णपराजितस्य रुक्मिणः स्थानम् ,	४।२८।९
मधुरापुरी [ = मधुरा ]	
—शत्रुव्नेन संस्थापिता	१।१२।४
	81818 08
मधुवनम्	
— यमुनातटस्थम् , घ्रुवतपःस्थानम्	१।१२।२-४
मन्दरपर्वतः	To comprehensive the comprehen
— समुद्रमन्थने मन्थानस्वरूपः,	21/106
— कण्डु प्रम्ळोचयोः विहारस्थानम्	१।१५।१३
माहिष्मती	[इ. ४।११।९] ४।११।१९
—कार्तवीर्यस्य राजधानी	[x. 91//13] 01//11.
यमुना ( नदी ) — बळदेवकर्तृकमस्या आकर्षणम्	ध्रारपाट-१४
वाराणसी — कृष्णेनास्या दहनम् , [ द्र. पौण्ड्रकः ]	413818-88
विदर्भः	
भाषाकस्य राज्यप्रदे <b>शः</b>	श्राद्रहार
विशासा	N 1999
— विश्वालापुरी, विशालेन निर्मिता	818186

वीरनगरम्	
— पुलस्त्येन देविकानदीतटे निवेशितम्	२।१५६, १६।१-२
त्रजः ।	
—कृष्णेन स्थापितः, नन्दगोपादीनां स्थानम्	५।६।२४, ३०
शावस्ती	
— श्वावस्तीपुरी, शावस्तेन निर्मिता	४।२।३७
शोणितपुरम्	
- बाणस्य राज्यम् , अत्र बाणेनानिरुद्धो निरुद्ध	ः ५१३३।९-११
हस्तिनापुरम्	
— हस्तिनृपेण निवेशितम्	3513818
	[द्र. ४।२१।८]
(३) विभागः—भुव	नकोशः
— भुवनकोश प्रकरणम्	२।२।१-१२।४७
— भुवनकोशसम्बद्धाः प्रश्नाः	२।२।१-३
भुवनकोशपरिशिष्टम् (द्वीपसमुद्रसम्बन्धः, समुद्रजलः	दृद्धिः, लोकालोकशैलः,
अण्डकटाहः, पृथिवीविस्तारश्च,	[द्र. २।७।२१-४४] २।४।८८-९८
अण्डकटाहः, पृथिवीविस्तारश्च, जनपदः — भारतवर्षीयाः जनपदाः	
अण्डकटाहः, पृथिवोविस्तारश्च, <b>जनपदः</b>	[द्र. २ <u>।७।२१-४४]</u> २ <u>।४।८८-९</u> ८
अण्डकटाहः, पृथिवीविस्तारश्च, जनपदः — भारतवर्षीयाः जनपदाः	[द्र. २।७।२१-४४] २।४।८८-९८ २।३।१५-१८
अण्डकटाहः, पृथिवोविस्तारश्च, जनपदः — भारतवर्षायाः जनपदाः — तीर्थपुण्यस्थानानि	[द्र. २।७।२१-४४] २।४।८८-९८ २।३।१५-१८
अण्डकटाहः, पृथिवोविस्तारश्च, जनपदः — भारतवर्षायाः जनपदाः — तीर्थपुण्यस्थानानि द्वीपः — द्वीपनामभिस्सह द्वीपाधिपतयः — सप्तद्वीपनामानि	[द्र. २।७।२१-४४] २।४।८८-९८ २।३।१५-१८ [ द्र. (२) विभागः, आश्रमः ]
अण्डकटाहः, पृथिवीविस्तारश्च, जनपदः — भारतवर्षायाः जनपदाः — तीर्थपुण्यस्थानानि द्वीपः — दीपनामभिस्सह द्वीपाधिपतयः — सप्तद्वीपनामानि — द्वीपसमुद्रसम्बन्धः	[द्र. २।७।२१-४४] २।४।८८-९८ २।३।१५-१८ [ द्र. (२) विभागः, आश्रमः ] २।१।५-१५
अण्डकटाहः, पृथिवोविस्तारश्च, जनपदः — भारतवर्षायाः जनपदाः — तीर्थपुण्यस्थानानि द्वीपः — द्वीपनामभिस्सह द्वीपाधिपतयः — सप्तद्वीपनामानि — द्वीपसमुद्रसम्बन्धः द्वीषाः (सप्त)	[द्र. २।७।२१-४४] २।४।८८-९८ २।३।१५-१८ [ द्र. (२) विभागः, आश्रमः ] २।१।५-१५ २।२।५
अण्डकटाहः, पृथिवोविस्तारश्च, जनपदः — भारतवर्षायाः जनपदाः — तीर्थपुण्यस्थानानि द्वीपः — द्वीपनामभिस्सह द्वीपाधिपतयः — सप्तद्वीपनामानि — द्वीपसमुद्रसम्बन्धः द्वीपाः (सप्त) — जम्बूः (एतदन्तर्गतवर्षपर्वतनद्यादिवर्णनम् )	[द्र. २।७।२१-४४] २।४।८८-९८ २।३।१५-१८ [ द्र. (२) विभागः, आश्रमः ] २।१।५-१५ २।२।५
अण्डकटाहः, पृथिवोविस्तारश्च, जनपदः — भारतवर्षायाः जनपदाः — तीर्थपुण्यस्थानानि द्वीपः — द्वीपनामभिस्सह द्वीपाधिपतयः — सप्तद्वीपनामानि — द्वीपसमुद्रसम्बन्धः द्वीपाः (सप्त) — जम्बूः (एतदन्तर्गतवर्षपर्वतनद्यादिवर्णनम् ) — प्लक्षः	[द्र. २।७।२१-४४] २।४।८८-९८ २।३।१५-१८ [ द्र. (२) विभागः, आश्रमः ] २।१।५-१५ २।२।५ २।२।५-६ २।२।७-३।२८ २।४।१-२१
अण्डकटाहः, पृथिवोविस्तारश्च, जनपदः — भारतवर्षायाः जनपदाः — तीर्थपुण्यस्थानानि द्वीपः — द्वीपनामभिस्सह द्वीपाधिपतयः — सप्तद्वीपनामानि — द्वीपसमुद्रसम्बन्धः द्वीपाः (सप्त) — जम्ब्ः (एतदन्तर्गतवर्षपर्वतनद्यादिवर्णनम् ) — प्रकक्षः — शाल्मलः	[द्र. २।७।२१-४४] २।४।८८-९८ २।३।१५-१८ [ द्र. (२) विभागः, आश्रमः ] २।१।५-१५ २।२।५ २।२।५-६ २।२।५-२१ २।४।१-२१
अण्डकटाहः, पृथिवोविस्तारश्च, जनपदः  — भारतवर्षायाः जनपदाः  — तीर्थपुण्यस्थानानि  द्वीपः  — द्वीपनामभिस्सह द्वीपाधिपतयः  — सप्तद्वीपनामानि  — द्वीपसमुद्रसम्बन्धः  द्वीपाः (सप्त)  — जम्बूः (एतदन्तर्गतवर्षपर्वतनद्यादिवर्णनम् )  — प्रकक्षः  — शाल्मलः  "  — शुशःः	[द्र. २।७।२१-४४] २।४।८८-९८ २।३।१५-१८ [ द्र. (२) विभागः, आश्रमः ] २।१।५-१५ २।२।५ २।२।५ २।२।५ २।२।५-१ २।४।१-२१ २।४।२-३४
अण्डकटाहः, पृथिवोविस्तारश्च, जनपदः — भारतवर्षायाः जनपदाः — तीर्थपुण्यस्थानानि द्वीपः — द्वीपनामभिस्सह द्वीपाधिपतयः — सप्तद्वीपनामानि — द्वीपसमुद्रसम्बन्धः द्वीपाः (सप्त) — जम्बूः (एतदन्तर्गतवर्षपर्वतनद्यादिवर्णनम् ) — प्रकक्षः " — शाल्मलः " — कृशः — कृश	[द्र. २।७।२१-४४] २।४।८८-९८ २।३।१५-१८ [ द्र. (२) विभागः, आश्रमः ] २।१।५-१५ २।२।५-६ २।२।५-६ २।२।५-२१ २।४।१-२१ २।४।२१-३४ २।४।३४-४५
अण्डकटाहः, पृथिवोविस्तारश्च, जनपदः  —भारतवर्षायाः जनपदाः —तीर्थपुण्यस्थानानि द्वीपः — द्वीपनामभिस्सह द्वीपाधिपतयः — सप्तद्वीपनामानि — द्वीपसमुद्रसम्बन्धः द्वीपाः (सत) — जम्बूः (एतदन्तर्गतवर्षपर्वतनद्यादिवर्णनम् ) — प्लक्षः " — द्वाल्मलः " — कुशः " — कौञ्चः "	[द्र. २।७।२१-४४] २।४।८८-९८ २।३।१५-१८ [ द्र. (२) विभागः, आश्रमः ] २।१।५-१५ २।२।५ २।२।५ २।२।५ २।२।५-१ २।४।१-२१ २।४।२-३४

द्वीपान्तराणि	
— इन्द्रद्वीपादयो नव द्वीपाः	२।३।६-८
नदी	
जम्बूद्रीपोयाः	राराइ-शरू
—प्लक्षद्वीपीयाः	२।४।१०-१३
— शाल्मलद्वीपीयाः	२।४।२७-२८
— कुराद्वीपीयाः	२।४।४२-४४
— क्रौञ्चद्वीपीयाः	राष्ट्राय४-५५
— शाकद्वीपीयाः	२।४।६५-६६
- पुष्करद्वीपीयाः ×	×
भारतवर्षीयाः	२।३।१०-१४
नदीनामानि [ विशिष्टानि ]	
— गङ्गा ( विष्णुपादविनि:सृता, ततः	
सीतादयः चतस्रः नद्यः )	रारा३२-३७
नरकः	
—एषां मुख्यनामानि, नरकगामिनः,	
नरकप्रापककर्माणि, दुःखादिविवरणम्,	
प्रायिक्तानि, विष्णुमाहात्म्यञ्च	२ ६ १-५१
पर्वतः	
— जम्बूद्रीपीयाः, ( मुख्यवर्षमर्यादाः	
केसरपर्वताश्च) २।२।७-११, १६-१८,	26.20.44.40
— प्लक्षद्वीपीयाः ( वर्षपर्वताः )	
— शाल्मलद्वीपीयाः "	राष्ट्राह्म-९ राष्ट्राह्म-२७
—कुश्रद्वीपीयाः "	218181-82
— कौञ्चद्वीपीयाः "	218188-43
— शाकद्वीपीयाः	राठा० <b>५-</b> ६३
पुस्करद्वीपीयः ( आकृतिपरिमाणसहितः,	10141-44
मानसोत्तरपर्वतः, एक एव वर्षपर्वतो द्विधाभूतः )	218104-06
—भारतवर्षीयाः (कुलपर्वताः )	राहाउर-७८
— लोकालोकपर्वतः ( पुष्करद्वीपस्थः )	राशार
पर्वतः [ विशिष्टः ]	110121-24
—मेरः ( मेरुस्थ-वन-पर्वत-सरो-नदी-पुरी-द्रोणीविवरणैस्सह )	THEFT
3	रारा७–४९

पातालम्	
—सप्त पातालनामानि, शेषः, पातालस्वरूपम्, भूव	निपादेः कारणञ्च २।५।२-२७
पुरी	
—ब्रह्मेन्द्रादिलोकपालादीनाम्	२ २ ३०-४८
पृथिवी	
—अस्याः कम्पकारणम्, परिमाणम्, [ द्र. वराहः	
	११३१३८-९१, २१४१९७-९८,
THE PART OF STREET STREET, STR	४१२३, ७११६,
वनानि-वृक्षाश्च	
—जम्बूद्वीपीयानि वनानि, वृक्षाश्च	२ २ ७-३।२८
	-२२, ४।१८, ३३, ४४, ६६,
वर्षम्	
—सप्तद्वीपानां वर्षाणि, वर्षाधिपतयश्च	218186,-8160
—जम्बूद्वीपीयानि ,, , ,,	२।२।७-३।३८
—प्ळक्षद्वीपीयानि ,, ,,	राष्ट्रा३ <b>-५</b> २।४।२२-२३
—शाल्मलद्दीपीयानि ,, , , , , , , , , , , , , , , , , ,	2 8 34
चौक्क्वीपीगानि	218180-85
—काश्रद्धापायाम ,, ,, ,, ., ., ., .,	२।४।५६-६१
— पुष्करद्वीपीये ,, ,,	२।४।७४
वर्षनामानि [ विशिष्टानि ]	
भारतम् ( नवद्वीप-पर्वत-नदी-जनपद-जाति-धर्म-	युग-
उपनदीमिस्सह )	२ ३ १-२८१
संस्थानम्	
— ब्रह्माण्डस्य सम्बद्धविषयेण सह,	२।२।५-७।४४
समुद्रः	
—सप्त समुद्राः ( सप्त द्वीपानुगताः ) सम्बद्धविषये	ग सह २ २ ४-४।८७
—समुद्रजलहास-वृद्धिकारणञ्च	२।४।८८-९२
सरः	
—जम्बूद्दीपीयानि अरुणोदादीनि	रारार4
स्वायम्भुवमनुः	
—अस्यान्वयः सप्तद्वीपाघिपतयश्च	राशा३-४३

2/5/90-49

#### ज्योतिषम् [ भुवनकोशीयम् ] अग्नि: —सूर्यस्य तेजः रात्रौ अग्नि प्रविश्वति,।दिवसेऽस्य प्रभा सूर्ये प्रविश्वतीत्यादि २/८/२३-२८ अयनम् —दक्षिणायन-उत्तरायणयोः सूर्यगतिः 216130-85 ऋषयः —सत, एषां मण्डलम् , अस्योपरि ध्रवमण्डलम् [द्र. पितरः] 2/4/8-90 उँकारः -अस्य माहात्म्यम् र|८|५३-५७ कालः —कलाकाष्ठावयवाः, [ द्र. सूर्यः ]-सम्बद्धविषयेण सह-विषुवत्काल-माहात्म्यम् , पितृयान-देवयानौ च २।८।६०-८३ गङ्गा —विष्णुपादोद्भता, हरशिरसो निर्गता, अस्या माहात्म्यञ्च 215/200-128 —आकाशगङ्गा, अस्या उत्पत्तिः, माहात्म्यञ्च 318183-85 घ्रवः —सप्तर्षिमण्डलोपरि स्थितः, अयं ज्योतिश्रकस्य मेढीभूतः २।७१० -- सूर्यरथाक्षाधारीऽयम् , भ्रमणम् 21616,88-82 -अस्य देशे विष्णोः तृतीयं धाम, अस्य माहात्म्यम् , श्रुवे सर्वग्रहसम्बन्धः 21613-108 —सर्वे ग्रहरथा वायुरिंमिमिः धुवे निबद्धाः [द्र. शिद्युमारः, रथश्च] २।१२।२४ पातालम् - अस्य स्वरूपम् , शेषः, विष्णुश्च [द्र. २।२।१-२७] २141१-२७ पितृयानम् --अत्र ऋषीणां वासः, तेषां कार्यं च 216166-98 पूर्य: -इन्द्रादीनाम 21618-88 मन्देहनामका राक्षसाः —सन्ध्याकाळे सूर्येण सहैतत्कृतं युद्धम्, प्रजापतिदत्त-शापभोक्तारः, अर्घ्यनाश्याः, ओंकारेण च तेषां

प्रतिदिनं नाशकथनम्

पर्वतः	
—लोकालोकः, अत्र सुधा <b>मा</b> दयो लोकपालाः	२।८।८४-८६
—शृङ्कवान् पर्वतः, (निर्वचनमस्य, वैषुवतः शृङ्के सूर्यस्थितिः)	२।८।७४-७६
—मानसाचलः, (अस्य पार्वे देवादीनां पुर्यः)	
( सूर्यरथचकाघराः )	२।८।५-११
पृथिवी	
—पद्माकारा, उत्पत्तिश्चास्याः	२।१२।३७
मण्डलम्	
—सूर्यस्य, अत्र देवादीनां सप्त गणाः, वृष्ट्यादीनां कारणम्	द्र. २।१०।१-२२
मेरः	
	-४९] २।८।२०-२२
	017 4016
रथ:	al de coine
—सूर्यरथविस्तारः, सूर्यगितिश्च	२।८।२-११।२६
— सूर्यस्य द्वाद्शमासेषु भिन्न-भिन्नदेवादयः	२।१०।१–२२
— सोमरथवर्णनम् , सोमस्य अश्विन्यादिनक्षत्रभोग-	२।१२।१-३
कथनम् — बुधस्य रथवर्णनम्	राश्राह्
— गुकरथस्वरूपम्	२।१३।१७
- भौमरथस्वरूपम् [ द्र. २।७।८ ]	२।१२।१=
— बृहस्पतिरथस्वरूपम् [ द्र. २।७।८ ]	रा१रा१९
—राहुरथस्वरूपम् , अस्य सूर्य-सोमौ प्रति गमनञ्च	121१२1२१-२२
—केतुरथस्वरूपम्	२।१२।२३
— ज्ञानैश्चररथवर्णनम्	२।१२।२०
राशिः	
—मेषादयः, सूर्यगतिरत्र [ द्र. सूर्यः ]	216130-86
लोक:	
—-भूरादिसप्तलोकाः	२।७।१-२१
वायुः वायुः	
—प्रवहः, वातरिसमिः। रथादयः ध्रुवे निवदाः	२।१२।२६-२८
वालिख्याः	State of the last
그 경기 위에 다 가는 것이 되어 보면 이 이 이 아이를 하는 것은 이 모든 가게 하는 것이 되었다.	२।८।५९
	२।१०।२१
—एवा कायम् [ प्र. अयमा लण्डः ]	11/2/11

(अन्तरका नित्रिश्यान्य

Jan., 1	. १०० ] विष्णुपुराण-विषयसूचा	
विष्णुः		
	-अस्य तृतीयं धाम, माहात्म्यमस्य,	2/6/800-9/24
	-अस्य शक्तः, शक्तेः माहात्म्यञ्च [ द्र. शिशुमारः, ध्रुवश्च	] २।११।३-२६
	अस्य शक्तिः, सृष्टेः कारणम् , माहात्म्यम् अस्य	२।७।३०-४४
	-ॐकाररूपः, राक्षसनाश्चकथनम्	216144-49
9-1-	-पूर्ववर्णितपदार्थकथनपूर्वकंविष्णोः स्वरूपकथनम् ,	
	विष्णुप्राप्तिकथनञ्च	२।१२।३७-४७
वृष्टिः		
	-अस्या आश्रयः, जगत्पोषणादिकथनम् २।८।	१०७-१०९, ९15-२३
ALT:	-अस्याः कारणादि	२।११।२४-२६
शक्तिः		
	-वैष्णवी, वेदत्रयात्मिका, सूर्योपकारकर्त्री सर्वदा सूर्ये	
	स्थितिः, कार्यं च [ द्र २।१०।१९ ]	212210-20
शिशुमा	(:	
	अस्य सन्निवेशः, दर्शनफलं च, अस्य पुच्छे ध्रुवस्थितिः,	
	अस्याश्रयो नारायणः, वृष्ट्यादिसम्बद्धविषयश्च २।	११-२५, १२।२९-३५
शुकः		
3	[ द्र. रथः, २।७।७ अपि ]	
	[ x. (4., (10)0 414 ]	
शेषः		Dames.
	-विष्णुः, पातालानां अन्ते	२।५।१३–२७
शौरिः		
	[ द्र. रथः, २।७।९ अपि ]	
सन्ध्याव	- स्ट्रिम	
		२।८।५२-५९
	स्या महत्त्वम्	COUNTY DAYS
सप्तिष्म	ण्डलम्	Shale
-	–अस्य परिमाणं	રાંબાડ
सभा		Pipe Alternation
-	- <b>ब्रह्मणः</b>	२।८।२०-२१
समेर:	[मेरः]	
0.11		21/120-29

्र [ मरः ] —देवपर्वतः, अस्योपरि ब्रह्मसभा सूर्यः

—अस्य रथवर्णनम्, शीव्र-मन्दर्गातः, अग्निसम्बन्धेन तीक्ष्णतेजसः प्रादुर्भावः, जलस्वरूपम्, अग्निहोत्रात्तेजसः प्राप्तिः, समरात्रिदिनकर्ता, मकरादिराशिमोगः, अस्य मार्गे ऋषीणां स्थितीत्यादि

राटार-९८

—सोमादिपोषकः, सम्बद्धविषयेण सह जगदाश्रितप्रकारः [द्र. श्रुवः]

शहा६-२५

—अस्य द्वादशमासेषु रथस्थितानां मिन्नमिन्नदेवादीनां नामानि, सर्वेषां कार्याणि च

२।१०।१-२२

—अस्य शक्तिः, सूर्ये वैष्णव्याक्शक्तेः स्थितिः, तत्कार्यम्, शक्तिद्वारा सर्वतर्पकः

२।११।१-२६

—-सोमः

— अस्य रथस्वरूपम् , सूर्यादमृतप्राप्तिष्रकारः, देवादीनाममृतपोषकः, सम्बद्धविषयेण् सह

219219-84

स्नानम्

- दिन्यस्नानम् , अस्य फलम्

219185

# भ्रवनकोश-परिशिष्टम्

गङ्गा

—नदी, अस्याः **मा**हात्म्यम्

2161220-228

ब्रह्माण्डम्

—अस्य संस्थानम्

राश**२२**-४४

वायुः

—अस्य विवरणम्

रा१रार-रू

वृष्टिः

—अस्य कारणम्

२।८।११०-१२४ [द्र. २।४।८८-६८, ७।२१-४४]

# वृतीयः-खण्डः—शास्त्राणि, विद्याः, कलाश्र

शास्त्रविद्याकलासामान्यम्

३।३।१-६।३३

नियाः १००० । विष्णुद्धराजा विषयपूर्वा	
—वेदबाह्यशास्त्राणि मोहनार्थं प्रणीतानि ( आईतादीनि, तत्प्रभावश्च )	३।१७ ४१-१८।३२
अविद्या	
अस्याः स्वरूपम् . कारणं च	हाजा१०- <b>२</b> ५ [ हु ३।१७।४१-४५ ]
Carr.	[841/0102 01]
विद्याः	
—चतुर्दश विद्याः	शिहार८
—अष्टादश विद्याः [पूर्णा गणना] [द्र. १।२२।८१-८५	४।१०।२७,३३-३६], ३।६।२८– <b>२९</b>
विद्या[=परापरा] [ मनुमतानुसारेण ]	
परा (अक्षरब्रह्मप्रापयित्री)	हार्थाह ३-६४
—अपरा ( ऋग्वेदादिस्वरूपा, पराविद्याविषयश्च )	६।५।६३-७०
शास्त्र-विद्या-कलाविशेषाः	
—ऋषिप्रणीतान्युपपुरणानीत्येव, परं गणना न कृता	३।६।२५
ज्योतिषम्	
[ भुवनकोशीयज्योतिषम्, भुवनकोशे द्र.]	
पुराणसामान्यम्	
—पुराणसंहिता ( अस्या उपादानानि, आदिमः	
प्रवक्ता, कर्तारः अध्येतारश्च )	३।६।१५-१९
पुराणलक्षणम् ( सर्गादिपञ्चलक्षणम् )	३।६।२५, ६।८।२-१३
—पुराणसंख्या ( अष्टादश पुराणनामानि )	३।६।२०-२४
—पुराणग्रहीता स्तः	३।६।१६
पुराणविशेषाः	
—विष्णुपुराणारम्भः ( सूतर्षिसंवादेन, मैत्रेयपराश्चरसंवादे	न,
विष्णुपुराणीयप्राथमिकः प्रश्नः च )	31818-88
—विष्णुपुराणसंहिताकर्ता पराश्चरः ( वसिष्ठ–पुलस्त्यवर-	
प्रदानात्, सम्बद्धविषयेण सह	१।१।१२-३१
विष्णुपुराणवक्तु-श्रोतृ-परम्परा संक्षिसा	शराद-९
,, भ विस्तृता	\$1<1x3-40
—विष्णुपुराणवर्णनम्	३१६।२६-२७

24	पुराणम्—PURĀŅA	[Vol. VIII., No. 1
	-विष्णुपुराणफलश्रुतिः ( प्रथमांशस्य ) -विष्णुपुराणमाहात्यम् , तत्रस्थपदार्थनिरूपणसहितम् ,	७।२२।८८–९०
	विष्णुपाद्यास्त्यसहितञ्च सम्बद्धविषयेण सह	६।८।३-५८
	-विष्णुपुराणफलश्रुतिः <b>,</b> हरिकीर्तनमहत्त्वं च	६।८।५०-६२
19-n		
वेदः		
वेदसाम	॥न्यम्	
3911	-वेदस्वरूपम् ( प्रणवात्मकम् , ब्रह्मस्वरूपात्मकञ्च )	३।३।२२-३१
वेदविभ	। ।	
63 0	अष्टाविंशतिवेदन्यासकृतवेदविभागः, वेदन्यासनामानि,	
	एकं भविष्यवेद्व्यासनाम च	३।३।२-२१
78.5	–वेदस्य व्यासकर्तृकचत्वारो भागाः, मंत्रसंख्याः	
	तद्ध्येतारश्च	३।४।१-१५
in it is	वेदशाखाविचारः, अन्तिमांशे पुराणसम्बन्धि-	
	स्वल्पविवरणम्	३।३।२-६:३३
	–वेद्शाखा नित्यश्रुतिः, शाखाप्रणेतृऋषिभेदाश्च	३१६१३०-३३
		[द्र. १1414४-५७]
-	–वेदोत्पत्तिः	४।५।५४-५७
वेदविश	ोषः	
्रऋग्वेद		
		damps with
18-15	-अस्य विभागः <b>, शाखाः,</b> तद्ध्येतारश्च	३।४।१६-२६
यजुर्वेद		
	–अस्य शाखाः, तैत्तरीयशाखाकथा च	३।५।१-१३
	- ग्रुक्तयजुर्वेदप्राप्त्यर्थं याज्ञवल्क्यस्य तपस्या, सूर्यंस्तुतिश्च	३।५।१४–२४
_	-ग्रुक्लयजुर्वेदीयशाखादिप्राप्तिः, तदध्येतारश्च	३।५।२५–२९
		[ द्र. ६।६।१-३ ]
सामवेत		
0	-जैमिनिकर्तृकशाखाभेदः, तदध्येतारश्च	३।६।१-८
	-सामवेदसंहिता, (कृतनृपकर्तृकं २४ प्राच्यसामशाखा-	71717
	-तामपदताहता, (कृतच्पफतफ रह प्राच्यसामशास्ता-	
	—तानपदताइता, (कृतनृपकतृक रह प्राप्यसामशासा- िनर्माणम्	४।१९।४०-५२

### अथर्ववेद:

—अस्य विभागः, तद्ध्येतारश्च

३१६1९-१४

—नक्षत्रकल्प-वेदकल्प-संहिताकल्प-आङ्गिरसकल्प-शान्तिकल्प-श्चेति पञ्चधा विभक्तोऽथर्ववेदः

३१६११३-१४

# आयुर्वेदः

—उपवेदः, नारायणेन धन्वन्तरये पूर्वजन्मनि त्वष्टधा सम्यगायुर्वेदं करिष्यसीति वरप्रदानम्

81610-90

## त्रयी [ ऋग्यजुःसामवेदाः ]

-ब्राह्मणादिवर्णानां संवरणम्

३।१७।५-६; १८।३५

# चतुर्थः खण्डः-दार्शनिकाः सम्प्रदायाः प्रमेयाश्र

#### अवतारः

—कृष्णावतारस्योपक्रमः

418182

—कृष्णकेशावतारकथनम्

पाशिष्ट-इ४

— कृष्णावतारतिथिः

पाराहरू-१८ पारराहरू-१८

—विष्णोः नरलीलायाः कारणम् —विष्णोरवतारसमये श्रियो भिन्न-भिन्नरूपाणि

१।९।१४२-१४५

[ द्र. ४।१११२-४

## आईतधर्मः

—महामोहेनासुरेषु कृतः प्रचार आईतधर्मस्य, येन तैस्त्रयोधर्मस्य त्यागः कृतः

३।१७।३-१८।३१

## कर्म [द्र. ५ खण्डः]

#### ज्ञानम्

—दुःखनाशकम् आध्यात्मिकं ज्ञानम्, भगवतत्त्वञ्च

६।४।६०-८७

— भगवद्विषयकम् , बन्धनकारणम् , सुख-

दुःखिवचारेण सह

६१४११-६०

-- परमार्थविषयकं सम्बद्धविषयेण सह [द्र. [२।१३|६२-१०४] २।१२।३७-४७

#### तत्त्वम्

—निर्गुणब्रह्म (निर्गुणब्रह्मणः सर्गादिकर्तृत्वे हेद्यः, मध्ये वराहावतारस्य, कालावयवानां वर्णनम्, ब्रह्मणः सृष्टिश्च )

१।३।१-४।५२

— ब्रह्मस्वरूपम् (सृष्टेः प्राक् जगत्कारणस्य	
ब्रह्मणः स्वरूपस्वभावयोः विवरणम् , प्रधान-	
पुरुषव्यक्तकालादिविवरणेन सह,	
ब्रह्म = विष्णुः [द्र. श्रीधरी टी. ]	शशाश्य-३२
( प्रणवावच्छिनं ब्रह्म )	३।३।२२-३१
	३।१७।३-१८।१०४
( नग्नः = वेदत्यागी, पातकी )	३।१७।५
( अस्य विस्तृतं विवरणम् , स्वरूपळक्षणेन सह )	३।१८।३४-३७
दु:खम्	
—आध्यात्मिकादित्रिविधदुःखविवरणम्, गर्भावस्था-	
जन्मजरामृत्युनरकजातदुःखवर्णनञ्च	६।४।१-६०
—अधर्मजाता दुःखोत्तरसञ्ज्ञकाः	ेशाश्य-३६
— दुःखविचारः ( सुखविचारेण सह )	राहारप-४७
	11111 30
चर्मः व्याप्तः स्थापना स्थापना स्थापना स्थापना स्थापन	
—अस्य क्वचरूपत्वकथनम्	३।१८।३४
—आपद्धर्मः [ द्र. वर्णः, पञ्चमखण्डः ]	316135-80
— त्रयीधर्माः [ द्र. श्रीधरी ३।१७।१ ]	३।८।१-१६।२०
—वैदिकधर्मनिन्दा	३।१८।५-३०
नास्तिकवादः	
—अस्य विवरणम् [ द्र. ३।१७।३-१८।१३० ]	३।१८।२४-३०
निद्रा	
—अस्याः प्रादुर्भावः कार्यं च	४।१।६१-३।२९
प्रणवः	
— अस्य स्वरूप <b>वि</b> चारः ( ब्रह्मरूपः )	३।३।२२–३१
प्राणायामः	
	C)
— अस्य स्वरूपम्, कार्यञ्च	हाजा४०-४५
बौद्धमतम्	
—मायामोहप्रतिपादितम् [ द्व. ३।१७।३-१८।१३०	] ३११८११५-१९
भक्तिर्भक्तश्च	
—प्रह्लाद्प्रार्थिता	११२०११७-१८

Jan. 1966] विष्णुपुराण-विषयसूची	27
—हरिभक्तस्वरूपम्	३।७।१६-३४
—हरिस्मरणमाहात्म्यम् [ द्र. योगः ]	२ ६ ३७-४३
भगवान्	
— भगवन्महिमा, तत्स्वरूपं च	818163-80
—भगवच्छब्दार्थमाहात्म्यलक्षणादयः	६।४।६९-८७
यज्ञ:	
[द्र५ खंडः]	
योगः [ = महायोगः, द्र. श्रीधरी १।२२।६१-६२ ६।७।९५, ]	द्र. ४११०।१२-१५
—योगविद्यायाः बलेन चित्रलेखया अनिरुद्धस्य आनयनम्	५1३३।५
—योगसम्बन्धी प्रश्नः	<b>६।६।४।७।२६</b>
—योगलक्षण-समाधि-यम-नियम-भावना-भक्ति-प्राणायाम-	
प्रत्याहार-धारण-ध्यानादिविवरणम् (केशिध्वज-	
खाण्डिक्यसंवादे )	इ।७।२७-६७
— ब्रह्मप्रापकः	ह ह।१-३
योगी .	
— अस्य ध्येयरूपम् , महत्त्वं सम्बद्धविषयेण सह	
शिरराहर-हर, ३११५।५४	- ५५, ६। ७। ५५-५८
विष्णुः	
—विष्ण्वात्मकता समस्तजगतः	२।१२।३७-४०
विष्णोः परमं पदम्, महत्त्वं च	2/6/200-228
—विष्णोः स्वरूपम् ( अकूरेण चिन्तितम् )	४११७११-१०
<ul> <li>विष्णोः प्रधानपुरुषव्यक्तकालस्वरूपविवरणम् , तन्मह्त्वं च</li> </ul>	शिशाश-३२
—विष्णोः कर्माणि कल्पयुगानुसारेण, रूपाणि च	३।२।४९-६०
—विष्णोः अक्षररूपत्वम् , जगतः क्षररूपत्वम् ,	
तारतम्ययोगिध्येयरूपादि	१।२।५५-६५
—विष्णोः ब्रह्मविष्णुश्चिवेति गुणावताररूपैः जगतः	
सृष्टिपाळनसंहारविवरणम्	१12144-60
—विष्णोः विभूतयः, सृष्टिस्थितिपालनेषु चातुर्विध्यम्	१।२२।१६-६५
—विष्णुशक्तिः ( सूर्याधिष्ठाना )	२।११।६-२६

—विष्णोः महिमा [ विष्णुपुराणश्रवणफलवर्णनप्रसङ्गे ] —विष्णोः श्रियः च सर्वदा सहभावः, विष्णुतत्त्वं च

—विष्णोः नरलीलायाः करणम्

६।८।१५-४० १।८।१५-३५

४।२२।१३-१८

शक्तिः	
—विष्णुशक्तिस्वरूपम् [ द्र. सूर्यः १।७।६१-६८ अपि ]	१।३।१-३
[14] 그리고 아내는 그리고 있는 것이 되었다면 그리고 있다면 그리	
श्रीः	010 /1011 20
—विष्णुतत्त्वेन सह्विष्णुश्रीसम्बन्धः	१।१८।१५-३५
सुखम्	
— सुखिवचारः ( दुःखिवचारेण सह )	राहा४५-४७
सूर्य:	
	२।११ <b>।६-२</b> ६
— विष्णुशक्त्या सह सम्बन्धवर्णनम्	111114-14
पश्चमः खण्डः—आचारः, कर्मकाण्डः कर्मफलं	च
आश्रमधर्मः [ चतुराश्रमधर्माः ] ( और्वसगरसंवादे )	३।९।१-३३
आश्रमधमः । चुप्राश्रमधमाः । ( आयर्पर्यमार ) —ब्रह्मचारिधर्मः	३।९।१-६
—श्रह्मचारियमः — गार्हस्थ्यधर्मः ( अतिथिसत्कारमहत्त्वम् , ग्रहस्थाश्रम-	
श्रेष्ठत्वं च ) [ द्र. संस्कारप्रकरणम् ३।१०।१-१६।२०	३।९।७-१६
—वानप्रस्थधर्मः [ द्र. ३।१८।३६ ]	३।९।१७-२३
—वानप्रस्थयनः [ रू. २१६ ० ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६	३।९।२४-३३
—सन्यासवन	111114 11
कर्म	
—साध्वसाध्वोः कर्मणः फलम् , साधु कर्मणः कर्तव्यत्वकथनम्	
[ द्र. २।१२।४६–४८ ]	१।१= ३१-३२
—यमवद्यानिरोधककर्माणि ( प्रश्नसिंहतानि )	३।७।१-३८
— नरकप्रापकपापकर्मविवरणम् ३	19613 5-908
	-२ ] हापाइ०
्रित.	३।१०।३-३६]
नरकः	
—अस्य नामानि	२ ६ १-१६
—नरकगामिनः सुखदुःखज्ञानादिविवरणेन सह [द्र. १।६।२ <b>९</b> -	-\$१, ४१-४२]
	२ ६ ७-५१
—दुःखवर्णनान्तर्गतः	६।४।१-६०
पापाचरणम् [ द्र. नरकविवरणम् ]	राहा१-५१
—अमावस्यायां वृक्षकेदने ब्रह्महत्यादोषकथनम् [ द्र. २।१२।६-	
—पुण्यपापफलावधिः	२।८।६८

—पाषण्डालापदोषः ( नमतत्त्ववर्णने शतघनु- कथासम्बन्धः )	३।१७ ३-१८।१०४
—सङ्गदोषवर्णनम् (सौभरिकर्तृकम्)	४।२।११६–१२८
पूजा	
—गोवर्धनपूजा (नंदगोपेन शक्रपूजाया आव- इयकत्वप्रतिपादनम् , कृष्णेन गोपकर्तृकगोवर्ध-	
नपूजनस्यौचित्यप्रतिपादनम्, गोवर्धनस्य पूजने श्रकस्य क्रोधः, भीषणं जलवर्षणम्, कृष्णेन	
गोवर्धनधारणं च )	पा१०।१६-११।२५
—विष्णोः आराधना ( उपायः, फलञ्ज )	३।८।१-१९
प्रायश्चित्तम्	
—( पापनाशकम्, <b>इ</b> रिसंस्मरणरूपम् )	र ६ ३५-४३
मन्त्रः	
—तर्पणसूर्यार्घानाम्	३।११।३०-४०
—द्वादशाक्षरमन्त्रः, तत्फलं च [ द्र. १।६।११० ]	११६१४०-१११५५
[ द्र. पूजा, यशः, श्रादं च	]
यज्ञ:	
—गिरियज्ञः, गोयज्ञश्च ( विधिसहितः )	४।१०।३९-४९
—धनुर्यज्ञः (कंसेन रामकृष्णयोः आनयनाय	
गोकुलं प्रति अक्रूरस्य प्रेषणम् )	४११५१८-१५
— मित्रावरणेष्टिः ( पुत्रार्थं मनुकृता )	शशिष्ट
—यज्ञानाम् उत्पत्तिः, ब्रह्मणः मुखात्	१।५।५४-५७
— यज्ञनिष्पत्तये वर्णसृष्टिः, यज्ञस्य आवश्यकत्वम् ,	01515 0- 3- 34
	, शहाह-१०, २०-२८
—यज्ञनिन्दकाः (यज्ञनिन्दकानां फलं च)	११६१२९-३१, ४१-४२
—यज्ञस्य उपयुक्तानि स्थाल्यादीनि	४।५।१-१४, ६।८
—राजसूययागः (निमि-चन्द्रकृतः) —वारुणयज्ञः (वैवस्वतमन्वन्तरारम्भे कृतः)	श्रादशार७-२८
— शक्रमखः सम्बद्धविषयेण सह	५1१०1१-१२1२६
	41,
[द्र. २।४।१९, ३१-३२, ३६-४०, ५६, ७१]	

# वर्णः

401.	
—अस्योत्पत्ति: (ब्रह्ममुखादितः)	१ ६ ६-७
—आपद्धर्माः (वर्णानाम् )	३।८।३८-४०
वर्णधर्मः ( चातुर्वर्ण्यधर्मः, वर्णसामान्यधर्मश्च और्वसगरसंवादे )	\$16130-88
—ब्राह्मणधर्मः	३।८।२२-२५
— क्षत्रियधर्मः	३।८।२६-२९
—वैश्यधर्मः	३।८।३०-३१
—सूद्रधर्मः	३।८।३२-३५
वर्णाश्रमधर्मः ( सामान्यः )	
—सर्वैः वर्णैः सर्वेषु आश्रमेषु आचरणीयाः दयासत्यादयः	३।८।३६-३८
— जम्बद्वीपप्रभृतिद्वीपवासिवर्णधर्माः	
[ द्र. जम्बूद्दीपप्रश्तिद्दीपवर्णनम् ]	२ ७।४-८७
श्राद्धम्	३।१३।१-१६।२०
—आम्युदयिकश्राद्धम् ( अस्य विधिः, कालश्च )	३।१३।१-७
—और्ध्वदैहिकसपिण्डीकरणमासिकादिश्राद्धम् ( अस्य	
विधिः, कालः, प्राह्माग्राह्मब्राह्मण-वस्तुविचारश्च )	
[ पूर्वादिकर्मलक्षणम् , तद्धिकारिणश्च ३।१३।३४-३६ ]	३।१३।७-४०
—श्राद्धेन तृप्तानां देवादीनां नामानि	३।१४।१–२
— नित्य-काम्यश्राद्धकालः	३।१४।३–६
—पितृतृप्तिकराः तिथयः, गीते च	३।१४।७–३०
— श्राद्धभोजनयोग्याः ब्राह्मणाः	३।१५।१-४
—श्राद्धभोजने अयोग्याः	११११५-८, ५४-५५
—श्राद्धविधिः ( निमन्त्रण-अतिथिसत्कार-रक्षो	
घ् <b>नमन्त्र</b> पाठिपण्डदानादीनाम्	३।१४।९-५०
— आदे वर्ज्यावर्ज्यपदार्थाः	३।१५।५१-५२
—श्राद्धेन तुष्टाः देवाद्यः	३।१५।५३
—पितृतृप्तिकराः पदार्थाः	३।१६।१-६
—श्राद्धे निन्द्याः पदार्थाः	३।१६।७-१५
—श्राद्धे दत्ताः पदार्थाः पितृस्वरूपानुसारेण तादशा एव भवा	नेत ३।१६।१६
—गाथा ( गयाश्राद्धविषयकः )	३।१६।१७-२०
—श्राद्धम् ( अष्टकानामकं इक्ष्वाकुकृतम् )	शराश्य

सदाचारः (	वेदप्रोक्तधर्माचरणम्	,)
11. 21 .11.	नवना वाचना नरनार	9 /

३।=1१-१६1२०

नित्यनैमित्तिककाम्यकर्मणाम् (षोडशसंस्काराः,
 विशेषेण श्राद्धवर्णनं च )

३।१०।१-१६।२०

## सामान्यधर्माचरणम्

सप्तद्वीपीयसामान्यवर्णधर्माः

राराष्ट्राट७

#### स्वस्त्ययनम्

-- पूतनावधानन्तरं नन्दकृतं कृष्णस्य

र्रार् ११३१२३

षष्ठः खण्डः-कालः ( कालावयव-युग-मन्वन्तर-कल्पाः )

# ( ? ) विभागः-कालकालावयवौ

#### कालः

— कालस्वरूपम् , कालमहिमा च ११२१२४-२७ — ब्रह्म-विष्णोदिनमानम् ६१११४, ४१४७-४९ — अस्य विष्णुरूपत्वम् , प्रावल्यञ्च ५१३८१५४-६० — श्रीकृष्णजन्मसमयः

-परीक्षिजन्मन आरम्य नन्दाभिषेकपर्यन्तः

81281808

#### कालावयवाः

—निमेषकाष्टादिकालावयवाः

२।८।६०-७३

—विभिन्नकालपरिमाणप्रतिपादनम्

( प्रलयकल्पब्रह्मायुवर्णनेन सह ) [द्र. ६।३।३]

द्र. ६।३।४] १।३।५-२८

— निमेषकल्पपर्यन्तस्य परिमाणप्रतिपादनम्

६।३,६-१२

# (२) विभाग:-युगम्

#### युगम्

—युगविचारः

४।२४।१०२-१२१

—कृतादियुगेषु विष्णुकर्तृकव्यवस्था, कपिल-चक्रवर्ति-वेदव्यास-कल्कयश्चेति विष्णोः रूपाणि, तेषां कार्याणि च

३।२।५३-६०

— सप्तर्षिमन्वादीनां प्रतियुगं धर्मप्रवर्तनम् , [ द्र. व्यासः ] ३।२।४**५-**४८

# विभागः-मन्वन्तरम्

11.11.12.11.11.11.11			
मन्वन्तरसामान्यम् ( भू	तभविष्यप्रतिमन्वन्तर	स्य. देवेन्द	
सप्ताषमनुपुत्राण	ां च वर्णनम् )		३।१।१-२।६१
—षडतीतमनुनाम	ानि सप्तममनुपर्यन्तम	Į	३ <b>।</b> १ <b>।६</b> –७
—चत्वारो मनवः	प्रियव्रतान्विताः		३।१।२४-२५
—मन्वन्तरीया विष	ज्ववताराद्या विभूतय	ाः, निर्वचनं च	३।१।३५-४६
—आगामिमनवः,	तेषां पुत्राः, देवादय	श्च	
सम्बद्धविषयेण स			३।२।४, १३-६१
मन्वन्तरविशेषाः ( पुराण	गोक्तकमानुसारम् )		
(१) स्वायम्भुवम्	(देवाः = यामाः),	(ऋषयः = मरीच्या-	
	दयः), (इन्द्रः = यह	तः), (मनुपत्रौ = प्रि	4-
	व्रतोत्तानपादौ), (	मनुकन्ये = प्रसत्याक	ਗੀ )
	इत्येते प्रथमांशे स्थ	ाने स्थाने उक्ताः	[द्र. श्रीधरी ३।१।८]
(२) स्वारोचिषम्	( मन्वन्तरीयदेवर्षिः	न <u>ुपुत्र</u> ेस्सह	5
	द्र. ३।१।२४-२५	)	31818-82
(३) उत्तमम् [ = ३	गैत्तमिः द्र. श्रीधरी]	"	३।१।१३-१५
(	द्र. ३।१।२४-२५)		11111111
(४) तामसम्	"	"	३।१।१६-१६
(५) रैवतम्	"	22	३।१।२०-२३
(६) चाक्षुषम्	73	55	
(७) वैवस्वतम्	>>	27	३।१।२६-२९
( विव	स्वतः पुत्रः, श्राद्धदेव	नामा मनः )	21015
—वैवस्वतमन्वन्तरे	प्रतिद्वापरं वेदविभाग	13.	\$18180-38
८) सावर्णिः			31-71818
—[ सूर्यस्य विभिन्नपु	त्राणां वर्णनम ।		
	(मन्वन्तरीयदेवर्षिमः	नपञ्चेम्मर ।	31010
६ ) दक्षसावर्णिः	"	33,1/16)	३।२।२-१९
१०) ब्रह्मसावर्णिः	"		३।२।२०-२३
११) धर्मसावर्णिः	"		३।२।३४-२७
			३।२।२८-३१

Jan. 1966] विष्णुपुराण-विषयसूची	33		
(१२) रुद्रसावणिः "	३।२।३२-३५		
( १३ ) रुचिः ( = रौच्यम् द्र श्रीधरी ) "	३।२।३६-४०		
(१४) भौमम् (= भौत्यम् ) "	३।२।४०-४४		
विभागः-कल्पः			
कल्पमानम् सम्बद्धविषयेण सह	३।२।४९-५३		
पाद्मकल्पः			
—अस्य समयः	शशारु		
वाराहकल्पः			
"	शशार		
परार्धगणना एकम्, दश्, सहस्रम्, अयुतम्, नियुतम्	(, प्रयुतम्, अर्बुद्म्,		
निर्बुदम्, वृन्दम्, खर्वम्, निखर्वम्, शंलः, पद्मम्, समुद्रः, म	ध्यम्, अन्तः, पराद्येम्		
श्रीघरीटीका ६।३।४			
सप्तमः खण्डः-संवाद-स्तुति-नीति-गीता-उपदेशादयः			
(१) विभागः-संवादः [ वक्तृनामानुसारतः ]			
अकूर-कृष्णकृतः ( मथुरायात्राविषयकः )	४।१८।१-१०		
ऋभु-निद्ायकृत: ( जडभरतचरितान्तर्गतः,			
अद्वैतज्ञानविषयकः )	२।१५।२-१६।२३		
औव-सगरकृत: (विष्ण्वाराधन-फल-वर्णाश्रमधर्म-			
सदाचारविषयकः )	३।८।३-१६।२०		
केशिध्वज-खाण्डिक्यकृतः ( योगविषयकः )	हाहा४-७।१०६		
पराञ्चर-मैत्रेयकृतः ( विष्णुपुराणविषयकः मैत्रेयकर्तृकः प्रश्नः, परा <b>ञ्चर</b> कर्तृकविष्णुपुराण-			
प्रतिपादनम् )	१।१।१-८।६३		
भीष्म-नकुलकुतः ( यमवज्ञानिरोधककर्मविषयकः )	३।७।८-९।३८		
मरीचि-पराशरकृतः ( श्रीचरितविषयकः )	शहाश-राश्४९		
यम-यमदूतकृतः ( विषयः-यमगीता )	३।७।१३–३४		
विशिष्ठ-भीष्मकृतः ( उल्लेखमात्रम् , नामस्वरूपविषयकः )			
प्रकरणिमदं ८।१८−१०४ यावत् )	३।१७।७		
सनत्कुमार-ऐलकृतः ( श्राद्ध-तर्पणविषयकः )	३।१४।११-२०		

# विभागः स्तुतिः

स्तुत्यः	स्तोता	
कृष्ण:	अदिति:	५।३०।६-२३
59	अकूरः	४।१८।४८-५८
"	कालियनागः	४।७।६०-७६
"	नागपत्न्य:	41618=48
"	मुचकुन्द:	X123158-80
"	वसुदेवः	
देवकी	देवताः	4120138-204
बलदेवः		४।२।७–२१
	केंग्रा:	५।९।२३-३३ (स्वरूपसंस्मरणात्मका)
ब्रह्म ( प्रणवरूपम् )	TITATE.	
नव (नगरतम्)	पराश्चर:	३।३।२२-३१
वराहः	प्राचित्री	(नमस्कारात्मिका)
77	पृथिवी	१।४।१२-२४
	सनन्दनादयः	818156-88
विष्णुः	कण्डुः	१।१५।५५-५८
"	देवाः	313153-08
"	"	१।१२।३३-३७
"	"	3180188-38
"	ध्रवः	
>>	पराशरः	१।१२।५३-७५
		१ २ १-७ ( नमस्कारात्मिका )
>>	प्रचेतसः	१।१४।२३-४३
"	प्रह्लादः	\$18814-87
9)	22	
"	देवर्षय:	११२० <b>।९</b> -१३ १ <b>।९।६१-६</b> २
"	ब्रह्मा	?18180-40
>>	27	418138-40
" (विश्वरूपः )	"	\$18148-4C
श्री:	इन्द्रः	
सूर्यः	याज्ञवल्क्यः	\$\$\$-0331218
	11/2/1/11	३।५।१५-२४

# विभागः-मङ्गलाचरणम्

#### मङ्गलाचरणम्

—विष्णुस्वरूपपरकम् (पराश्ररकृतम्)	१।२।१-७
— विष्णुपुराणान्ते	६।८।५९-६३

# विभागः-नीतिः

### नीतिः

—पृथिवीपृथुसंवादस्था	१।१३।७३-८१
— प्रह्लादिहरण्यकशिपुसंवादस्था	१।१९।२५-४९

# विभाग:-गीता

## गीता

—पितृगीता ( श्राद्धसम्बन्धिनी )	3188118-38
	[ब्रः ३।१४।१२-२८]
—पृथिवीगीता (पृथिव्यामुपरि राज्ञां मोहस्या-	
ज्ञानमूलकत्वप्रतिपादनपरा)	४।२४।१२७-१३६
—यमगीता (विष्णभक्तस्व रूपवर्णनपरा )	West and the second

# विमागः-उपदेशः

## उपदेशः

—ऋभोः निदाघं प्रति ( तत्त्वविषयकः )	२।१।१-३६
पराश्वरस्य मैत्रेयं प्रति ( ममतात्याग्विषयक: )	४।२४।१३७-१५१
—प्रद्लादकर्तृकः दैत्यान्प्रति (परमार्थविषयकः )	१।१७।५५-९५
— " हिरण्यकश्चिपुं प्रति ( हरिभक्तिविषयकः )	१1१९1३४-४९
—भरत ( जड़भरत ) कर्तृक: ( सौवीरनृपं प्रति	
( परमार्थविषयकः )	२।१३।५९-१४।३३
<ul> <li>मरीच्यादिकर्तृकः धृवं प्रति (भगवदुपासना-</li> </ul>	
विषयकः)	8188183-88
—वसिष्ठकर्तृकः पराश्चरं प्रति (क्रोधत्यागविषयकः)	१19184-20
— सुनीथिकर्तृकः धृवं प्रति ( उद्धेगनिर्दे तिपूर्वक	
धर्माचरणविषयकः )	१।११।१६-२४

## विभागः-गाथा

गाथा

—गयाश्राद्धविषयिणी

३।१६।१७-२०

# अष्टमः खण्डः — वंश-वंशानु चरिते

## विभागः-वंशः

राजवंशः [ सूर्य-सोमवंशात्मकः, भविष्या नृपाश्च ] ४।१।२-२४।१४० [ द्व. ४।२४।१४१-१५१ ]

—वंशश्रवणफलम् ४।२४।१३८–१४०

—आनकदुन्दुभिवंशः ४।१४।२७-३३

—इक्ष्वाकुवंशः [ द्र. ४।२२।१-१२ ] ४।२।११-५।३३

— कुरवंशः ४।१६।७**६**–२०**।५३** 

—कोष्डवं**शः** ४।१२।१

— दुर्वेसु [ = दुर्वेसु ] वं**श**ः ४।१६।१–६

—दुद्यवंद्यः ४।१७।१-४

— निमिवंदाः ४।५।१–२१

—पुरुवंद्यः ४।१९।१-१८

— मगघवंद्यः ४।२३।१

—यदुवंशः ४।११।१–१६।१

—वैवस्वतमनुवंशः ४।१।६-२४।१३८

—सूर्यवंशः ४।१।६-६।१

—सोमवंशः ४।६।२०।१३

# विभागः —वंशानुचरितम् (राजवंशान्तर्गतविशिष्टचरितानि)

## अकरू:

—श्वपत्क-गान्दिनीपुत्रः, देवववान्, उपदेवश्चेति द्वौ पुत्रौ, [ द्रः ४।१३।८-१६२ ] ४।१४।७, १०

#### अनमीढ:

—हस्तिनृपतेः पुत्रः, कण्वोऽस्य पुत्रः, अन्यसन्ततिश्च

४१९१२९-३०, ४५-५९, ७४-८५ अदितिः

—दक्षकन्या, अस्याः पुत्रः विवस्वान् [ द्र. प्र. खंड: ]

819-8

अनुः

— ययाति-रार्मिष्ठापुत्रः, जराग्रहणास्वीकारात् स्वराज्यच्युतः, उत्तरदिश्यभिषिकः [ द्र. ययातिः ] ४।१०।६,१३,१४,३२

अन्धकः

—सत्वस्य पुत्रः, अस्य वंशः [ द्र. स्यमन्तक-मण्युपाख्यानम् ४।१३।८-१६२ ]

४।१३।१, १४।१२-२१

अर्जुनः [ = कार्त्तवीर्यः ]

—दत्तात्रेयशिष्यः रावणजयो, दिग्विजयो, नर्मदायां क्रीडाकरणम्, अस्य पुत्राः शूरादयः, परशुरामेण हतः

४।११।११-२१

अलकः

—वत्सपुत्रः, ६६०० वर्षाणि यावत् राज्यकर्ता, सन्ततिश्चास्य

४।८।१६-२०

अंशुमान्

—असमञ्जसपुत्रः, कपिलमुनेः वरप्राप्तिः, सम्बद्धविषयेण सह

४।४।७, २३-३३

असमञ्जसः

— सगरकेशिनीपुत्रः, अंग्रुमतः पिता, दुराचारी, कपिलेन नष्टः

४।४।५-२३

अहल्या

—बृहद्श्वस्य पुत्री, गौतमपत्नी, शतानन्दः अस्याः पुत्रः

४।१९।६२-६४

-रामपादादुद्धृता

शशहर

आदित्यः [ = सूर्यः ]

—कस्यपादितिपुत्रः

१।१५।१२८-१३४

-अस्य पत्न्यौ संज्ञा, छाया च, मनु-यमादयः पुत्राः, अस्य तेजसः शातनम्, तेन च चक्रादिकरणम् [ द्र. १।१५।१२८-१३४]

३।२।२-१३

## **आनकदु**न्दुभिः

—अनुपुत्रः, अस्य सन्ततिश्च

४।१४।१४-२१

- ग्रूर-मारिषापुत्रः, निर्वचनम् , अस्य भातृभगीन्यश्च

४।१४।२६-३१

#### आयु:

— उर्वसी-पुरूरवसोः पुत्रः, राहोर्दुहितास्य पत्नी, पञ्च पुत्राश्च

४।६।७३,८।१-३

### आहुकः

-पुनर्वसुपुत्रः, देवकोग्रसेनौ हो पुत्रौ

४।१४।१४-१६

### इक्ष्वाकु:

—मनुपुत्रः, विकुक्ष्याद्यः त्रयाः पुत्राः प्रधानाः, अन्ये च, ग्रस्य वंशवर्णनम् ४।२।११–५।३३ यावत् , अष्टकाश्राद्धकर्ता

४।१।७, २।११-१७

—अस्य वंशीया भविष्याः राजानः

शररा१-१३

### इला [ = सुद्युम्नः ]

—वैवस्वतमनोः पुत्री, सोमवंश प्रवर्धिनी, अस्या उत्कळ-गय-विनतनामानस्त्रयः पुत्राः

81316-88

### उप्रसेन:

आहुकपुत्रः, कंसादयोऽस्य पुत्राः

४।१४।१६, २०=२१

## उर्वशी

--अन्सरा, द्र: पुरूरवाः, मित्रावरुणशापात् मनुष्यस्रोके आगमनम् , पुरूरवसा संगतिश्च

४।६।३५-९४

#### ऋचीकः

— भागनाः, सत्यवतीपतिः, पत्न्ये चरुद्वयदाता, ततः जमदग्निविश्वमित्रयोरुत्पत्तिः, अस्य पौतः परशुरामः

४।७।६-३९

#### ऐलीनः

--अप्रतिरथस्य पुत्रा, अस्य दुष्यन्ताद्याः पुत्राः

819816-9

## और्वः

—ऋषिः [द्र. सगरा]

४।३।२६-३७

कंसः

- उत्रसेनपुत्रः, भोजराजः (४।३।३९) वसुदेवस्य षट्पुत्रमारकः

8198120, 94124-20

ककुद्मी [ = रैवतः ]

---रेवतस्य ज्येष्ठपुत्रः [ द्र. रेवती ४।१।६५-९६ ]

शशिह५

ककुस्थः [ = पुरञ्जयः ]

— विकुक्षे। ज्येष्ठपुत्रः, अनेनाः अस्य पुत्रः (ककुस्थनामकारणम्)

812120-33

कण्वः

—अप्रतिरथपुत्रः, अस्य पुत्रः मेघातिथिः - काण्वाः, एषां शासनकालः

812914-8

४।२४।३८-४२

कपिलः

— पुरुषोत्तमांशभूतः, सगरपुत्रनाशकः [ द्र. सगरः ]

81818-33

करूषः

—मनुपुत्रः, अस्य पुत्रः

813186

कर्णः

- पृथापुत्रः, सूर्यक्रपया जातः -अतिरथेन गङ्गाम्भसि प्राप्तः

४।१४।३३-३६ 8136130--38

करिकः

- भगवदवतारः; कलेः अन्ते अस्य कार्यम्

8128186

काशिराजः

- काश्यपुत्रः अस्य पुत्रः राष्ट्रः

8/6/19

काशिराजः [द्र. गान्दिनी]

४।१३।११६-१२७

कार्यः

—मुद्योतपुत्रः, अस्य संततिः

४।८।७-२१

कुक्षिः

— गुक्रदुहिता, अस्याः पतिः — अणुहः, पुत्रः ब्रह्मदत्तः ४।१६।४३-४५

कुरु:

— रुपः, कुरुक्षेत्रनिर्माता, संवरणपुत्रः, अस्य पुत्राद्याः ४।१६।७६-८५ —अस्य वंशः

४।२०।१-५३

कुवलयाश्वः [ = धुंधुमारः]

- नृपः, अस्य पुत्राः

813138-80

कृतः

- सन्नतिमतः पुत्रः, अयं हिरण्यनाभात् योगमाप, चतुर्विश्वतिप्राच्यसामगानां निर्माता

8199140-42

कृतवर्मा

- [द्र॰ स्यमन्तकमण्युपाख्यानम्]

४।१३।८१-८३

कुप:

—सत्यधृतेः पुत्रः, शरस्तम्भेऽस्य बन्म, अस्य भगिनी कृपी

४११६१६५-६८

कृपी

-[ द्र. कुपः ] द्रोणाचार्यपत्नी

कृष्णः

द्र. स्ममन्तकमण्युपाख्यानम्

419३1८-१६३ 81१५1१८-३३

-- कृष्णादीनां जन्म —अस्य स्त्रियः, सन्ततिश्च, प्रधानाष्ट्रमहिषीणां नामानि

द्रि. रेवती. ४।११।२-४ अपि ] ४।१५।३४-५०

केशिनी

—सगरपत्नी, [द्र. सगरः]

१।४।१-३३

कौटिल्यः

—ब्राह्मणः, नव नन्दान् उन्मूल्य, चन्द्रगुप्तं राज्ये स्थापकः ४।२४।**२६-**२८

कोण्टुः

-यदुपुत्रा, अस्य वंशः

४।१२।१-४५

क्षेमकः

—निरमित्रपुत्रः, राजवंशसंस्थापकः

४।२१।१५-१८

खट्वाङ्ग:

—विश्वसहपुत्रः, देवासुरसंग्रामे असुरघातकः, अस्य पुत्रः दीर्घबाहुः, आयुषः अल्पत्वं ज्ञात्वा भगवन्तं प्राप

४।४।७३-८३

गङ्गा [ द्र. जहुः, भगीरथश्च ]

गन्धर्वाः

— उर्वशीशयनाभ्यासात् मेषापद्दारकाः गर्गः मन्युपुत्रः, गार्ग्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः [ द्र. मौनेयाः ] ४।६।३४-६४

गान्दिनी

—काशिराजपुत्री, पञ्चदशवर्षपर्यन्तमस्या गर्मे वासः, वर्षत्रयपर्यन्तं गोदानेनास्याः उत्पत्तिः, श्वफलकभार्या, अकूरमाता [ द्र. स्यमन्तकमणिचरितम् ]

81१३।१२५-१२८

गाधिः अयमिन्द्र एव, कुशाम्बुपुत्रः,

—सत्यवती-विश्वामित्रयोः पिता, ऋचीकात् शामकर्णा-श्वसहस्रं ग्रहीत्वा, तस्मै कन्यादाता

शहाह-३९

गौतमः [= शरद्वान् द्र. श्रीधरी ]

—ऋषिः, अस्य भार्या अहल्या, पुत्रश्च श्वतानन्दः [द्र. निमिः]

४।१९।६२-६३

घटोत्कचः

—भीमसेन-हिडिम्बापुत्रः

४।२०।४५

चन्द्रगुप्तः

—नृपः, कौटिल्येन अभिषिक्तः, बिन्दुसारः अस्य पुत्रः

४।२४।२८-२९

चित्ररथः [ = रोमपादः ]

—धर्मरथपुत्रः, अनपत्याय अस्मै दश्ररथः शान्तां पुत्रत्वेन ददौ

8196184-86

चित्राङ्गदः

— गान्तनु-सत्यवतीपुत्रः, चित्राङ्गदगन्धर्वेण इतः

४१२०१३४-३५

च्यवनः

—मित्रायुपुत्रः, अस्य सन्ततिः

ब्र. ४।१।६२ ] ४।१९।६९-७३, ७९

जनकः [= वैदेहः, मिथिः]

—निमिपुत्र:

४।५।२०-३४

—अस्य ग्रहे बलदेवस्य निवासः [ द्र. स्यमन्तकमण्यु-पाख्यानम् ]

४।१३।१८-१६२

6

# जनमेजयः —पुरुपुत्रः, अस्य पुत्राश्च -परीक्षित्पुत्रः, अस्य सन्ततिः

४।१९।१ 815515-8

जमद्गिनः

---ऋचीक-सत्यवतीपुत्रः, रेणुकास्य भार्या, पुत्रः परशुरामः; सम्बद्धविषयेण सह [द्र. गाधिचरितम्]

8/4/3-38

जरासन्धः

—बृहद्रथपुत्रः, अस्य सन्ततिः

81381८३ ८५

जहुः

 सुहोत्रपुत्रः, एतत्कर्तृकं गङ्गायाः पानम्, पुनः गङ्गायाः निस्सारणञ्च

४।७।४-६

नाम्बवतो

—कृष्णपत्नी [ द्र. स्यमन्तकमण्युपाख्यानम् ]

४।१३।५५-६३

जाम्बवान्

—कृष्णेन सह युद्धकरणम् , कन्यादानादि

४।१३।८-१६२

ज्यामघः

पुत्रप्रातिः, युद्धे कन्यारत्नप्राप्तिः, सैव स्तुषा

४।१२।११-४५

ताटका

—राक्षसी [द्र. रामः]

8850-603

तारा

— बृहस्पतिपत्नी [ द्र. सोमः ]

४।६।६-३३

तुर्वसुः [ = दुर्वसुः ]

—ययाति-देवयानीपुत्रः, जरास्वीकारात् राज्यच्युतिः, दक्षिणपूर्वस्यां दिशि मण्डलन्पत्वेन नियुक्तः

[द्र, ययातिः]

812018-32

—अस्य वंशः

४।१६।२-६

तृणबिन्दुः

—बुधपुत्रः, अलम्बुसा अस्य भार्या, विशालः अस्य पुत्रः, अस्य कन्या = इलबिला, पौत्राद्याः

४।१।४५-६१

I	an	1	9	6	6	7	

# विष्गुपुराण-विषयसूची

43

### त्रिशंकु:

— रुपः; लय्यारुणिपुत्रः, अस्य चाण्डालत्वप्राप्तिः, अस्य सन्तितः स्वर्गगमनं च

813178-78

दक्षः

-अस्य जन्म ब्रह्मणः दक्षिणाङ्गुष्ठात्

शशिह

दत्तात्रेयः

-कार्त्तवीर्याय वरदाता

8133183

दन्तवकत्रः

-कारूष-श्रतदेवापुत्रः

8188138-80

दशरथ:

—अस्य पुत्रा रामादयः [ द्र. चित्ररथः ]

४।४।८६-८७

दिष्टः

—मनुपुत्रः, अस्य पुत्र-पौत्राद्याः

81916, 98-38

-अस्य वंशः

४।१।१९-६१

दीर्घतमाः

- उतथ्य-ममतापुत्रः, बृहस्पतिवीर्थतिरस्कर्ता

813315 ह

—अनेन बलिभार्यायाम् अङ्ग-वंग-कलिङ्ग-सुह्म-पौण्डाख्याः क्षत्रियाः उत्पादिताः

818=185-68

दुर्योधनः

—धृतराष्ट्र-गांधारीपुत्रः,

3510518

-बलरामात् गदाविद्याध्येता

४।१३।१०६

दुष्यन्तः

—ऐलीनपुत्रः, शकुन्तला अस्य पत्नी, पुत्रः चक्रवर्ती भरतः

813818

देवकः

—आहुकपुत्रः, अस्य पुत्राः, पुत्र्यश्च

8188184-85

— युधिष्ठिर-यौदेयोपुत्रः

8120188

देवयानी

- गुकाचार्यस्य कन्या, ययातेः पत्नी [ द्र. ययातिः ]

देवापिः

— शन्तनोः अग्रजः, चरित्रेण भ्रष्टः

8/2018-30

—सत्ययुगे क्षत्रियवंशप्रवर्तकः, मनुवंशबीजभूतः

४।२४।११८-१२१

देवासुरयुद्धम्

—[ द्र. पुरञ्जयः, सोमः, रिजश्च ] ४।२।२१-३२, ६।६-३३, ९।१-२८

द्विजमीदः

— इस्तिनः पुत्रः, अस्य सन्तितः

४।१९।२६, ४८-५५

द्रुपद:

— पृषतस्य पुत्रः, अस्य पुत्रः धृष्टद्युम्नः

**१०१८।७३** 

दुद्यः

—ययाति-शर्मिष्ठापुत्रः, जराग्रहणास्वीकारात् पश्चिमदिशि मण्डलन्यत्वेन नियुक्तः

४।१०।१-३२

- अस्य वंशः

४।१७।१-9

द्रीपदी

— युधिष्ठिरादीनां भार्या, प्रतिविन्ध्यादयः अस्याः पुत्राः

४।२०।४१-४२

घुंधुः

—असुरा, कुवलयाश्वेन हता [ द्र. कुवलयाश्वः ]

४।२।४०

घन्वन्तरिः

<u> दीर्घतपसः पुत्रः, विष्णुवरात् आयुर्वेदविभाजकः</u>

81616-80

**घृतराष्ट्र**ः

—अस्य दुर्योधनादयः पुत्राः [ द्र. व्यासः ]

४।२०।३८–३६

घृष्ट:

—मनुपुत्रः,

श्रावा

-अस्य वंशे घार्षकः क्षत्रियः अभवत्

81518

धृष्टकेतुः

—मनुपुत्रः

8188183

नकुल:

—माद्रीपुत्रः, अस्य पुत्री च

४।२०।४०, ४२, ४८

नन्दः महापद्माख्यः, कौटिल्येन सपुत्रः नाशितः, वंशश्च ४।२४।२०-२६,२७ - मनुपुत्रः, अस्य सन्ततिश्च ४।१।७, २।५-९ नरिष्यन्तः शशी७ —मनुपुत्रः नर्मदा —नागभगिनो, पुरुकुत्सस्य पत्नी, अस्याः स्मरणात् विषनाशः 81318-१६ नहुषः -- आयुन्पतेः पुत्रः, अस्य यत्यादयः षट् पुत्राः, ४।८।१-३, ९।२८-१०।१ वंशश्र नाभागः —मनुपुत्रः अस्य सन्ततिश्च ४।१।७, २।५-९ —वैश्यत्वमापन्नः, अस्य वंशश्च श्राशाश्य, दश नारदः **—[ द्र.** रजिः ] 81918-26 निघ्न: — अनमित्रस्य पुत्रः, अस्य पुत्रौ प्रसेन-सत्राजितौ ४।१३।१० निमि: [= विदेह: ] - इस्वाकुपुत्रः, यज्ञकरणम् , शापग्रहणदानादि, विदेह-नाम्नः कारणम्, अस्य पुत्रः जनकः, अस्य चरितम्, वंशश्च ४।४।१-३४ नृगः ४।१।७ — इक्ष्वाकुपुत्रः नृसिंह: —विष्णोः अवतारः [ द्र. प्रह्लादः ] ४।१४।४७, १५।५ परश्रामः

—जमदमि-रेणुकापुत्रः, विष्णोरंशावतारः, [द्र. गाघि: ] ४।०।३५-३**६** 

शारशारन, २०

— कार्त्तवीर्यार्जुनहन्ता [ द्र. कार्त्तवीर्यार्जुनः ]

# परीक्षित्

—उत्तरा-अभिमन्युपुत्रः, अश्वत्थामप्रहितेन ब्रह्मास्त्रेण इतः, भगवता पुनः उजीवितश्च, अस्य जनमेजयादयः चत्वारः पुत्राः

४।२०।५२-२१।२

—अस्य राज्याभिषेकः

**४।२४।१११** 

#### पाण्डवाः

—एषां विस्तारः [ द्र. ४।१३।७०, २०।४०-५३ ]

४।१४।३२-३८

#### पाण्डु:

—अस्य भार्या पृथा, पुत्राश्च [ द्र. व्यासः ]

शिश्रावरः वट

पुरञ्जयः [ = शशादः ]

—नृपः, विष्णोः अंशावतारः, विकुक्षिपुत्रः, देवसहायकः

४।२।२१-३२

### पुरुकुत्सः

—नृपः, मान्धातुः पुत्रः, अस्य भार्या नर्भदा, त्रस-इस्युः अस्य पुत्रः, दुष्टगन्धर्वनाशकः, सम्बद्धविषयश्च

४।३।४-२१

#### पुरूरवाः

— बुघेलयोः पुत्रः, प्रतिष्ठानस्य अधिपतिः

४।१।११-१२, १६-१७

— उर्वश्या सह समागमा, अस्य षट् पुत्राः, गन्धवैं: अग्निस्थालीदानं अस्मै, उर्वशी-सालीक्यप्राप्तिः अस्य

श्राहा३४-७११

#### पूरु:

—ययाति-रार्मिष्ठापुत्रः, पितुः जराग्रहणात् पित्रा पृथिवीराज्ये अभिषिक्तः, सम्बद्धविषयश्च

४।१०।१-३२

#### पृषघ्र:

—मनुपुत्रः, गुरोः गोः वधात् अस्य शूद्रत्वप्राप्तिः

81910, 90

### प्रतद्नः

—दिवोदासस्य पुत्रः, अस्य शत्रुजिताद्यनेकनामानि, अस्य पुत्रः अलकी

श्राटा११-१६

### **प्रसेनः**

- निध्नस्य पुत्रः, स्यमन्तकमणि कण्ठे बध्वा आखेटाय गमनम्, सिंहेन तत्र हतश्च

४११३११०, २९-३१

39"	
बलदेवः [ = बलभद्रः, बलरामः, रामः ]	THE PERSON
- शतधन्वनः वधार्थं गमनम् , कृष्णं विनिन्दा जनक-	
पुरगमनम्, पुनः द्वारकां प्रति आगमनादि	४।१३।७६-१६२
-केशवांशः, रेवती अस्य भार्या, अयं रेवतीं	
विनम्रयामास, सम्बद्धविषयश्च	४।१।६४-६६
—बलदेव-कृष्णादी <b>नां जन्मविवर</b> णम्	४।१५।२६-३३
बर्भुः	
—देवावृधस्य पुत्रः [ द्र. देवावृधः ]	४।१३।२-६
बाहु:	
नृपः, वृकपुत्रः, हैहयादिभिः पराजितः, अन्तर्वत्न्या	willing no
महिष्या सह वनगमनम्, और्वाश्रमे मृतिश्च अस्य भार्या और्वेक्टपया सगरं जनयामास	४।३।२६-२९
अत्य माया आवश्चपया सगर जनयामास	४।३।३०-३५
बुध:	
—सोमस्य पुत्रः, अस्मात् इलाया पुरूरवसः उत्पत्तिः	४।१।८-१६
—सोमात् तारायाम् अस्य जन्म	४।६।६-३३
— वानात् वारामान् अस्य अन्म	01111
बृहस्पतिः	
—अस्य भार्या तारा, सोमेन सह कलहः, सम्बद्धविषयश्च	
[द्र. सोमः]	४।६।६-३३
—रजिपुत्राणां मो <b>हनाय,</b> इन्द्रस्य बळवृध्दयै च आभि-	
चारिककर्मकर्ता [ द्र. राजः ]	8 918-8=
	81716-42
त्रह्मा	
- अस्य दक्षिणाङ्गुष्टात् प्रजापतेः दक्षस्य जन्म, [द्र. सृष्टिः]	४।१।३-६
—रेवर्ती बलरामाय दातुं ककुद्मिनं कथियता, सम्बद्धविषयश्च	४।१।६५-९६
ब्राह्मणी	
—नाम नास्ति, सौदासशापदात्री [ द्र. सौदासः ]	
भगीरथः	
	estests u
—दिलीपस्य पुत्रः, गङ्गायाः आनयनम्	818137
भरतः	
—दशरथस्य पुत्रा, दुष्टगन्धर्वाणां नाशका, अस्य पुत्री च	
	8181800-608
T'V. Aut. ololog. 1. 17	01011-0-108

भरतः

— दुष्यन्तपुत्रः, अस्य निर्वचनम् , अस्य तिस्रः पत्न्यः, नव पुत्राः, मरुत्सोमनामकयागस्य कारियता, सम्बद्धविषयश्च

3199180-18

मदयन्तो

—सौदासस्य पत्नी, अस्याः पुत्रः अश्मकः, पुत्रप्राप्तिप्रकारश्च ४।४।४०-७२

मरुः

-राजा, शीघगस्य पुत्रः, योगं आस्थाय, कलापग्रामे स्थितः, आगामियुगे सूर्यवंशीयक्षत्रप्रवर्तयिता

8181805-880

मरुत्तः

—अविक्षितस्य पुत्रः, चक्रवर्त्तां, अस्य पुत्रः नरिष्यन्तः

812132-33

मान्धाता

—नृपः, अस्य उत्पत्तिप्रकारः, अस्य भार्या बिन्दुमती, अस्य सन्तितः, सौभरिः अस्य श्रशुरः, नामनिवंचनं च

४।२।४८-६८

मूलकः [ = नारीकवचः ]

— अस्मकस्य पुत्रः, अस्य नाम्नः निर्वचनम् , अस्य पुत्रः दशरथः

818103-09

मौनेयाः

—गन्धर्वाः, नागस्य मणिहर्तारः, पुरुकुत्सुना नाश्चिताः

81318-60

यदुः

—ययातिदेवयान्योः पुत्रः, पितुः जराग्रहणास्वीकारात् दक्षिणस्यां दिशि मण्डलनृपत्वेन नियुक्ता, अस्य वंशश्च

४।१०।४-१२, ३१-११।३०

ययातिः

—नहुषपुत्रः, अस्य द्वे भार्ये, पञ्च पुत्राः, ग्रुकशापात् जराप्राप्तिः, पृषं राज्येऽभिषिच्य तपश्चचाराऽयम्

४।१०।१-३२

युधिष्ठिरः

अस्य पुत्रौ [ द्र. पाण्डुः ]

४।२०।४२-४४

युवनाश्चः

—प्रसेनजितः पुत्रः, मन्त्रपूतस्य जलस्य पानात् अस्य दक्षिणकुक्षे। मान्धातुः जन्म

४।२।४८ ५८

रजिः

—आयुषः पुत्रः, देवासुरसंग्रामजेता, अस्य सन्ततिश्च ४।८।३, ९।१-२३

रथीतरः

- पृषदश्वस्य पुत्रः, अस्य वंश्याः क्षत्रोपेताः द्विजातयः

81219-80

राक्षसः

- व्याघरूपौ, सौदासानिष्टकर्तारौ, सौदासेन नाशितौ

318185-88

रामः

- दाशरथिः, विष्णोः अंशावतारः, अस्य वनगमनादि, अस्य सन्ततिः राज्यशासनकालश्च

४।३।१७, ४।८७-१०४

रावण:

-दशाननः, अयं कार्त्तवीर्येण नियमितः

3118818

— अयं रामेण हतः [द्र. शिशुपातः ४।१४।११-१५।१-१७]

3138182-88

रुद्र:

—अङ्गिरसः सकाशात् उपलब्धविद्यः, बृहस्पतिसहायकः

श्रीहाश्र

रेणुका

-रेणोः पुत्री, जमदिनभार्या, परशुराममाता [द्र. गाघिः] ४।७।३५-३६

रेवतः

—आनर्तस्य पुत्रः, आनर्तदेशाधिपतिः, अस्य पुत्रः रैवतः

४।१।६४-६५

रेवती

- रैवतस्य पुत्री, बलरामपत्नी

४।१।६५-९६

रैवतः [= ककुदुमी]

- रेवतस्य पुत्रः, अस्य पुत्रो रेवतो, अनेन ब्रह्मणः आदेशेन रेवती बलरामाय दत्ता

४।१।६५-६६

लक्ष्मण:

- दशरथस्य पुत्रः, [ द्र. रामः ]

50	grioni—Puraņa	[Vol. VIII., No. 1
वसिष्ठः		
1000	-विकुक्षिः शशं भक्षितवानिति इस्वाकुं	
	प्रत्यस्य कथनम्	श्राराध्य-१८
	-अयं शकादीन् जीवन्मृतकाञ्चकारेत्यादि	813185-83
	यज्ञसमाप्त्यनन्तरं सौदासेन नरमांसं प्राप्य,	
	तेन कुपितः शापानुमहकर्ता,	४।४।४५–९६
	-निमेः शापदाता, तस्मात् शापग्रहणकर्ता, अस्य	1211-10 02
	जन्म च [द्र. १।१।१२-२०]	४।५।१–१२
वसुदेवः		
	शूर-मारिषापुत्रः, अस्य देवक्यादयः पत्न्यः,	
	अस्य पुत्रपौत्राश्च [ द्र. ५।१।६९ ]	४।१५।७८-५०
विकुक्षिः		
	इक्ष्वाकोः पुत्रः, शशादापरनामा, अस्य पुत्रः पुरद्धयः	४।२।११-२०
विचित्र		
	-शान्तनु-सत्यवतोपुत्रः द्वे भार्येऽस्य, यक्ष्मणा	
	मृतः [ द्र. व्यासः ]	४।२०।३४-३८
विदर्भः	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	
	-ज्यामघस्य पुत्रः, अस्य पुत्राः [ द्र. ज्यामघः ]	४।१२।१२-३८
200	न् [ = सूर्यः ]	
144(41	-अस्य पुत्रः मनुः, सत्राजिते स्यमन्तकमणिदाता	४।१।६,१३।११-१४
विशाल		
	-तृणबिन्दोः अलाम्बुसायाश्च पुत्रः, वैशालीनगर-	
	स्थापकः, अस्य पुत्राद्याः	818189-48
विश्वामि		
ाप'वा।ग	-गांचेः पुत्रः, अस्य पुत्राश्च [ द्र. गांघिः ४।५।६-३६ ]	अव्याद्या अध्य
	-ऋषिः [ द्र. त्रिशंकुः ]	४।३।२१-२४
10-13	अस्य यागाः रामेण रक्षिताः	श्रीश्री८७-१०३

विष्णुः — पुरक्षयस्य शरीरे प्रविश्य दैत्यानां नाशकः — पुरुकुत्से प्रविश्य दुष्टगन्यवनाशकः ४ २ | २१-३२ ४)३।४-१६ वैवस्वतमनुः

- विवस्वतः पुत्रः, अस्य पुत्राः इक्ष्वाकादयः, इला पुत्री च ४।११६-१०

व्यासः

—मातुः आदेशात् विचित्रवीर्यपत्न्योः दास्यां च पुत्रोत्पादकः

४।३०।३६-३८

शतधन्वा

—यादवः, सत्राजितः हन्ता, कृष्णस्य चक्रेण हतश्चायम्

23-8015818

शतानीकः

- जनमेजयस्य पुत्रः, अयं याज्ञवल्क्यात् वेदम्, कृपाचार्यात् अस्त्रविद्याम् , शौनकात् आत्मज्ञानं प्राप, अस्य पुत्रः अश्वमेधदत्तः

४।२१।३-५

शत्रुन्नः

- दशरथस्य पुत्रः, मथुरायाः निवेशकः, अस्य पुत्रौ च

818180-803

शर्मिष्ठा

—वृषपर्वणः कन्या [ द्र. ययातिः ]

813013-33

शरद्वान्

—[द्र. गौतमः]

शर्यातिः

—मनोः पुत्रः सुकन्यायाः पिता, अस्य पुत्रः आनतेः

४।१।७, ६२-६३

शान्तनुः

— प्रतीपस्य पुत्रः, अस्य इस्तस्पर्शस्य फलम् , अयं जाह्नव्यां भीष्मम्, सत्यवत्यां चित्राङ्गद-विचित्रवीयौ उत्पादयामास

४।२०।८-३४

शावस्तः

—चान्द्रयुवनाश्वस्य पुत्रः, अस्य पुत्रः बृहद्श्वः, शावस्तीसंस्थापकः

४।२।३६-३८

### शिशुपालः

—दमघोष-श्रुतश्रवापुत्रः, अस्य पूर्वजन्मकथा, भगवतः द्वेषी, भगवति लीनः, सम्बद्धविषयश्च

8188188-88180

#### शुकः

— चन्द्र-बृहस्पतिकलहे अयं पार्षणग्राहः

श्रीहा १२-१८

— देवयान्याः पिता, ययाति प्रति शापदाता

४।१०।४-७

### शुनःशेषः [ = देवरातः ]

— भृगुवंशीयः, अयं विश्वामित्राय देवैर्दत्तः

शाधार

### शैन्या

—ज्यामघस्य पत्नी, पतिवश्या, अस्याः पुत्रः विदर्भः

४।१२।१२-३६

#### **रवफल्कः**

—पृश्ने: पुत्रः, अस्य भार्या गान्दिनी, पुत्रः अक्रूरः, अस्य प्रभावः, अस्य सन्ततिः, सम्बद्धविषयेण सह

४।१३।११५-१६२

#### सगरः

— तृपः, बाहोः पुत्रः, अस्य उत्पत्तिप्रकारः अस्य द्वे भार्ये, अस्य पुत्राः, ह्यमेधयज्ञकरणम्, सम्बद्धविषयेण सह

श्रीशिष्ट श्री३३

#### सत्यभामा

—कृष्णस्य भार्या [ द्र. कृष्णः ]

४११३१६४, ७१-७६

### सत्यवती

—गाधेः कन्या, ऋचीकऋषेः भार्या, पुत्रार्थं भर्ता दत्तयोः फलयोः व्यत्यासेन अस्याः पुत्रः जमदिन्तः अभवत्, इयं कौशिकी नदी अभूत् [द्र. गाधिः]

४।७११२-३४

### सत्यव्रतः [ = त्रिशङ्कः ]

— त्रय्यारुणेः पुत्रः, अस्य पुत्रः हरिश्चन्द्रः, अयं विश्वामित्रेण सशारीरः स्वर्गम् आरोपितः

४।३।२१-२५

### सत्राजित्

—निघ्नस्य पुत्रः, प्रसेनस्य भ्राता, अयं सूर्यात् स्यमन्तकमणि प्राप, शतधन्वना हतः, सम्बद्धविषयेण सह

-	·	
33	TIT	
ঘ	101	

—सीरध्वजस्य पुत्री, अस्याः उत्पत्तिप्रकारश्च

४।४।२७-३०

—रामस्य भार्या, रावणेन अपहृता, रामेण रावणं हत्वा पुनः सीता आनीता, अस्याः पुत्रौ च

४।४।८७-१०४

सोरध्वजः [ = जनकः ]

—सीतायाः पिता, हर्षरोम्णः पुत्रः, अस्य पुत्राश्च

४।४।२७-३०

सुद्युम्नः [ = इला ]

<del>-- इला एव सुद्युम्नः,</del> प्रतिष्ठानपुरस्य अधिपः

81215-88

सुनिकः

—रिपुञ्जयस्य अमात्यः, स्वस्वामिहन्ता, पुत्राय राज्यदाता च

४।२४।१-२

सुमतिः

—-काश्यपस्य दुहिता, सगरस्य पत्नी, इयम् और्ववरात् षष्टिसहस्रपुत्रान् प्राप

81818-8

सोमः

—अत्रेः पुत्रः, अयं ब्रह्मणा औषध्यादोनां आधिपत्ये अभिषिक्तः, अनेन बृहस्पतेः पत्न्याः तारायाः अपहरणम् कृतम्, देवासुरयुद्धम्, बुधोत्पत्तिश्च

४|६|१-३३

सौदासः [ = मित्रसहः]

— सुदासस्य पुत्रः, अस्य भार्या मदयन्ती, अश्मकस्य पिता, कल्माषपादापरनामा, व्याब्रह्मयमारणम्, वसिष्ठ-ब्राह्मणोभ्यां शापदानादि,

818180-03

सौभरिः

—ऋषिः, मान्धातः कन्यानां पतिः, अस्य पुत्राः, वैराग्यात् परमपदमाप्तिकर्ता

४१२१६६-१३३

हरिश्चन्द्रः

— सत्यवत ( त्रिशंकु ) पुत्रः, अस्य पुत्रः रोहितः, सम्बद्धविषयश्च ४।३।२१-२५ हिरण्यकशिपः

—[ द्र. प्रह्लादः शिशुपालश्च ]

8158188-55150

ंहिरण्यनाभः

— रुपः, विश्वसहस्य पुत्रः, अस्य पुत्रः पुष्यः, जैमिनिशिष्यात् याज्ञवल्क्यात् योगप्राप्तिः

8181808-805

१ - जीवानन्द संस्करणानुसारेण तु हिरण्यनाम एव जैमिनिशिष्यः, याज्ञवल्क्य एव तस्मात् योगमवापेति प्रतिपादितम्, श्रीमद्भागवतमपि एतदेव द्रढयति ।

# नवमः खण्डः व्यक्तीनां परिचयः, तत्सम्बन्धीनि चरितानि, आख्यानानि च ।

### विभागः-जातिः

जातिसामान्यम्

[ प्रथमखण्डः द्रष्टव्यः ]

# जातिविशेषाः

### अप्सराः

असाम् उत्पत्तिः १।२१।२५ - लक्ष्म्याः प्रादुर्भावसमये आभिः नर्तनं कृतम् १।९।१०२ - अष्टावक्रद्वारा शापप्राप्तिः शापमोक्षश्च एता एव गोप्यः, सम्बद्धविषयश्च ५।३८।८१-८४

#### असुर:

- प्राचेतसदक्षमानसपुत्राः, द्रः प्र. खण्डः ११९५८८

### ऋषिः

— चतुर्दशमन्वन्तरीयऋषिनामानि ३।१।१-२।६१ —ऋषयः (ऋगादिशाखाप्रवक्तारः ) ३।४।१६-६।४ —ऋषिः, ब्रह्मार्षः, देवर्षिः, राजर्षिः इति

—ऋषः, ब्रह्माषः, देवाषः, राजाषः इति मेदात् त्रिविधः, द्र. १।२१।२७-२६

३।६।३०

### गन्धर्वः

—कश्यप-अरिष्टायां जाताः द्र. १।१५।८८

शारशारप

## तिर्यक्

— सुरभितः गोमहिषादेकत्पत्तिः १|२१|२४ — ताम्रायाः पशुपक्षिणामुत्पत्तिः १-२१|१४-१७

### दानवः

-- कश्यप-दनुजाताः, एषां नामानि ११२१४-१३ -- कश्यपात् पुलोमायां, कालकायां च जाताः ११२१।७-६

### देवः

कश्यपात् अदित्यां जाताः

१११४।१२८-१३४

# देवविशेषः

—आदित्याः ( कश्यपात् अदित्यां जाताः,	The state of
द्वादश, एषां नामानि )	१।१५।१३१-१३२
- तुषिताः ( चाक्षुषमन्वन्तरीयाः देवाः, वैवस्वतम	<b>मन्वन्तरे</b>
कश्यपात् अदित्यां जाताः )	१।१५।१२८-१३३
—देवप्रहरणाः ( कृशाश्वस्य पुत्राः, एते युग-	
सहस्रान्ते पुनरपि जायन्ते )	१११५११३८
—देवश्रेष्ठाः (प्रत्यिङ्गरसजाः, ऋचाभिमानिनः)	११०४।१३७
- मरुत्वन्तः ( धर्मात् मरुत्वत्यां जाताः )	१।१५।१०८
— मुहूर्त्ताः ( धर्मात् मुहूर्त्तायां जाताः )	१।१५।१०८
—यामाः ( यज्ञात् दक्षिणायां जाताः, द्वाद्श )	शाजारश
— रुद्रः (विश्वकर्मपुत्रः, एकादशरुद्रनामानि)	१।१५।११९-१२५
—वसवः ( धर्मात् वसौ जाताः, अष्टसंख्याकाः,	
एषां नामानि )	१११४११०७-१०८, ११०-१११
TITZH	
4147174	

# देवासुरयुद्धम्

—दैत्यकृतः देवानां पराजयः	18135-38
—देवैः कृतः दैत्यानां पराजयः	8181880-888
—हिरण्यकश्चिपुना कृतः देवपराजयः	१।१७।२-६
—देवै: कृतः अ <b>सु</b> राणां पराजयः	३।१७।६-१८।३३
	द्र. श्रीचरितञ्च

# दैत्यः

—कश्यपात् दित्यां जातौ, ।	हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्षी,	
द्र. अष्टमः खण्डः		१११४१४४१-२११३

### नागः

कश्यप-कद्रुजाताः	रोषाद्याः	१।२१।१९-२२
		द्र. १११४१८८

# निषादः

—एते वेन	स्य ऊचतः व	नाताः	?	।१३।३३-३७

### **पिशाचः**

- कर्यपात् क्रोधायां जाताः		शिवशीवव-वव
----------------------------	--	------------

मनुष्यः

-सप्तद्वीपान्तर्गताः

- अर्वाक्सर्गः

- अर्वाक् सर्गः मानुषसृष्टिः

—मनुष्याणां हासवृध्यादि

द्र. भुवनकोशः 21211-8160 १।५११५, १८, २३

[द्र. प्र. खं] शक्षाश-४२

यक्षः

कश्यपात् खसायां जाताः

[द्र. प्र. खं] श२श२५

रक्षः

-कश्यपात् खसायां जाताः

[द्र. प्र. खं] शरशास्प

सर्पः

- कश्यपात् सुरसायां जाताः

द्र. प्र. खं ] ११२१११५-१९

### जातीनां व्यक्तीनाश्च परिचयः

अकूर:

-श्वफल्कस्य पुत्रः, महाभागवतः, कंसस्य आज्ञया कृष्ण-नलरामाभ्यां सह मथुरायाम् आगमनम्, यमुनायाम् अकूरस्य मोहः

४1१५1१-१९1१२

अग्निः [= प्रजापतिः]

—अस्य पुत्र-पौत्राश्च [ द्र. प्रह्लादः, पावकश्च ]

3130188-80

- पूर्वम् अयं एक एव, पूरूरवसः समयादारम्य अग्नित्रयं जातम्, अस्य उत्पत्तिकथा च

81६1७4-98

[ द्र. पूर्लरवाः, १।१५।११०-११६, ५।३८।२४ अपि ]

अग्निष्वात्ताः

—पितृविशेषाः [ द्र. १।७।२२, २५, २७ ]

१।१०।१७-१९

अङ्गः

—अस्य भार्या सुनीया, वेनश्च पुत्रः

१।१३।७

अङ्गिराः

अस्य भार्या समृतिः, अस्य पुत्राः

अत्रिः

—अस्य उत्पत्तिः, अन्जयोनेः ब्रह्मणः सकाशात् , पुत्रश्च सोमः

४।६।५-६

—अनस्यापतिः, अस्य पुत्राः सोमादयः

313016-8

अदितिः

-दक्षप्रजापतेः कन्या, कश्यपस्य भार्या, द्वादशादित्यानां माता १११४११०३-१०४, १२६-१३४

—अस्याः गृहे कृष्णस्य आगमनम्, अदितिकृता कृष्णस्य स्तुतिश्च

413012-76

अधर्मः

—अस्य भार्या हिंसा, अस्य पृत्रः अनृतः, निकृतिः कन्या च

शाजी३२-३६

अनलः

— अष्ट वसुषु एक:, अस्य पुत्राः कुमारादयः १११४।१११, ११६, ११६

अनसूया

-- अत्रिपत्नी [ द्र. अत्रि: ]

313016-8

अनिरुद्धः

— प्रद्यम्नस्य पुत्रः, अस्य विवाहः, बलरामकर्तृकः-रुक्मिन्धः, सपत्नीकस्य अनिरुद्धस्य द्वारकायाम् आगमनम् ५।२८।६-२८ - उषया सह विवाह:, बाणासुरेण सह युद्धम् ५।३२।६-३३।५३

अनिल:

—अष्ट वसुषु अन्यतमः, धर्म-वसुपुत्रः, शिवास्य भार्याः, द्दी पुत्री च

१।१५।१११. ११४-११६

अरिष्टकः

-असुरः, वृषभरूपं सन्धाय सर्वोपद्रवकारकः, अयं कृष्णेन हतः

419819-14

अरिष्टनेमी

—दक्षप्रजापतेः चतसुणां कन्यानां पतिः, अस्य षोडष अपत्यानि [ इ. १११४११०४ ] १११५११३६

अरिष्टा

—दक्षप्रजापतेः पुत्री, कश्यपश्य पत्नी, गन्धर्वमाता १।१५।१२६, २१।२५

#### अरुण:

-- कश्यप-विनतापुत्रः

११२१११७

### अरुन्धती

---दक्षप्रजापतेः कन्या, धर्मस्य भार्या, अस्याः सन्तन्तिः

21241203-200, 206, 208

### अर्जुनः [ = पाण्डवः ]

—इन्द्रांशः

41१३1१७-२४

—अस्मै दारुकद्वारा कृष्णस्य सन्देशः —आभीरकर्तकः अस्य प्राच्याः जन्म

४।३७।५७-६४

—आभीरकर्तृकः अस्य पराजयः, वन्नस्य अभिषेकः, हस्तिनापुरं प्रति आगमनम् —अस्मै व्यासस्य उपदेशः

४१३८११-६२ ४१३८१३५-६०

### अश्विनौ

—सूर्यपुत्रौ, अश्वरूपधारिण्याः संज्ञायाः सकाज्ञात् अनयोः जन्म

३।२।२-७

#### अष्टावकः

जले तपःकरणम्, रम्भा-तिलोत्तमादिम्यः वरदानम्, अभिशापदानादि

413=108-68

### असिक्नी

— वीरणप्रजापते: कन्या, प्राचेतसदक्षप्रजापते: पत्नी, अस्याः षट्सहस्रपुत्राः षष्टिकन्याश्च सम्बद्धविषयेण सह १।१५।८९-१०३

### आकृतिः

— स्वायम्भुवमनोः कन्या, रुचिप्रजापतेः भार्या, दक्षिणा-यज्ञयोर्माता

०१-3११७११

### आग्नीघः

—प्रियव्रतस्य पुत्रः, जम्बूद्वीपेश्वरः, अस्य नाभ्यादयः नव पुत्राः, पुत्रेभ्यः वर्षाधिपतित्वदानम् , तत्सन्ततिश्च — तपसे शालग्रामक्षेत्रं प्रति गमनम्

२1१1**५**-8३ २1१1**२**४

### आदित्याः

— द्वादश, एते चाक्षुषमन्वन्तरे तुषितनामानः देवाः, कश्यपात् अदित्यां जाताः, एषां नामानि

१।१५।१२६-१३४

### इन्

इन्द्र:	
—त्रैलोक्याधिपतिः, शचीपतिः, दुर्वाससः शापात्	
अयं नि:श्रीकतां गतः, हरेः उपदेशात् समुद्रमन्थनम् ,	
श्रियः प्रादुर्भावः, इन्द्रकृता श्रियः स्तुतिः, वरप्राप्तिश्च	381-1818
—दितेः कुक्षौ प्रविश्य गर्भछेदनम्, मस्ताम् उत्पत्तिः,	१।२१।३०-४१
—मस्तां देवानां चाधिपत्त्ये ब्रह्मणा अभिषिक्तः	शाररार, ४, ६
—चतुर्दश मन्वन्तरीयाणि इन्द्रनामानि	३।१।१-२।६१
—अस्य भगिनी योगनिद्रा [ द्र. गाधि: ]	४।१।६६-८६
-इन्द्रयज्ञस्य निरोधात् इन्द्रस्य क्रोधः, कृष्णेन	
गोवर्धनधारणानन्तरं कृष्णस्य समीपे इन्द्रस्य	
आगमनम्, अर्जुनस्य संरक्षणाय प्रार्थनादि	पा१०।१६।१२।२६
— इन्द्रेण कृष्णाय नरकासुरवृत्तान्तकथनम्	41291१-१५
—पारिचातवृक्षस्य कृते कृष्णेन सह युद्धम् , इन्द्रस्य	
पराजयः, कृष्णं प्रति क्षमायाचनादि [ द्र. कण्डुः ]	५१३०११-३१११३
्र है। शिश	२१-३२, ४।२१-१६ ]
<ul><li>—दक्षप्रजापतेः कन्या, कश्यपस्य पत्नी,</li></ul>	
— बृक्षादोनां माता	1१५1१०४, १२६-१२७
उमसेनः	शिरशश्र
—कंसस्य पिता, कृष्णेन बन्धात् मोचितः, राज्ये अभिषित	मश्च ५१२११८-१७
—अस्य अग्नौ प्रवेशः	<b>५।३८।४</b>
उत्तङ्कः	
——ऋषि:	४।२।४०
उत्तानपादः	
—स्वायम्भुवमनोः पुत्रः, अस्य द्वे भार्ये द्वौ पुत्रौ च	१।११।१-१२।१०३
उद्धवः	
—यादवेषु श्रेष्ठः, यादवानां नाशकाले समुपस्थिते	
कृष्णाज्ञया बदरिकाश्रमगमनम्	४।३७।२६-३७
उशनाः	
—चन्द्रसहाययकः [ द्र. श्रीः ]	श्री है। १२।१४
उषा	
—बाणासुरस्य कन्या, अनिरुद्धस्य भार्या	धावराह, ववादव
ऊर्जा	
—दशकन्या वसिष्ठपत्नी, अस्य पुत्रा। १।७।	२२, २५, १०११३-१४

### ऋचोकः

—सत्यवत्याः पतिः, पत्न्ये चरुदाता, अस्य पुत्रः जमदग्निः ४१७११ ३-३९

#### ऋभुः

—ब्रह्मणः पुत्रः, निदाधं प्रति अद्वैतज्ञानीपदेशः अनेन कृतः २।१५।२-१६।१९

### और्वः

—सगराय विष्ण्वाराधनादिकथकः

३।८।३-१७।२

### कंस:

- पूर्वजन्मनि अयं कालनेमिः, उग्रसेनस्य पुत्रः, भोजराजः

३१२६, ४११४१२०, ५१११२१-२२, ६४,

—आकाशवाण्याः श्रवणम् , देवकीहननाय उद्योगकरणम्

वसुदेवेन आनीतायाः नन्दगोपकन्यायाः शिलापृष्ठे क्षेपणादि

413184-38

—एतत्कर्तृकः आत्मरक्षणोपायः, वसुदेवदेवक्योः बन्धनान्मोचनम्

41818-10

—नारदात् देवकीगर्भपरिवर्तनादिवृत्तान्तश्रवणम् , कंसस्य क्रोधः , कृष्णबलरामयोः आनयनाय अक्रूरप्रेषणम्

413418-38

---अस्य वधः सम्बद्धवषयेण सह

4120186-66

#### कण्डु:

—मुनिः गोमतीतीरे तपः करणम्, प्रम्लोचया सहास्य विहारः, मारिषायाः उत्पत्तिः, तपः करणादि

2124122-49

### कपिल:

—मुनौनाम् अघिपतिः

१।२२।१,८

-विष्णोः अंशावतारः,

213813

-कृतयुगे विष्णुः कपिलरूपेण ज्ञानस्य उपदेष्टा

312144

—सगरस्य षष्टिसइसपुत्राणां नाशकः, अंशुमते हयं वरं च दाता ४१४।२०-३१

### कद्रः

—दक्षप्रजापतेः सुता, कश्यपस्य पत्नी, नागानां माता

१११४११०१-१०४, १२७, ११२११९-२२

### किकः

-कलियुगान्ते विष्णोः अवतारः

#### करयपः

—दश्चप्रजापतेः त्रयोदश कन्यानां पतिः, अदित्यादिनां त्रयोदश पत्नीनां नामानि, सन्ततिश्च ११९५।१०३,१०४, १२६-१३४,१४१-२१|४१

कार्त्तिकेयः [ = कुमारः ]

—अग्निभू:, **श**रस्तम्बेऽस्य जन्म निरुक्तिश्च

१११४।११५-११६

कालनेमिः

-जन्मान्तरेऽयमेव कंसः

राशहर

कालयवनः

— म्लेच्छन्पः, अस्य उत्पत्तिः गार्ग्यऋषि-सकाशात् , यादवैस्सह् युद्धम् , मुचकुन्दकर्तृकः अस्य नाशः

धारशाश-२१

कालिङ्गकः

 कलिङ्कदेशीयः ब्राह्मणः, अनेन यमयातनानाशक-कर्माणि भीष्माय प्रतिपादितानि

31019-38

कालियः [ = नागराजः ]

— कृष्णेन सह युद्धकरणम् , कृष्णं स्तुत्वा समुद्रं प्रति गमनम् , सम्बद्धविषयेण सह

41418-60

काली

- जडभरतस्य रक्षित्री, पृषतनृपतेः सेवकस्य नाशकत्रीं

2123186-40

काशिराजः

—पौण्ड्रकस्य सहायकः, कृष्णेन हतः

वार्थ। १४-२७

कुब्जा

-- कंसस्य अनुलेपनकर्मकर्त्री, कृष्णकर्तृकं अस्याः ऋजुत्वम्

प्रार्वाश-१३

कुरुः

— अस्य भार्या आग्नेयी. अङ्गादयः षट् पुत्राः

१।१३।६-७

कुवलयापीड:

—हस्ती, रामकृष्णयोः वधार्थं उद्यतः बलरामेण हतः

५११६११७, २०१२२-२३, ३२-४१

## कूर्मः [ = विष्णुः ]

—भगवतः अवतारः, समुद्रमन्थने मन्थनाद्रेः अधिष्ठानभूतः, देवानां बळवर्धकः

319166-58

#### कृत्या

हिरण्यकशिपोः आज्ञया प्रह्लादस्य नाशाय पुरोहितैःउत्पादिता [ द्र. पुरोहितः ]

313613-88

-दिशिणाग्नेः सकाशात् उत्पन्ना, कृष्णस्य चक्रेण इता

४।३४।२८-४४

### कुशाश्वः

— प्राचेतसदक्षप्रजापतिकन्ययोः पतिः, देवर्षिः, देवर्षिः, देवर्षिः,

१११४११०4, १३८

### कृष्णः [ = विष्णुः ]

—अस्य सम्पूर्णं चरितम् , सम्बद्धविषयेण सह

41818-३८18४

—विष्णोः अंशेन अवतीर्णस्य अस्य कर्मविषयकः प्रश्नः

अध्यायानुक्रमेण ५।१।१-३

— अवतारस्य पूर्वपीठिका ( विश्वरूपम् , अस्य ब्रह्मकृता स्तुतिश्च ४११।५१-५८, देत्यनाश्चाय श्रीभगवतः केशयोः अवतारः ५११।५९-६४, निद्रादेवीं प्रति गर्भपरिवर्तनाय आदेशः ५११।६९-८६, अवतारस्य तिथिः ५११।७७ ) इत्यादि

४१११४-८६

— अस्य देवकीगर्भे प्रवेशः, तदा देवकृता स्तुतिः, अस्य आविर्मावः, तत्कालीना स्थितिः कृष्णकर्तृकः पूतनाया वधः, शक्यासुरस्य भञ्जनम्, यमलार्जुनयोः उद्धारः, वृन्दावनं प्रति गमनम्

पारा१-३1२९

— एतत्कर्तृकं कालियनागस्य दमनम्

पापा१-हाप्र१ पापा१-८३

— **एतत्क**र्तृकं तालफलपातनादि

41618-3

—हरिणाक्रीडनम् , प्रलम्बासुरवघार्थं बलदेवस्य शक्तेः स्मारणादि

४१९११-३5

—शरद्वर्णनम् , शक्रमखविषयकप्रश्नः, गोवर्धनपुजादिवर्णनम्

419018-83

—गोवर्धनधारणेन गोपादीनां रक्षणम् , गोवर्धनस्य स्वस्थाने स्थापनं च

—अस्य माहात्म्यं ज्ञात्वा इन्द्रेण कृता अस्य	
स्तुतिः, व्रजगमनं च	५११२।१६
— गोपीभिः सह रासक्रीडाकरणादि	५।१३।१-६२
— एकत्कर्तृकः वृषभासुरवधः	418818-88
— बन्दावने केशानं इत्वा पुनः पुनः गोकुलं प्रत्यागमनम्	४११६११-१७, २८
— गोकुले अकूरकृतं कृष्णबलरामदर्शनम्	५।१७।१-३३
- गोकुलात् निष्क्रमणम्, मध्ये कालियाः प्राप्तिः,	
सम्बद्धविषयेण सह	४११८1१-५८
—यमुनायाम् अक्रूरकृतं विचित्रदर्शनम् , मथुरायां प्रवेशः,	
रजकं हत्वा वस्त्रग्रहणम्, मालाकाराय वरदानम्	४।१९।१-२९
—कुञ्जायै वरदानम् , धनुषः भङ्गकरणम् , कुवलया-	
पीडहननम्, चाणूरतोषकौ हत्वा गोपैस्सह	
क्रीडाकरणम्, कंसवधादि	४।२०११-१०५
—क्षमायाचनयदुवृद्धानां नमनादि	४।२१।१-६
— कंसपत्नीनां समाधानकरणम्	४।२१।७-८
— उग्रसेनस्य अभिषेककरणम्, बलरामेण सह विद्याध्ययना	य
गुरुगृहगमनम्, गुरुसेवाकरणम्, मथुरां प्रत्यागमनम्	
सम्बद्धविषयेण सह	५।२१।१-३२
— जरासन्धेन सह अष्टादशवारं युद्धकरणम्, अस्य	
लीलारूपकथनं च	धाररा१-१८
- कालयवनभयेन द्वारकां निर्माय तत्र यादवानां स्थापनम्	,
मुचकुन्दमुतगुहायां गमनम् , मुचकुन्दाय वरदानं च	पारवार, रशार-व
— रुक्मिण्याः हरणम् , तया सह विवाहः, अस्य पुत्रः	
प्रद्युम्नः, सम्बद्धविषयेण सह	श्रारहाश-१२
—अस्य पत्न्यः, पुत्राश्च, रुक्मिणः नगरे अनिरुद्धविवाहं	
कृत्वा सर्वैः सह द्वारकां प्रत्यागमनम्	४१२८११-९, २७-२८
—इन्द्रस्य वचनांनुसारेण प्राग्जोतिषपुरे नरकासुरं	
हत्वा, बन्दीकृतान् कन्यादीन् द्वारकां प्रापय्य,	
अदित्यै कुण्डलदानाय त्रिदशालयगमनम्	४१२९११-३५
—अदितये कुण्डलदानम्, पारिजातस्य हरणम्,	
संम्बद्धविषयेण सह	४।३०।१-८०
—द्वारकामागत्य, प्राग्जोतिषपुरादानीतं इस्त्यश्वादि	417-11 00
बान्धवेभ्यः दानम् , एकोत्तरश्चताधिक-षोडशसहस्र-	
कन्यानां विधिवत्पाणिग्रहणम्	४।३१।१-२०
and the source of	414212-40

GUIH-PURĀŅA [Vol. VIII., No. 1 —कृष्णकर्तृकं बाणासुरस्य सहस्रभुजकर्तनम् , अनि ठढं नागपारोन मोचियत्वा सर्वेः सह द्वारकां प्रत्यागमनम् सम्बद्धविषयेण सह ४।३२।१-३३।५३ एतत्कर्तृकः, पौण्ड्रकवधः, काशिराजवधश्च, अस्य चक्रेण कृत्यायाः वाराणस्याश्च दहनम् , सम्बद्धविषयेण सह X13813-88 -- वायवे स्वर्गागमनाय कथियत्वा, उद्धवाय बदर्या-श्रमं गन्तुं कथनम् , प्रभासक्षेत्रं प्रत्यागमनम् , विष्णौ लयः, सम्बद्धविषयेण सह [ द्र. गर्गाचार्यः, ४१३८।७१-८४ ] ५१३७।१-७६ केशिध्वजः -जनकवंशीयः, खाण्डिक्याय योगस्य उपदेष्टा इ।इ।५-७।१०६ केशी - दैत्यः, अश्वस्वरूपः, कृष्णेन हतः ४११६११-२८ केशी - भगवतः अवतारस्य प्रयोजकौ ४।१।५९-६५ कोटरी दैतेयानां विद्या, मन्त्रमयी कुलदेवता रुद्राण्या अष्टमांशः द्रि. श्रीधरी ] ५१३३।३६ कतुः ब्रह्मणः मानसपुत्रः, सन्ततेः पतिः, अस्य पुत्राः षष्टि-सहस्रवालखिल्याः १।७१४-६, २२, ३५-२६, १०१११-१२ कोधवशा [ = कोधा ] — दक्षप्रजापतेः कन्या, कश्यपस्य पत्नी, अस्याः सन्तितः १।१५/१०३-१०४, १२६-१२७, ११२११२२-२३ क्षमा -दक्षप्रजापतेः कन्या, पुलहस्य पत्नी, १।७।२२, २४-२६ -अस्याः त्रयः पुत्राः 2120120-28

खसा

- दक्षप्रजापतेः कन्या, कश्यपस्य पत्नी, १११४११०३-१०४, १२६ शिरशास्प --अस्याः पुत्राः

खाण्डिक्यः

—जनकवंशीयः, अमितध्वजस्य पुत्रः, केशिध्वजात् योगस्य प्राप्तिकर्ता, सम्बद्धविषयेण सह

द्विप्-७१०६

ख्यातिः

-- दक्षप्रजापतेः कन्या, भृगोः पत्नी

१।७।२२, २५-२६

-अस्याः पुत्री लक्ष्मी, पुत्रौ धातृ विधातारौ

शटाश्य, १०१२

गङ्गा

—विष्णुपदोद्भता, अस्याः माहात्म्यम् [द्र. प्र. द्वि. ख.] २।८।११०-१२४

गरुड:

— कश्यप-विनतापुत्रः, अरुणाग्रजः [ द्र. कृष्णः ५१२९११४- ] ११२१११७-१८

- पतत्रिणाम् अधिपतिः

शायराश, ६

गर्गः

— ऋषिः, रोषात् ज्योतिर्विद्यां प्राप

रापारह

गर्गाचार्यः

कृष्ण-बलरामयोः नामकरणसंस्कारकर्ताः

41816-8

गोपाः

[द्र. कृष्ण:]

गोप्यः

—[ द्र. अष्टावकः, कृष्णश्च ]

४।१३।१५-१७।१३-३१

गौतमः [ = श्ररद्वान् ]

-अस्य भार्या अहल्या, पुत्रश्च शतानन्दः

४।१९।६२-६३

चन्द्रः

—अस्य उत्पत्तिः समुद्रमंथनम् [ द्र. सोमः ]

313130

चाक्षुषः

—रिपु-बृह्तीपुत्रः, चाक्षुषमनोः पिता

१।१३।२-३

चाक्षुषमनुः

—चाक्षुष-पुष्करिणीपुत्रः, षष्ठमन्वन्तराधिपतिः, अस्य भार्या नड्वला, अस्य द्शा पुत्राणां नामानि

१।१३।३-६

चाणूरः

— नियुद्धकुशलः, मल्लः, कृष्णेन इतः [ द्र. ४।१५।७, १**६** ] ५।२०**।१८-७६** 

१।१५।१२२-१२३

१।१५।१३२

ल्षा

—विश्वकर्मणः पुत्रः, अस्य पुत्रः विश्वरूपः

— द्वादशादित्येषु पञ्चमः [ द्र. आदित्यः ]

चित्ररथः [ = रोमपादः ] ४।१८।१६-१5 -अस्य शान्तां नाम कन्यां दशरथः दुहितृत्वे युयोज चित्रलेखा — कुभाण्डस्य पुत्री, योगविद्यया अनिरुद्धं ४।३२।१६-३०, ३३।५ उषया सह योजयामासेयम् छाया - सूर्यस्य पत्नी, शनैश्चरः सावर्णिमनुश्चेति द्वौ पुत्रौ, एका पुत्री सम्बद्धविषयश्च ३।२।२-१३ जराः - व्याधः, अनेन कृष्णस्य पादतले बाणप्रहारः कृतः, 413७1१४, ६९-७४ कृष्णस्य कृपया स्वर्गं गतः जरासन्धः - बृहद्रथस्य पुत्राः, अस्य द्वौ पुत्र्यौ, मगधाधिपतिः, कृष्णादिभिः सह अष्टादशवारं युद्धकरणम् , पराजयः अस्य, [द्र. ४।१६।८३-८६] ४।२२।१-१८, २६।१-८ जातिस्मरः — मुनिः, कलिङ्गाय यमगीतोपदेष्टा ३।७।१४-३३ जैमिनिः —व्यासिशव्यः, सामवेदशाखानां विभागकर्ता, अस्य शिष्यः सुमन्तुः ३।४।९, ६।१-८ ज्योतिष्मान् - प्रियत्रतस्य पुत्रः, कुश्रद्वीपस्य अधिपतिः २।१।८,१३ तपती — छाया-सूर्ययोः पुत्री 31212-8 ताम्रा - कस्यपस्य भार्या, शुक्यादीनां माता १११४११२७, ११२१११४-१७ तुषिताः [द्र. देवविशेषः] दक्षः

— प्रजापतिः, ब्रह्मणः मानसपुत्रः, नित्यसर्गस्य हेतुः १।७।४-५, ३७-३८

—अस्य भार्या प्रस्तिः, चतुर्विशतिकन्याः, कन्यानां पतयः सन्ततिश्च

१।७१२०-३८

दक्षः

-प्रचेतस-मारिषापुत्रः, धर्मादिभ्यः कन्यादानम्, [इ. १११४1९-१०] १११४1७३-१५७ तत्सन्तिश्च

दनुः

-दक्षप्रजापतेः कन्या, कश्यपस्य पत्नी, द्विमूर्घादयः दानवा अस्य पुत्राः

१११४।१२६, २११४-१४

दन्तवकः

—रुक्मिणीविवाहप्रसङ्गे कृष्णेन पराजितः

412818-82

दारुकः

---कृष्णस्य सारियः, उग्रसेनाय अर्जुनाय च सन्देश-कथनायायं कृष्णेन प्रेरितः, सम्बद्धविषयेण सह

४।३७।३७-६५

दितिः

-दक्षप्रजापतेः कन्या, कश्यपस्य भार्या

१।१५।१०३, १२६

-अस्याः कन्या सिंहिका, हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्षी पुत्रौ, हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्षयोवशश्च

१।१५।१४१-१४४, २१।१-३

-अस्यां महतां उत्पत्तिः

१1२१1३०-४१

दुर्वासाः

—शङ्करांशः, विद्याधरवध्वाः सन्तानकाख्यस्रजः प्राप्तिः, इन्द्राय मालादानम्, शापदानम्, अस्य स्वरूपम्

21312-24

देवः

—दैत्यस्सह अ**मृतमन्थन**म्

—पारिजातहरणप्रसङ्गे कृष्णेन सह युद्धकरणम्

### देवकी

2,110	
देवकस्य कन्या, वसुदेवस्य पत्नी	41914-90
—कंसेनेयं वसुदेवेन सह कारागारे स्थापिता	५।१।६७
—अस्याः गर्भे श्रीकृष्णस्य प्रवेशः, देवकृता स्तुतिः	५1२1२-२१
—भगवतः आविर्भावः, देवक्या कृता स्तुतिः	४।३।१-२, १२-१४
—अस्याः शयने देव्याः स्थापनम्	<b>५।३।२३</b>
—अस्याः कारागारान्युक्तिः	स्राशाहर-१७
—अस्याः विह्वप्रवेशः [ द्रु. श्रीकृष्णः, वसुदेवश्च]	राउटा४
देवदूतः [ = वायुः ]	
- कृष्णस्य स्वर्गगमनार्थं देवविज्ञापनस्य निवेदनम्	५।३७।१६-२८
—कृष्णस्य आज्ञया सुधर्मसभां स्वर्गादानीय	
ज्यसेनाय तस्याः दानम	४।२१।१३-१७

### देवप्रहरणाः

उत्रसेनाय तस्याः दानम्

_	-दवाः, सहस	त्रथुगाना	4			
	अंते पुनः	एषाम्	उत्पत्तिः	[ ].	कृष्णः ]	शापपार्वे
<b></b>						

१११४१११७ —प्रत्यूषस्य पुत्रः, अस्य द्वौ पुत्रौ

**चुतिमान्** 

—प्रियवतस्य चतुर्थः पुत्रः, क्रौञ्चद्वीपस्य अधिपतिः 21914-6, 18

द्विविद:

—वानरः, नरकासुरस्य सखा, यज्ञनाशकः, बलदेवेन हतः ४१३६११-२४

धनञ्जयः

-सर्पः, कश्यपात् कद्रौ जातः 2122123-20

धन्वन्तरिः

331318 —समुद्रात् अस्य प्रादुर्भावः

धर्मः

—श्रद्धादीनां त्रयोदशदक्षकन्यानां पतिः, अस्य सन्ततिः १।७।२३-२४, २८-३१ —प्राचेतसद्धस्य दशकन्यानां अरुन्धत्यादीनां १११४११०४, १०६-१२५ पतिः, तद्पत्यानि

Jan., 1900] विष्णुपुराण-विषयसूचा	09
धर्मः [ = वसुः ]	
— धर्मवसुपुत्रः, अस्य भार्या मनोहरा, अस्य पुत्राश्च	१११५११११, ११३-११४
धाताः	
—भृगु-ख्यातिपुत्रः, आयतेः पतिः, अस्य पुत्रः	
प्रणः, पौत्रः वेदिशसः	१।१०।२-४
धेनुक:	
—दानवः, खराकृतिः, अयं बलरामेण हतः	५।८।१-१३
ध्रुवः	
— उत्तानपादस्य पुत्रः, सुनीतिरस्य जननी, तपस्यार्थं	
वनगमनम्, भगवता वरप्राप्तिः, अस्य द्वौ पुत्रौ,	
सम्बद्धविषयेण सह	१।११।१-१२।१०३
— पूर्वजन्मनि ब्राह्मणपुत्रः	१।१२।८३-८६
ध्रवः [=वसुः ]	
—धर्म-वसुपुत्रः, अस्य पुत्रश्च	१।१५।१११-११२
नक्षत्रयोगिन्यः	
—दश्चस्य कन्याः, सोमस्य पत्न्यः	१११४।१०४, १३५
नकुल:	
—नरकाप्राप्यककर्मविषयकप्रश्नकर्ता, यमगोता च	१।७।१-३८
नन्द्गोषः	12.0
—[ द्र. कृष्णः ]	५।५।१-२०।८३
नरकः	
—असुरः, देवादीनां कन्यापहारकः, कृष्णेन हतः	पारशा१–२२
नारदः	
- नारदकर्नृकं कंसं प्रति यशोदा-देवकीगर्भपरिवर्तना-	
- नार्यक्रपृक करा त्रात वसाया यक्तामानवारवता । दिवृत्तान्तस्यावेदनम्	५।१५।१–३
—देवर्षिः, एतत्कुर्तृकं हर्यश्वानाम् शबलाश्वानां पृथिवी-	112412-4
परिमावणापनाय प्रेषणम्, दक्षात् शापप्राप्तिः	१।१४।=६-१०२
<ul> <li>केशिवधानन्तरं नारदक्ता कृष्णस्य स्तुतिः</li> </ul>	५११६११८-२७
—नारदकर्तृकं मायावत्यै प्रद्युम्नस्य परिचयकथनम्	die die beinei
[ द्र. ४।३३।१०-११, २७।२५-३२ ]	412619-18

निदाघः

—पुलस्यस्य पुत्रः, ऋभुशिष्यः, ऋभोस्सकाशात् तत्त्वोपदेशप्राप्तिः, ऋभुकृता परीक्षा च

२।१५।१-१६।२५

निद्रा

—देवी, योगनिद्रा, कृष्णस्य अज्ञया षड्गर्भान् पातालात् आनीय देवक्याः गर्भे स्थापयित्री, सम्बद्धविषयश्च

४।१।६६-८६

नृसिंह:

—विष्णोः अवतारः, हिरण्यकशिपोः घातकः [ द्र. प्रह्लादः ] १।१६।१-२०।३६

पञ्चजनः

-दैत्यः, शंखरूपः, सान्दीपनेः पुत्राणाम् अपहर्ता, कृष्णेनायं इतः, पाञ्चजन्यशंखोत्पत्तिः, प्रभावश्च द्रि. सान्दीपनिः

4128188-38

पराशरः

-मुनि:, वसिष्ठवचनात् राक्षसनाशकसत्रस्य उपसंहरणम्, पुलस्य-वसिष्ठवरदानात् पुराणसंहिताकर्ता द्र. ११२११-२६]

313185-38

परीक्षित्

—अस्य राज्याभिषेकः

41३८19२

पावकः

—बसूनाम् अधिपतिः [ द्र. अग्निः ]

१1२२1१-३

पारिजातः

—अस्य उत्पत्तिः समुद्रमथनात्

213184

पार्वती

-शिवस्य भार्या, शिवेन सह क्रीडनम्, उषाये वरदात्री

पार्राश्र-१४

पितर:

—अग्निष्वात्ताः, बर्हिषदः, एषां स्वधा पत्नी, मेना-घरिण्यो पुत्र्यो, सन्ततिश्च [ द्र. १।७।२२, २५-२७ ]

2120126-23

पुरोहिताः

—प्रह्लादाय पितुः श्रेष्ठत्वकथनम् , कृत्यायाः उत्पादनम् , प्रह्वाद्वरदानम्

पुलस्यः	
— पराशराय वरप्रदानम्	[द्रपराशरः]
पुलहः	
— ब्रह्मणः पुत्रः,	शाजाय
- क्षमा अस्य भार्या, कर्दमादयः त्रयः पुत्राः	
्द्र. १।७।२५-२६	3130180-88
पूतना	
—बालघातिनी, कृष्णकर्तृकः अस्याः नादाः	41410-88
पूचा	
—द्वादशादित्येषु षष्टः [ द्र. आदित्यः ]	१।१५।१३२
पृथिवी	
— वराहकर्तृकः अस्याः उद्धारः, सम्बद्धविषयश्च	१।८।४।४।४
—पृथुकर्तृकं अस्याः दोहनम्	१।१३।६९-९५
— पृथिवीकर्तृकं देवताभ्यो भाराकान्तत्वनिवेदनम्	४।१।१२-२७
—पृथिवीकर्तृकं कृष्णाय कुण्डलप्रदानम्	
नरकासुरसन्ततिरक्षणाय अभ्यर्थनञ्ज	४१२९१२२-२६
पृथुः [ = वैन्यः]	
— अस्य उत्पत्तिप्रकारः, अस्याभिषेकः, सूत-मागधकृत-	
स्तुत्यनुसारेण कार्यकर्ता, पृथिवीदोग्धा च	१।१३।३८-६५
—अस्य सन्तितः [ द्र. १।२२।१ ]	318818-8
पैरु:	
— पैलः व्यासस्य शिष्यः, ऋग्वेदस्य अध्येता,	31810
एतत्कर्तृकं शाखाद्वयस्य शिष्याभ्यां प्रदानम्	३।४।१६-२६
षोण्ड्कः	
<ul> <li>नृपः, रुक्मिण्याः हरणसमये बलरामादिभिः पराजितः</li> </ul>	४।२६।६-८
षीण्ड्रकः	
—कुष्ण इव रूपधारकः, कृष्णेन इतः, वाराणसीदहनश्च	३।३४।३-२०
प्रचेतसः	
—दश, एषां जननी सवर्णा, जनकः प्राचीनबर्हिः,	
समुद्रे तपश्चरणम् , विष्णोः वरप्राप्तिश्च	818818-88
— वृक्षाणां दाहकाः, मारिषा एषां भार्याः, पुत्रः	010410
्र दक्षः, सम्बद्धविषयश्च	१११५११-७४

### प्रत्यूष:

—वसुः, धर्म-वसुपुत्रः अस्य पुत्रः देवलः

१११५।१११, ११७

### प्रद्युम्नः

—मदनस्यांऽशः, ऋष्ण-चिमणीपुत्रः, शम्बरेण हतः

४१२६११०-१२

—प्रद्युम्नकर्तृकः राम्बरवधः, मायावती अस्य भार्या, पुत्रः अनिरुद्धः

४।२७।१-३२, २८।६-७

#### प्रभासः

—धर्म-वसुपुत्रः, अष्टमः वसुः, अस्य भार्या बृहस्पतेः भगिनी वरस्त्री, विश्वकर्मा पुत्रः

१1941888, ११८-११९

#### प्रम्लोचा

अप्सराः, कण्डुना सह विहारः, अस्याः
 पुत्री मारिषा, सम्बद्धविषयेण सह

3134188-40

#### प्रलम्बः

-दानवः, बलरामेण इतः

35-31818

### प्रसृतिः

- स्वायम्भुवनोः कन्या, दक्षप्रजापतेः भार्या [ द्र. दक्षः ]

210120-23

### प्रह्लाद:

--हिरण्यकशिषोः पुत्रः, समदर्शो, विष्णुभक्तेः प्रचारकः, अस्य चरितस्य वैशिष्ट्ययम्

21241282-296

—नृसिंद्दावतारस्य, प्रह्लादचरित्रस्य च विषयकः प्रश्नः

१।१६।१-१६

—गुरुगहे शिक्षितस्य प्रह्लादस्य परीक्षणम् , अस्य मारणोपायः, प्रह्लादकृतः दैत्यबालकानाम् उपदेशः, सम्बद्धविषयेण सह

919618-88

— अस्य हननाय विष-श्रस्ताग्न्यादीनां प्रयोगः, पुरोहितेभ्यः जीवनदानम् , प्रह्लादाय एतत्कृतः आशीर्वादः

313618-89

—प्रह्लादकर्तृकं हिरण्यकशिपुं प्रति विष्णोः प्रभावकथनम् , पुनः दैत्यकृतं अस्य परीक्षणम् , नीतिशास्त्राध्ययनम्

313818-08

—प्रह्लादकृता भगवत: स्तुतिः, विष्णोराविर्मावः इत्यादि

१12011-39

### प्राचीनबर्हिः प्रजापतिः,

—हविर्घानस्य पुत्रः, पृथोः पौत्रः, अस्य द्शापुत्राणां प्रचेतसां पितुः आज्ञया तपश्चरणम्

१।१४।४-४९

7	ľ	Ta.
ы	ıu	ΙМ

- आयति-धात्रोः पुत्रः, अस्य सन्ततिः

१।१०।३-५

#### प्रियव्रतः

—स्वायम्भुवमनोः पुत्रः, अस्य द्वे कन्ये, दश पुत्राः, अस्य पुत्र-पौत्रैः सप्तद्वीपवत्याः पृथिव्याः पालनम्, शाल-ग्रामक्षेत्रे तपश्चरणम् [ द्र. ३।१।२४-२५ ]

21818-83

#### प्रीति:

-दक्षप्रजापतेः कन्या, पुलस्त्यस्य भार्या, अस्याः पुत्रः दत्तोलिः, यः स्वायम्भुवमन्वन्तरे अगस्त्यः आसीत् १।७।२५, १०।९-१०

फालगुनः [ = अर्जुनः ]

—कृष्णस्य आदेशपालनकर्तां

्रि. व्यासः ] ५।३७/६२-३८/९२

बलदेवः [ = सङ्कर्षणः ] कृष्णचरितेन सह 41318-36188

—रेवर्ती लाङ्गलाग्रेण विनम्रयामास, रेवत्या सह विवाहश्च

819193-98

— कृष्ण-गोपालैः सह तालवनगमनम् , धेनुकासुरस्य वधकरणञ्च

41618-83

—भाण्डीरकवने गोपै: सह क्रीडनम् , प्रलम्बासुरस्य वधकरणञ्च

41918-36

—कृष्णेन सह कंसस्य सभागमनम् , कुवलयापीडस्य वध-करणम् , मुष्टिक-सुमाल्योः इननम् , मातृ-पित्रादीनां वन्दनादि

4199187-20193

—रोषांसः, यमुनाकर्षणम्, लक्ष्म्याः कुण्डलादिपाप्तिः, रेवत्या सह विवाहः, अस्य पुत्रद्वयम्

412815-24188

—कुण्डिनपुरे एतत्कर्तृकः शिशुपालादीनां पराजयः

412814-6

—अनिरुद्धस्य विवाहार्थं भोजकटं प्रति गमनम , द्यत-क्रीडनम्, रुक्मिणः इननम्, अन्येषां राज्ञां दुर्गति-करणम

412613-26

— साम्बस्य मुक्तये इस्तिनापुरस्य उत्पाटनप्रयत्नकरणम्, पत्नीसहितं साम्बं द्वारकां प्रति आनयनम्

४१३५११-३८

-रैवतोद्याने पत्नीभिः सह क्रीडनम् , द्विरदनामक-वानरस्य इननम्

413818188

-अस्य शरीरत्यागः, शेषरूपधारणम् , समुद्रे प्रवेशः

५1३७19४-4६

### बलि:

—विरोचनस्य सुतः, अष्टममन्वन्तरसमये इन्द्रो भविता, अस्य पुत्रः बाणः

३१२११८, ४१११२३

ब	ह्	पू	7	
	S	9		

-दक्षकन्याद्वयपतिः, अस्य चतस्रः पत्न्यः, सन्ततिश्च

१११५/१०५, १३७

बाणः

—असुरः, बलेः सुतः

418123

—अस्य कन्या उषा, महादेवात् युद्धवरपाप्तिः, अस्य बाहुसहस्रं कृष्णेन छित्रम्, सम्बद्धविषयेण सह

४।३२।७-३३।१-५३

ब्रह्मा

-सदसदात्मकः [ द्र. सृष्टिः ]

शशाशि

निर्गुणस्यास्य जगत्कर्तृत्वादिसामर्थ्यकथनम्

8-31818

—दुर्वाससः शापात् निःश्रीकस्य इन्द्रस्य अस्य समीप आगमनम्, देवैः सह ब्रह्मकृता स्तुतिश्च

21912-64

—सप्तर्षीन् पितृत्वेन कल्पनम्

११२११२७-२६

- ब्रह्मकर्तृकं आधिपत्यम् देवादीनाम्

१1२२1१-१५

—पुष्करद्वीपस्थः न्यग्रोधवृक्षः अस्य निवासस्थानम्

[द्र. रेवती]

राश=६

—भूभारहरणाय एतत्कृता विष्णोः स्तुतिः, सम्बद्धविषयेण सह

प्राशाश्य-प्र

भगः

—द्वादशादित्येषु द्वादशसंख्याकः [द्र. आदित्यः ]

१।१५।१३३

भरतः

—ऋषभस्य पुत्रः, हिम (भारत ) वर्षाधिपतिः, अस्य पुत्रः सुमतिः, योगपरा, शालग्रामक्षेत्रे प्राणत्यागकरणम्

219176-34

 [ = जडभरतः ] हरिणसङ्गदोषात् ब्राह्मणकुले जन्म, सौवीरतृपतये तत्त्वोपदेशः, सम्बद्धविषयश्च

२।१३।३-१६।२५

भवः

—दक्षकन्या-सतीपतिः [द्र. रुद्रः]

१।७।२५-२६

भव्यः

—ध्रुवस्य पुत्रः, अस्य पुत्रः श्रम्भुः

शहशाह

भन्य:

— प्रियवतस्य पुत्रः, शाकद्वीपाधिपतिः

२।१।६-७; १४, ४।५८ ७३

भानुः

-दक्षप्रजापतेः कन्या, धर्मस्य पत्नी,

१११५१०३, १०६-१०९

भीम:

—वायोः पुत्रः, अस्य पुत्रौ

४।२०।४०-४६

भीष्मः

-नकुलाय यमगीतोपदेष्टा

३।७।८-३५

भीष्मकः

नृपः, कुण्डिनपुराधिपतिः, अस्य पुत्रः रक्मी,
 पुत्री च रुक्मिणी

धारहाश

भृगुः

- ब्रह्मणः मानसपुत्रः, दक्षकन्या-ख्यातिपतिः

१।७१, २५-२६

—अस्य धातृ-विधातारौ पुत्रौ, पुत्री श्रीः [द्र. श्रीचरितम् ] १।८।१९-१०।५

मनुः

—स्मृतिप्रणेता, प्रत्येककृतयुगेऽस्य जन्म

३।२।४६

मनुः [=वैवस्वतः ]

—प्रथमः, सूर्यसंज्ञापुत्रः [ द्र. वैवस्वतः ]

३।२।२

मनुः [=सावर्णिः ]

सूर्य-छायापुत्रः, द्वितीयः [ द्र. सावर्णिमनुः ]

३।२।४, १३-

मरीचिः

—ब्रह्मणः मानसपुत्रः, दक्षकन्या-सम्भूतिपतिः

१।७। ५, २५-२६

—अस्य पुत्रपौत्राः

१।१०।६

मरुतः

-४९ मस्तां उत्पत्तेः प्रकारः

११२११३०-४१

मरुत्वती

—धर्मस्य पत्नी, अस्याः पुत्राश्च

१११४११०३, १०६, १०८

मागधः

—सुत्याहदिने अस्य जन्म, पृथोः भविष्यगुणस्तावकः

१।१३।५१-६३

मायामोहः

—अस्य उत्पत्तिः, अस्य कार्यम् , अस्यैव उपदेशेन दैत्याः पराजिताः

### मायावती

— शम्बरस्य पत्नी, अस्याः प्रद्यम्नेन सह पुनः विवाहः, पूर्वजन्मवृत्तान्तश्च

पारणा१-३२

#### मारिषा

- प्रम्लोचायाः स्वेदबिन्दुभिः अस्याः जन्म, दक्षः अस्याः पुत्रः, सम्बद्धविषयश्च

313218-08

### मार्कण्डेयः

—मृकण्डोः पुत्रः, अस्य पुत्रः वेदशिराः मालाकारः [ द्र. कृष्णः ५११९१९७-२९ ]

313018

### मुचकुन्दः

-- नृपः, कालयवनस्य नाराकः कृष्णदर्शनम् , वरप्राप्तिः, गन्धमादनगमनम्

4123185-2819

### मुनिः

-दक्षप्रजापतेः कन्या, कश्यपस्य पत्नी, अस्यां अप्सरसाम् उत्पत्तिः

१।१५।१२७, २१।२५

#### मुरः

—असुर:, कृष्णकर्तृक: अस्य वधः

4129194-86

### मुष्टिकः

--- बलदेवेन हतः, सम्बद्धविषयश्च

4120184-66

### मुहता

— धर्मस्य पत्नी, अस्याः पुत्राः मुहूर्तामिमानिनः देवाः १।१५।१०३-१०६,१०८ मेघातिथिः

— प्रियत्रतस्य पुत्रः प्लक्षद्वीपाधिपतिः

२१११५, ७, १२, ४११-२१

### मृकण्डु:

—नियति-विधातृपुत्रः, मार्कण्डेयः अस्य पुत्रः

१।१०।३-४

### मैत्रेयः

—मुनि।, पराशरात् विष्णुपुराणश्रोता

31318

### यमः

—सञ्ज्ञा-सूर्ययोः पुत्रः, छायया शापप्राप्तिः

३।२।२, ५

—यमकर्तृकं यमयातनानिवारककर्मविवरणम्

31018-38

—पितणाम् अधिपतिः

शायरार, प

रुद्र:

Jan., 1966] विष्णुपुराण-विषयसूचा	77
यमी	
— संज्ञा-सूर्ययोः पुत्री	३।२।२
यवनः	
—गार्ग्यकृपया पुत्रं प्राप्य वनगमनम्	४।२३।४-५
यशोदा	
—नन्दस्य भार्या, [ द्र. योगनिद्रा, कृष्णश्च ]	धारा३-५।१२
याज्ञवल्क्यः	
—ब्रह्मरातस्य पुत्रः, वैशम्पायनशिष्यः, सूर्यात्	31418-38
वेदं प्राप [ द्र. वैशम्पायनः ]	41411-1E
यामाः	
—देवाः, यज्ञात् दक्षिणायां जाताः, ध्रुवस्य तपसः	01,012 9 9219 - Vo
विघ्नकर्तारः सम्बद्धविषयेण सह	१।७१२१, १२।१-४०
यामिः	2 0 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2
그 없이 없는 그 것이 잘 없었다면 하는 것 같아 있다. 그는 소문이 하지 않아 없다.	३, १०४, १०९, ११६
योगनिद्रा [ = योगमाया]	
—अनया कृतानां कर्मणां विवरणम् , हरेः	४।१।६६-३।२६
आज्ञया यशोदागर्भे प्रादुर्भावादि	111110 1110
रजकः	4189188-80
—अस्य कृतिः, कृष्णकर्तृकम् अस्य हननम्	11/11/2 10
रुक्मी —भीष्मकपुत्रः, कृष्णेन पराजितः	थारहाश <b>-१</b> २
— माज्यकपुत्रः, कृष्णम पराजयः — द्युतक्रीडायां बलरामेण हतः, सम्बद्धविषयश्च	४।२८।७-२३
रुक्मिणी	४।२६।१-१२
—भीष्मकस्य पुत्री, कृष्णस्य भार्या, अस्याः पुत्रः प्रद्युम्नः, —श्रम्बरेण हृतस्य पुत्रस्य रुक्मिण्या पुनः प्राप्तिः	४।२७।२१-३२
— चारुदेष्णाद्यः अस्याः पुत्राः, चारुमती पुत्री	<b>४।२८।१-</b> २
	A CONTRACTOR OF THE PARTY OF TH
रुचि:	१।७।१६-२१
— प्रजापतिः, मनुकन्या-आकृतिपतिः, अस्याः सन्तिविश्र	110111

—ब्रह्मणः ललाटात् अस्य उत्पत्तिः, भवादीनि सप्त नामानि, एषाम् अष्ट स्थानानि, स्त्रियः, पुत्राश्च [द्र. ११७।१०-१५,२।५।१९] १।८।१-१४

-	
7	O
1	25
	u

-	DIID	ATA
पुराणम	-PUR	ANA

[Vol. VIII., No. 1

<ul> <li>समुद्रात् प्रकटीभृतस्य चन्द्रस्य धारकः</li> </ul>	१।९।९७
— अस्य उत्पत्तिः, एकाद्श्यस्द्रनामानि	१।१५।१२२-१२५
— अङ्गिरसः विद्यामाप, बृहस्पतिसहायकः	श्राहाश्र
रेवती	
— रैवत-ककुद्मिकन्या, बलदेवेन सह विवाहः, स	ाम्बद्धविषयेण सह ४।१।६५-९६
—अस्याः निशठ-उल्मुकौ पुत्रौ	४।२५।१६
—रा <b>म</b> स्य देहमाश्चिष्य वह्नौ प्रवेशः	पारेदार
रेवन्तः	
—सूर्यपुत्रः, अस्य उत्पत्तिप्रकारः	३।२।६-७
रोमहर्षणः [ = सृतः ]	
— न्यासशिष्यः, पुराणसंहिताध्येता	३।४।१०, ६।१६
रोहिणी	(101,-)
—वसुदेवस्य पत्नी [ द्र. कृष्णः ]	4101-2-1014
लम्बा	४।१।७३, २।२
	010410
—दक्षकन्या, धर्मपत्नी, अस्याः पुत्रः घोषः	१११५११०३, १०४, १०६, १०६
लक्ष्मी:	30 T-4-12-12-12
— बलभद्राय कुण्डलदात्री [द्र. श्रीः]	५।२५।१५-१६
वज्रः	
—अस्य राज्यामिषेकाय कृष्णस्य आ <b>देशः</b>	५।३७।६३
—अर्जुनेन सह द्वारकायाः निष्क्रमणम् —इन्द्रप्रस्थे अर्जुनेन कृतः अस्य राज्याभिषेकः	४।३८।४–६,
	५।३८।३४
वपुष्मान्	
—ि प्रियनतपुत्रः <b>शा</b> ल्मलद्भीपाधिपतिः	[द्र. शाल्मलद्वीपः २।४।२१–३४]
	२।१।६-७, १३
वराहः	
—अनतारः, अनेन पृथिन्या उद्धारः कृतः,	
वेदयज्ञमयः सम्बद्धविषयेण सह	१।४।१–५२
वरुणः	
— द्वादशादित्येषु दशमः [द्र. आदित्यः ]	१।१५।१३३
— ब्रह्मणा जलाधिपत्ये अभिषिक्तः	१।२२।१, ३
—वारुण्याः वृन्दावनं प्रति प्रेषणम्	५१२५१३-४

१।१५।१२६-१२७

Jan., 1900] विष्णुपुराण-विषयसूचा	
वसवः	
—अष्टौ, धर्मवसुपुत्राः, एषां नामानि सन्ततिश्च १११	५११०६,१०८,११०-१२५
वसिष्ठः	
—ब्रह्मणः मानसपुत्रः, ऊर्जा अस्य <b>प</b> त्नी,	१।७।५-७, २५, २७
—अस्य रजादयः सप्त पुत्राः [ द्र पराश्चरः ]	\$180183 <b>−8</b> 8
वसुः	
— धर्मपत्नो, अस्याः पुत्राः वसवः	१।१५।१०३, १०९
वसुदेवः [ = आनकदुन्दुभिः]	
— देवक्या सह विवाहः, कृष्णजन्म, कृष्णाय	
नन्दगोपस्य ग्रहं प्रति नयनम्, ततः कन्यायाः	
आनयनम्, सम्बद्धविषयेण सह [ द्रः कृष्णः ]	५।१।५-५।६।५
— कंसवधानन्तरं कृतप्रमाणस्य कृष्णस्य स्तुतिः	४१२०१६२-१०५
—एनं प्रति कृष्णकर्तृकक्षमायाः याचना	५१२१११-५
— एतत्कर्तृकः विह्वप्रवेशः	रा३८।४
वायु:	
—श्रीकृष्णस्य आज्ञया इन्द्रात् सुधर्मां सभां	
आनीय उम्रसेनाय ददौ	४१२१११३-१७
<ul> <li>इन्द्रादीनां सन्देशं श्रीकृष्णं श्रावियत्वा, कृष्णस्य</li> </ul>	
सन्देशं गृहीत्वा स्वर्गं ययी	५।३७।१६-२७
वाराणसी [ द्र. पौण्ड्कः ]	
वारुणी	
—मदिराधिष्ठात्री देवी, अस्या उत्पत्तिः	१३।११६४
— वरुणाज्ञया बळदेवस्योपभोगार्थंमागमनम्	
वृन्दावनस्थस्य कदम्बस्य कोटरे	४।२४।२-७
वासुकि:	
— नागराजः, देवाः एनं नेत्रं कृत्वा समुद्रं ममन्थुः,	
सम्बद्धविषयेण सह [ द्र. १।२१।१६-२० ]	818108-888
विधाता	
—भृगुख्यातिपुत्रः, नियतिपतिः, मृकण्डोः पिता	१।१०।१-४
विनता	
	The state of the s

—दक्षकन्या, कश्यपस्य पत्नी, —गरुड: अरुणश्चेति द्वौ पुत्रौ

## विप्रचित्तिः

—दैत्यः, प्रह्लादं नागपाशैः बध्वा जले क्षिप्तवान् तत्कालीनायाः अवस्थायाः वर्णनम्

१।१९।५२-६३

## विवस्वान्

—द्वादशादित्येषु सप्तमः [ द्र. आदित्यः ]

१११४११३३

## विश्वकर्मा

—अष्टमनसोः प्रभासस्य पुत्रः, देवशिल्पो, अस्य सन्ततिश्च

१1१41888-874

— सूर्यस्य तेजसः शातनं चकार, तेन तेजसा चक-विशूल-विमान-शक्तीत्याद्यनेकानि आयुधानि चकार

३१२११, ८-१२

## विश्वा

-दक्षकन्या, धर्मपत्नी, अस्यां विश्वेदेवानाम् उत्पत्तिः

308-80818818

## विश्वामित्रः

—अस्यैव प्रेरणया रक्षसा पराशरपिता शक्तिः भक्षितः

212183

## विश्वेदेवाः

**—**[द्र. विश्वा]

# विष्णुः [ द्र. सृष्टिः ]

- देवान् प्रति समुद्रमथनाय उपदेशः,

—देवानां सहायकः ( सम्बद्धविषयेण सह )

— ध्रुवाय वरदाता ( सम्बद्धविषयेण सह )

— प्रचेतोभ्यः प्रजावृध्यर्थं वरप्रदानादि

—मारिषायाः पूर्वस्मिन् जन्मनि विष्णुकर्तृकं वरप्रदानम्

—विष्णोः नृसिंहरूपम्

—विष्णोः महत्त्वकथनम् प्रह्णादेन दैत्यबालकेभ्यः

—आदित्यानामधिपतिः [ द्र. १।१५।१३**२** ]

—विष्णोः विभूतिवर्णनम्

—विष्णोविभूतयः

—मद्राश्वादिवर्षेषु विष्णोः विभिन्नरूपाणि

—विष्णुः सोमस्वरूपः

-विष्णुः वायुस्वरूपः

[ ?19164-67]

21918-888

१1११1१-१२1१०३

१।१४।५-४९

१११५१६०-७१

१११४।१४१-२०।३९

१।१७।५५-९१

शायाह, इ

. ११२२११-१६

212140-42

38188

राशावर

# विष्णुशक्तिः

[an., 1966]

—विष्णुः ब्रह्मस्वरूपः —विष्णुः रुद्रस्वरूपः

—विष्णुः सूर्यस्वरूपः

इत्यादि

स्वीकरणम्

६।२७ द्र. व्यासः]

- सूर्याधिष्ठिता, अस्या एव सामर्थ्यात् सूर्यस्य सृष्ट्यादि-मुख्यहेतुत्वम् [ द्र. २।१७।७ ]

## वीरणः

- प्रजापति:, अस्य पुत्री पुष्करिणी

## वृषपर्वा

--- कश्यपादितिपुत्रः, शर्मिष्ठादयः तिस्रः पत्न्यः अस्य

212318-10

## वेनः

-अङ्गस्य पुत्रः, सुनीथा अस्य जननी, मातामहदोषेण अयं दुष्ट एव जातः, ऋषिभिः अयं नाशितः, अस्य ऊरुमन्थ-नात् निषादीत्पत्तिः, पाणिमंथनात् पृथोरुत्पत्तिः

35-015818

# वैवस्वतमनुः

—सञ्ज्ञा-विवस्वतोः पुत्रः, सप्तममन्वन्तरेश्वरः, अस्य पुत्राः इक्ष्वाकादयः सम्बद्धविषयेण सह

318130-2188

वैशम्पायनः	
—व्यासिशन्य, यजुर्वेदस्य अच्येता,	३।४।८
— ब्रह्महत्यायाः प्राप्तिः, वैश्वम्पायनात्	
अधीतविद्यायाः वमनम्	३।५।१-१३
वैश्रवणः [ = कुवेरः ]	
—राज्ञाम् अधिपतिः	१।२२।१, ३
व्यासः [ = विष्णुः ]	
—नारायणः, द्वापरे द्वापरे एतत्कर्तृकवेदविभागः,	
सम्बद्धविषयेण सह	३।२।५४-६१
—द्वापरे द्वापरे वेदविभागकर्ता, अस्य अष्टाविंशति	
नामानि, भविष्यव्यासस्य नाम च	३।३।१-२१
—भविष्यन्यासनाम, ब्रह्मस्वरूपञ्च	313128-38
—वेद्विभागः, पैलादयः चत्वारः अस्य	
शिष्याः, शाखाप्रशाखाः च	३।४।१-२६
—आमीरैः पराजितम् अर्जुनं प्रति व्यासकर्तृकं	
परिसान्त्वनम्, पराजयकारणकथनं च	
सम्बद्धविषयेण सह	413८134-६०
<ul><li>कलेः, स्त्रीणाम्, श्द्रस्य च महत्त्वकथनम् कलियुगे अल्पा-</li></ul>	
यासेनैव विशेषपुण्यप्राप्तिकथनम्, सम्बद्धविषयेण सह	हारा१-४१
शकः	
—द्वादशादित्येषु द्वितीयः [द्र. आदित्यः, इन्द्रश्च ]	१।१५।१३२
शची	
— इन्द्रपत्नी सत्यभामायाः अपमानकर्त्री	413 128-42
श्रतधनुः	
— तृपः, शैन्या अस्य पत्नी, नग्नविचारप्रसङ्गतः	
पाषण्डालापदोषवर्णनम् , पाषण्डालापदोषेण	
अनेकजन्मप्राप्तिः, तत्राऽपि शैव्यया पूर्वजन्म-	
स्मारणम्, ततो दोषात् मुक्तिः, सम्बद्धविषयेण सह	३।१८।५२-६४
शतस्या	
<ul> <li>स्वायम्भुवमनुपत्नी, प्रियव्रतोत्तानपादौ द्वौ अस्याः</li> </ul>	
पुत्रौ, प्रसूति: आकृतिश्चेति द्वे कन्ये [ द्र. वैवस्वतमनुः ]	३१-३१।०।१
श्रनिः	
—सूर्यपुत्रः, छायास्य जननी	३।२।२-१३

#### शम्बरः

—असुरः, शम्बरेण कृतः मायया प्रह्लादस्य इननप्रयत्नः १।१९।१४-२५

अनेन प्रह्लादोपिर प्रयुक्तं मायासहस्रं कृष्णस्य चक्रेण नष्टम्
 १११५१४

- दैत्यः, कालशम्बरः, षष्ठेऽह्नि जातमात्रं प्रयुम्नं जहार, एवं लवणाणवे प्रचिक्षेप ततः प्रद्युम्नेन इतश्च सम्बद्धविषयेण सह

४।२६।१२, २७।१-३२

#### शाल्वः

— नृपतिः, रुक्मिणीविवाहप्रसङ्गे बलरामेण पराजितः

पार्हा७-5

### शिवः

- कृष्णेन सह युद्धकरणम्, ततः शिवेन प्रार्थना सम्बद्धविषयश्च [द्र. रुद्रः, ब्रह्मा]

४।३३।७-९०

## शिशुपालः

— रुक्मिणीहरणप्रसङ्गे बलरामेण पराजितः [४।१४।४४-४५] ५।२६।३-१२

## शेषः

—विष्णोः तामसी तनुः, असुरनाशकः, स्वरूपम् अस्य, पातालस्थः सर्वलोकघारकः, इत्यादि द्रि. बलभद्रः द्रि. १।२१।१६-२२ ११२२११, ७] २१४११२-२७

# शङ्गधेतः

—सर्पः, कश्यपात् कद्रौ जातः

११२१।१६-२१

## शर्मिष्ठा

—वृषपर्वणः कन्या

शिरशिह

## शिविः

—संह्वादपुत्रः

११२१११

## शिष्टिः

— ध्रवपुत्रः, अस्य पञ्चपुत्राः

१।१३।१-२

## संह्लादः

—**हिरण्यकशिपुपुत्रः** अस्य पुत्राः १।१५।१४२-१४३, १।२१।१

## शैन्या

— श्रतधनुनृपस्य पत्नी, [ द्र. श्रतधनुः ]

3196148-98

#### श्री:

- भृगुः अस्याः पिता, माता च ख्यातिः, नारायणपत्नी अस्याः स्वरूपं महत्त्वं च विष्णोरिव सर्वगतता

216184-34

क्वीरससुद्रात् अस्याः आविर्भावः सम्बद्धविषयेण सह,
 अस्या भ्रातरौ घातृ-विधातारौ

21912-2012

#### सङ्कल्पा

—प्राचेतसदक्षकन्या, धर्मपत्नी, सङ्कल्पः अस्याः पुत्रः

१११४११०३, १०४, १०६, १०९

#### सञ्ज्ञा

—विश्वकर्मणः पुत्री, सूर्यपत्नी, अस्याः सन्ततिः, सम्बद्धविषयश्च

31218-83

# सगरः [ द्र. अ. खं. ]

# सती

—दक्षकन्या, रुद्रपत्नी, दक्षकोपात् देहत्यागः, पुनरपि हिमवतः दुहितृत्वेन उत्पत्तिः

816188-88

### सत्यभामा

—सत्राजितः कन्या, कृष्णभायी, कृष्णाय पितृवधं कथितवती, एतां सान्त्वयामास कृष्णः

४।१३।६४-७६

[ इ. ४१२८१९ इ. कृष्णः ५१२९१३७-३१११३ ]

## सत्यवती

गाधिकन्या ऋचीकमार्या, अस्याः पुत्रः जमद्ग्निः, इयं
 कौशिकी नदी अभूत्

४१-११।०१४

## सन्नतिः

—दश्चनन्या, ऋतुभार्या, अस्याः पुत्राः वालखिल्याः

8180188-83

		N	
स	H	ष	3

—मरीचि:, अत्रिः, अङ्गिराः, पुलस्यः, पुलदः, कतुः, वसिष्ठश्च, ध्रुवं प्रति हरे। आराधनात्मकः उपदेशः कृतः एभिः

2122130-60

# सम्भृतिः

- दक्षकन्या, मरीचेः पत्नी, पूर्णमासः अस्याः पुत्रः [द्र. १। ७।२५-२६]

१११०।६

#### सवनः

— प्रियवतपुत्रः पुष्कराधिपतिः

२।११६-७, १५

## सवर्णा

—समुद्रकन्या, प्राचीनबर्हिषः पत्नी, प्रचेतसः अस्याः पुत्राः,

१।१४।२-६

## साध्या

—प्राचेतसदक्षकन्या, धर्मभार्या, अस्याः साध्याः पुत्राः १११४१०३-१०७

# सान्दीपनिः

—काइयाम् उत्पन्नः, अवन्तिपूरवासी बलरामकृष्णयोः गुरुः, अयं गुरुदक्षिणात्वेन लवणाणवे मृतं पुत्रम् अयाचत् कृष्णबलरामाभ्यां पुत्रं प्राप्तवान् , सम्बद्धविषयश्च ५१२११६८-३२

#### साम्बः

कृष्ण-जाम्बवतीपुत्रः, स्वयंवरावसरे बलात् सुयोधनकन्याम् आदत्तवान्, ततः कौरवैः बद्धः, बलरामेण मोचितश्च सम्बद्धविषयेण सह

पारपा४-३८

— एतत्कर्तृकः मुसलप्रभावः

४१३७१६-१४

# सावर्णिमनुः

— छाया-सूर्यपुत्रः एतत्कालीनाः देवादयः सम्बद्धविषयेण सह ३।२।१-१९

# सिंहिका

- कश्यप-दितिसुता, विप्रचित्तिभार्या

31371888-885

# सुनीतिः

— उत्तानपादभार्या, ध्रवजननी विमात्रा दुःखितं ध्रवं अङ्के संस्थाप्य उपदिदेश, तारकारूपा [ द्र. सुरुचिः १।१२।६४] १।११।३-३०

—वृक्षाधिपतिः

3,11	
सुकर्मा	
—सुमन्तुपुत्रः, सामवेदशाखाध्येता, सहस्रसंहिता-	
भेदकर्ता, परंपरा च	३।६।२-८
सुमन्तुः	
—व्यासशिष्यः, अथर्ववेदस्य अध्येता .	31818
—जैमिनिपुत्रः, अस्य पुत्रः सुकर्मा, उभौ अपि	
सामवेदशाखाध्यायिनौ,	३।६।१-२
—कबन्धाय अथर्ववेदं अध्यापयामास, परम्परा च	३।६।९-१४
सुमाली	
—कंसभ्राता, बलरामेण निपातितः	4120190
सुरभिः	
—अस्याः क्षीरसमुद्रमथनात् उत्पत्तिः	१।८।८४
—दक्षकन्या, कश्यपपत्नी, गी-महिषा-	
दीनाम् उत्पत्तिः अस्याः सकाशात्	१।१५।१२६-१२७, १।२१।२४
सुरसा	
—दक्षकन्या, कश्यपभार्या, अस्यां सर्पाणामुत्पत्तिः	१।१५।२६-२७, २१।१८-१९
सुरुचि:	
—उत्तानपादपत्नी, श्रुवापमानकत्रीं, तपसः	
विघ्नकर्त्री च, सम्बद्धविषयेण सह	१।११।१-१२।१०३
सृत:	
—सोमाभिषवभूमौ सोमाभिषवदिनेऽस्य	
जन्म, एतत्कृता पृथोः स्तुतिः	१।१३।५१-६४
—विष्णुपुराणोक्तविषय <mark>कप्रश्नक</mark> र्ता [ द्र. ३।६।१६	31818-88
सूर्यः	
—अस्य रथविवरणम् , गतेः वर्णनम् , द्वादशादि	त्य-
वर्णनम् , शक्तिवर्णनम् , सम्बद्धविषयेण सह	
[ द्र. श्रीघरी २।११।१ ]	२।८।१-११, २६
—अस्य पत्नी सञ्ज्ञा, सन्ततिः, विश्वकर्मणा	
अस्य तेजसः शातनम् , तेन चक्रायुधादिकरणम	
—याज्ञवल्क्याय <b>गुक्लय</b> जुर्वेदाध्यापनम् [ द्र. स्यम	ान्तकमणिः ] ३।५।१–२ <b>६</b>
सोमः	
Property Copy for the avent property of the copy of th	

[द्र. प्रचेतसः]

3	
—प्रचेतोभ्यः मारिषायाः वृत्तान्तं कथियत्वा	
तस्याः ग्रहणाय प्रेरितः	१११४११-७३
—सप्तविंशतिदक्षकन्यापतिः, संततिश्च	१।१५।१३५-१३६
—समुद्रमथनादस्य प्रादुर्भावः	थ3 3 १
— नक्षत्राधिपतिः	१।२२।१-२
सोमः [ = वसुः ]	
— धर्मवसुपुत्रः, अस्य पुत्रः वर्चाः सौभरिः	१११५।१११,११३
—जले तपःकरणम् , अस्य विशिष्टं चरितम्	शराह९-१३३
सौवीरः	
—अयं भरतेन उपदिष्टः	२।१३।१-१६।२४
स्मृतिः	
— दक्षकन्या, अङ्गिरसः पत्नी, अस्याः त्रयाः पुत्राः	१।१०।७-८
स्वधा	
—पितृपत्नी, अस्याः मेनाधारिण्यौ पुत्र्यौ	१।१०।१७-१९
स्वायम्भुवमनुः	
— ब्रह्मपुत्रः, शतरूपास्य पत्नी, प्रियव्रत-उत्तानपादौ	
पुत्रौ, प्रसूतिः आकृतिश्चेति हे कन्ये [द्र. २।१।५-४४	38-381018
स्वाहा	
— अग्निपत्नी, अस्याः सन्तितिः	8180188-80
हरिः	7 010160 11
— अस्य ब्रह्मादिरूपेण सुष्ट्यादिकर्तृत्वकथनम् [द्र. विष्णुः	ी शराहश-७०
हर्यश्वाः	0.01
असिक्नी-दक्षपुत्राः, नारदस्य वचनात् प्रतिदिशं गता ९	: १११४१६१-६६
हर्षःकामपुत्रः, धर्मपौत्रः	01,013.6
	शिषा३१
हिंसा अधर्मपत्नी, संततिश्चास्याः	१।७।३२-३६
हिरण्यकशिपुः	
—दिति-कश्यपपुत्रः, अस्य चत्वारः पुत्राः [सं. वि. द्र. प्र	ह्राद:]
	१।१५।१४१-२०।३६
हिरण्याक्षः	
−-कश्यपादितिपुत्र <b>ः</b>	१।१५।१४१, १।२१।२-३

# द्शमः खण्डः—निर्वचन-लक्षण-गणना-वर्णनाद्यः विभागः—निर्वचनम्

—अमावस्या	२।१२।८
—आनकदुन्दुभिः	8188125-28
—आहेतः	३११८।१२
—गंधर्वः	818186-80
—गोविन्दः	५।१२।१२
—जनकः	814125
—तैत्तिरीयाः	३।५।१२
—दामोदरः	५ ६ १६-२०
—नारायणः	शशह
—निषादः	१।१३।३५
—नैमित्तिकः	६।४।७
—पृत्र <b>ः</b>	१।१३।४२
—पृथिवी	शश्राद
— प्रवह:	२।१२२८
—प्राचीनबर्हिः	818818
—प्लक्षः	21818
— ब्रह्मा	३।३।२२, १।१२।५७
—भगवान्	हार्राह९-७९
—भरद्वाजः	<b>३११११८</b>
—भारतवर्षम्	राशा३२
—मधुवनम्	१।१२।३
<b>—</b> нъд	१।२१।३८-४१
—माधवी	शशर०
—मान्धाता	४।२।६०–६१
—( तत् ) मात्रा	815188
—योगः	<b>६।७।३</b> १
—राजा	१११३१४८, ९३
<b>─</b> ₹:	१।८।३-४
—वासुदेवः	शराश्य, हापाट०, दर
—विष्णु:	318184
—्शान्तनुः	४।२०।१३
—सङ्कर्षणः	४।१।७५, ४।१५।२९

# विभागः लक्षणम्

३।११।५६
३।१०।१६-२३
शश्राहर
३।१७।५-६, १८।३७,४७
६।४।३७-३८
२ ७ ३
६।५।७८
३।११।२-३
६।७।३१
६।७।३२–३३
३।१३।३४-३६
१।२।१६
शशाश
६।३।३-४

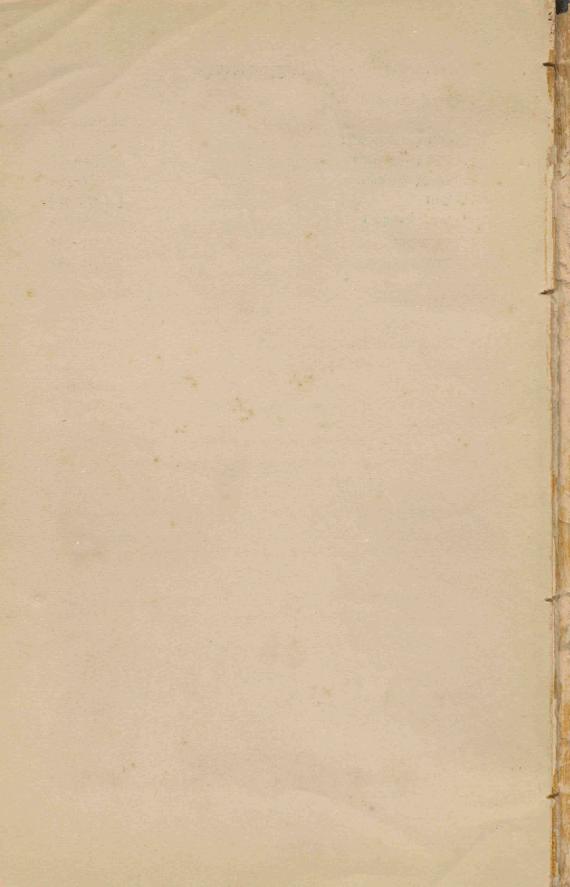
# गणना

नाम	संख्या	स्थान
अग्नय:	त्रय:	श्राहा९१
आदित्याः	द्वाद्श	१।१५।१३१-१३३
ओषधयः	सप्तदश	शिहारर
))	चतुर्देश	शिधारु३
कुलपर्वताः	सप्त ( भारतवर्षीयाः )	२।३।३
छन्दांसि	सप्त	२।८।५-६
देवा:	३६३३३	२।१२।७
द्वीपा:	सप्त	२।२।५-६
पुराणानि	अष्टाद्श	३१६११०-२४
प्रलय:	चतुर्विध:	शाजा४१
ब्रह्माणः	नव	शाधाय-इ
भावना	त्रिविधा	इ।७।४८
मस्तः	एकोनपञ्चाशत्	११२११३८-४१
मुनय:	अष्टाशीतिसहस्रसंख्याकाः	शिशाह
यामाः	<b>दाद्श</b>	१।७।११

90	पुराणम्—PURĀŅA	[Vol. VIII., No. 1
युगानि	चत्वारि	<b>६।१।५</b>
च्द्राः	एकादश	१।१५।१२३-१२४
वसव:	अष्टौ	शारपाष्ट्रश
विवाहा:	अष्टौ	३।१०।२४
वेदाः	चत्वार:	३।४।२, ८-९
शक्तयः	तिस्र:	<b>६।७।६१</b>
समुद्राः	सप्त	राशह
सर्गाः	नव	शशास्त्र
	वर्णनम्	
रासवर्णनम्		५1१३1१४-६२
वर्षायाः वर्णनम्		५१६१३६-४३
वृन्दावनस्य वर्णनम्		प्राहारह-५१
श्रद्धर्णनम्		४११०११०-१४
	उत्सवः, क्रीडा च	
गिरियज्ञः [ गोवर्धनपूजोत्सवः	]	४।१०।१६-४९
	विभागः-ऋीडा	
बलराम-रुक्मिणोः द्यूतकोडा		४१२८११०-२६
रासकीडा (कृष्ण-गोपीनाम्	)	५1१३।१४-६२
हरिएाक्रीडनम्		419182-36
	उद्धरणम्	
उद्यनसः श्लोकाः		१११२/६८-१०१
मनुमतम्		६।५।६३–६४
हिरण्यगर्भवचनम		२।१३।४२-४४
	F-C	
	विविधम्	
अमृतम् ( अस्योत्पत्तिः )		9189-9319
गीतम् (देवगीतम्)		२।३।२४- ६
चक्रम् (कृष्णस्य )		४।३४।३६–४४
जगत् ( अस्य पालकाः ) [ इ		र ३।५३
ज्वरः (माहेश्वरः, वैष्णवश्च	)	3133188-06

धनुः (आजगवम्)
पारिजातः
मन्त्रः ( सर्पविषनाशकः
राष्ट्रम् ( अस्य दशा )
विषम् ( अस्योत्पत्तिः )
वृक्षाः
सभा (देवानाम्)
समुद्रमथनम्
स्यमन्तकमण्युपाख्यानम

१।१३।४० ५।३०।२१,३=।७ ४।३।१३ १।१३।३०-३२ १।६।१-११५ [ द्र. प्रचेतसः ] ५।१।१२ १।९।१-११५ ४।१३।८-१६५



#### THE BOARD OF TRUSTEES

OF

#### THE ALL-INDIA KASHIRAJ TRUST

1. His Highness Maharaja Dr. Vibhuti Narain Singh, M.A., D.Litt.; Fort Ramnagar, Varanasi—(Chairman).

#### Trustee nominated by the Govt. of India:-

2. Dr. Panna Lal, M.A., B. Sc., LL. B., D. Litt., Ph.D., Bar-at-Law, C.S.I., C.I.E., I.C.S. (Retd.); 19, Thornhill Road, Allahabad.

#### Trustees nominated by the Govt. of Uttar Pradesh :-

- 3. Dr. Sampurnanand, D. Litt.; Governor of Rajasthan.
- 4. Pt. Kamalapati Tripathi.

#### Trustees nominated by His Highness the Maharaja of Banaras: -

- 5. Dr. Suniti Kumar Chatterji, M.A., D. Litt (London), F. A. S. B., Professor Emeritus of Comparative Philology in the University of Calcutta.
- 6. Maharaj-kumar Dr. Raghubir Singh, M. A., D. Litt.; Raghubir Niwas, Sitamau (Malwa).
- 7. Pt. Giridhari Lal Mehta, Varanasi; Managing Director: Jardine Handerson Ltd., the Scindia Steam Navigation Ltd; Trustee: Vallabh Ram Saligram Trust, Calcutta.

## PUBLICATIONS OF THE ALL-INDIA KASHIRAJ TRUST

- 'PURĀŅA' BULLETIN, Vols. I to VII (1959-1965), with the supplement containing Subject-wise as well as Author-wise Index of the first five volumes. Price: each volume Rs. 12 or £1; Supplement Rs. 1.25 or 2 shillings. Supplement supplied free to the subscribers.
- RAMACHARITA-MANASA: The great Hindi Poem of Gosvāmī Tulasīdāsa, critically edited on the basis of a number of old manuscripts, both in India and abroad, written within the hundred years of the Poet's death; prepared with an Introduction by Prof. Vishwanath Prasad Misra. Price Rs. 6.30, Library Edn. Rs. 15.
- DEVI-MAHATMYA: An annoted edition of the Durga-Saptaśatī or the Devi-Māhātmya with an English translation; the text primarily based on an old Nepali Ms. of about 13th Century A. D.; symbolical and cultural significance of the text fully explained. Prepared by Dr. V. S. Agrawala. Price Rs. 10, Lib. Edn. Rs. 15.
- MATSYA-PURAŅA—A STUDY: Written by Dr. V. S. Agrawala. The author's point of view is mainly directed to an interpretation of this important Purāṇa in the Vedic background on the one hand, and in the light of the cultural, geographical and historical material incorporated in the Pūrāṇas on the other. Price Rs. 30.
- VYĀSA-PRAŚASTI: Compiled and edited by Dr. V. Raghavan from the Mahābhārata, Purāṇas, Māhātmyas, Nibandhas, Commentaries, Poetry, and various Manuscripts. Price Re 1.
- NĪTI-SECTION OF THE PURĀŅĀRTHA-SAMGRAHA: Edited with Introduction and Notes by Dr. V. Raghavan. Price Rs. 2.00.
- HINDI TRANSLATION OF THE REPORT OF THE CALENDAR REFORM COMMITTEE, GOVT. OF INDIA. (For Private use).
- Available from: The General Secretary, All-India Kashiraj Trust, Fort Ramnagar, Varanasi